प्रेमावतार श्रीप्रभु जगत्बन्धु सुंदर

लेखक – जयबन्धु दास ब्रह्मचारी

प्रस्तुत लीला ग्रंथ श्रीपाद् कुंजदास ब्रह्मचारी के लीला पार्षद श्री जयबन्धु दास ब्रह्मचारी द्वारा वर्ष 1950 के आसपास में लिखी गयी थी। हिंन्दी भाषा में होने के हिंन्दी भाषियों व हिंन्दी भाषा क्षेत्र के लोगों के लिये यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। वस्तुतः प्रभुजी की लीला आदि संबधित समस्त प्रकाशन व साहित्य बंगला भाषा में होने के कारण हिंन्दी भाषा क्षेत्र में प्रभुजी के बारे प्रचार प्रसार बहुत कम हुआ है।

श्रीपाद् कुंजदास ब्रह्मचारी द्वारा पूर्व में हिंन्दी भाषा क्षेत्र इलाहाबाद, झांसी, वाराणसी आदि स्थानों पर प्रभुजी के बारे में प्रचार–प्रसार किया गया है। इस महत् कार्य को इनके प्रघान शिष्य पूज्य श्री बंधु गोपाल चरण दास ब्रह्मचारी जी द्वारा आगे बठाया गया है। श्री बंधु गोपाल चरण दास ब्रह्मचारी जी लखनऊ के निवासी थे। आपके अथक प्रयास कें फलस्वरूप हिंन्दी भाषा क्षेत्र में विस्मृत श्री प्रभु जगत्बन्धु सुंदर का नाम व लीला आदि का पुनः प्रचार हुआ व प्राचीनतम् तीर्थ नैमिषारण्य में प्रभुजी के एक सुंदर आश्रम की स्थापना भी की गयी। उक्त आश्रम आज तमाम वैष्णववृंदो, प्रभु भक्तों की आस्था व विश्वास का परम् श्रोत है।

प्रस्तुत लीला ग्रंथ के **out of print** व **reprint** न होने के कारण वर्तमान में यह लगभग अप्राप्त है। अतः प्रस्तुत ग्रंथ जो कि संभवतः प्रभु जगत्बध्धु सुंदर की लीला कथा पर हिन्दी में प्रथम प्रयास है, को भक्तजनों की सेवा में प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। अतः उक्त प्रयास वस्तुतः पूज्य श्री बंधु गोपाल चरण दास ब्रह्मचारी जी द्वारा किये गये प्रभुजी के बारे में प्रचार–प्रसार कार्य के श्रखला की एक सूक्ष्म कड़ी है।

(दासानुदास)

!!!! जय जगत्बन्धु !!!! जय जगत्बन्धु !!!! जय जगत्बन्धु !!!!

❀ विषय सूची ❀

❀ निवेदन ❀

स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि प्रेमावतार प्रभु जगद्बन्धु की वाङ्मयी सेवा का सुयोग मिलेगा। सुयोग आया, कितने ही उतार चढ़ावों के मध्य इस ग्रन्थ का सम्पादन हुआ।

भगवान् जगदात्मा हैं, जगत्पिता हैं, जगत्पति हैं, जगदीश्वर एवं जगत्प्रभु हैं। "सुहृदं सर्वभूतानां" कह कर उन्होंने अपने को चराचर का सुहृद बताया है। वे जगद्बन्धु हैं।

गीता के अनुसार इस जगत की समस्त विशेषताओं में परम तत्त्व के दर्शन मिलते हैं। पुरुषसूक्त ने परमतत्व को 'पुरुष' कहकर पुकारा। वेदमन्त्रों के आरम्भ में 'हरिः ॐ' कहकर उनको सम्बोधित किया गया। अक्षरविज्ञान के तत्वदर्शियों ने अक्षर-अक्षर में उसी तत्त्व की झांकी देखी।

बन्धु भक्तों ने प्रभु जगद्बन्धु के रूप में भगवान को पाया है। उनके द्वादश नामों में हरि, पुरुष एवं अ, आ, इ, ई, उ और ऊ उपलब्ध होते हैं।

उनकी लीलाओं में सभी भगवत्प्रेमियों को रसानुभव होगा।

—राघवाचार्य

❀ समर्पण ❀

श्री श्रीमत् कुञ्जदास जी के श्रीकर-कमल में

श्री श्री प्रभुबन्धु का प्रचार आपके प्राणों की इच्छा है। प्रभुजी ने आपसे कहा था "पृथ्वी को ला दो" जिस महावाणी का अर्थ है कि समग्र पृथ्वी में प्रभुजी के प्रचार द्वारा विश्ववासियों को प्रभुजी की ओर आकर्षित करना। और एक दिन प्रभुजी ने आपसे कहा था "तुम लोग इच्छा करने से ही मुझे खड़ा कर सकते हो" यहाँ खड़ा करने के अर्थ से मालूम होता है प्रभुजी की भगवत् प्रतिष्ठा करना।

फिर एक रोज कहा था "कीर्तन रटे तो जाओ" इस वाणी की प्रेरणा से उतावले होकर आप अकेले निकल पड़े थे श्रीधाम नवद्वीप के पथ पर और निज शक्ति के प्रभाव द्वारा श्री मृदङ्ग, करताल और भक्त संग्रह पूर्वक अनेक सम्प्रदाय के आगे रहकर सप्तदिवस अखण्ड महानाम कीर्तन द्वारा श्री नवद्वीपधाम परिक्रमा करके आपने नवावतारी श्री जगद्बन्धु सुन्दर की जय घोषणा की थी।

सुदीर्घ छः वत्सर काल महानामनिष्ठ त्यागी भक्तगण संव्यवहार से बंगला प्रदेश के गांव-गांव में श्री महानाम कीर्तन और प्रभुजी की भुवन मंगलवाणी का प्रचार किया था। आप महानामसिद्ध हैं, श्री प्रभुजी के आविर्भाव धाम में प्रभुजी की सेवा में तन्मय हैं।

❀ निवेदन ❀

स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि प्रेमावतार प्रभु जगद्बन्धु की वाङ्मयी सेवा का सुयोग मिलेगा। सुयोग आया, कितने ही उतार चढ़ावों के मध्य इस ग्रन्थ का सम्पादन हुआ।

भगवान् जगदात्मा हैं, जगत्पिता हैं, जगत्पति हैं, जगदीश्वर एवं जगत्प्रभु हैं। "सुहृदं सर्वभूतानां" कह कर उन्होंने अपने को चराचर का सुहृद बताया है। वे जगद्बन्धु हैं।

गीता के अनुसार इस जगत की समस्त विशेषताओं में परम तत्त्व के दर्शन मिलते हैं। पुरुषसूक्त ने परमतत्व को 'पुरुष' कहकर पुकारा। वेदमन्त्रों के आरम्भ में 'हरिः ॐ' कहकर उनको सम्बोधित किया गया। अक्षरविज्ञान के तत्वदर्शियों ने अक्षर-अक्षर में उसी तत्त्व की झांकी देखी।

बन्धु भक्तों ने प्रभु जगद्बन्धु के रूप में भगवान को पाया है। उनके द्वादश नामों में हरि, पुरुष एवं अ, आ, इ, ई, उ और ऊ उपलब्ध होते हैं।

उनकी लीलाओं में सभी भगवत्प्रेमियों को रसानुभव होगा।

—राघवाचार्य

❀ समर्पण ❀

श्री श्रीमत् कुञ्जदास जी के श्रीकर-कमल में

श्री श्री प्रभुबन्धु का प्रचार आपके प्राणों की इच्छा है। प्रभुजी ने आपसे कहा था "पृथ्वी को ला दो" जिस महावाणी का अर्थ है कि समग्र पृथ्वी में प्रभुजी के प्रचार द्वारा विश्ववासियों को प्रभुजी की ओर आकर्षित करना। और एक दिन प्रभुजी ने आपसे कहा था "तुम लोग इच्छा करने से ही मुझे खड़ा कर सकते हो" यहाँ खड़ा करने के अर्थ से मालूम होता है प्रभुजी की भगवत् प्रतिष्ठा करना।

फिर एक रोज कहा था "कीर्तन रटे तो जाओ" इस वाणी की प्रेरणा से उतावले होकर आप अकेले निकल पड़े थे श्रीधाम नवद्वीप के पथ पर और निज शक्ति के प्रभाव द्वारा श्री मृदङ्ग, करताल और भक्त संग्रह पूर्वक अनेक सम्प्रदाय के आगे रहकर सप्तदिवस अखण्ड महानाम कीर्तन द्वारा श्री नवद्वीपधाम परिक्रमा करके आपने नवावतारी श्री जगद्बन्धु सुन्दर की जय घोषणा की थी।

सुदीर्घ छः वत्सर काल महानामनिष्ठ त्यागी भक्तगण संव्यवहार से बंगला प्रदेश के गांव-गांव में श्री महानाम कीर्तन और प्रभुजी की भुवन मंगलवाणी का प्रचार किया था। आप महानामसिद्ध हैं, श्री प्रभुजी के आविर्भाव धाम में प्रभुजी की सेवा में तन्मय हैं।

आपका दासानुदास, भारतीय हिन्दी भाषाओं के अंचल में प्रचार के लिये प्रभुजी की वाणी और लीलाकथापूर्ण यह ग्रन्थ, आपकी सेवा में परम श्रद्धा के साथ अर्पित करके आपके कृपा आशीर्वाद की प्रार्थना करता है।

इति—

जय जगद्बन्धु जय जगद्बन्धु

दासानुदास

जय बन्धुदास

श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धुसुन्दर

महाप्रभु जगद्बन्धु

बंगाल में महाप्रभु चैतन्यदेव के अनन्तर अभी हाल में ही प्रभु जगद्बन्धु का आविर्भाव हुआ था। उन्होंने भी अपने भक्तिमय जीवन से, अपने भावमय संकीर्तन से उस प्रांत को भावविभोर कर दिया। हमारे इस प्रान्त में प्रभु जगद्बन्धु के नाम से बहुत ही कम व्यक्ति परिचित हैं।

हिन्दी में सर्वप्रथम मैंने अपनी भक्तचरितावली में प्रभु जगद्बन्धु का जीवनचरित्र और उनके कुछ पदों को प्रकाशित किया था।

अब इस पुस्तक को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रभु जगद्बन्धु के सम्बन्ध में इस पुस्तक से लोग विशेष परिचित हो सकेंगे। पुस्तक को पूरा पढ़ने का तो मुझे अवकाश मिला नहीं। जहाँ तहाँ से मैंने देखा पुस्तक सुन्दर लिखी है। भक्तों के लिये यह बड़े काम की वस्तु है। पुस्तक का प्रचार प्रसार अधिकाधिक हो, यही परमपिता परमात्मा के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रार्थना है।

संकीर्तन-भवन झूसी (प्रयाग)
पौष-कृ० अमावस्या २०१८

—प्रभुदत्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
निवेदन	१८	राघवाचाय	राघवाचार्य
१६	२	कीर्त्तनेर अधिक आइ किछुइ नाइ	कीर्त्तनेर अधिक आर किछुइ नाइ
६	२१	असम	आसाम
३४	६	त्रिलोकी	त्रिलोक
५७	२	ताई बोले कि प्रेम दिवो न	ताई बोले कि प्रेम दिवो ना
६२	४	अवेष्ठती	आवेष्ठनी
१०२	११	तिनकाडे	तिनकढि
१२७	११	सभा में	सभी ने
१५३	५	सुरत कुमार	सुरत कुमारी
१७६	१८	मनोरथ	मनोरम
२०८	१	रानी	पानी
२११	२०	उद्धारण जीमन	उद्धारण जीवन
२२४	१८	सर्वसिद्धि नाम होता है	सर्वसिद्धि लाभ होता है
२५६	१६	महशाक्तिधर	महाशक्तिधर
२८७	८	गंगारास	भांगारास
२८७	१०	घरभंगा कैसिल	दरभंगा कैसिल

मधूकरी तीन रुपया (साधारण)
साढ़े तीन रुपया (सजिल्द)

प्रकाशकीय निवेदन

छत्तीस वर्ष की बात है जब कि छात्रावस्था में ही दूर बंगाल से इस प्रदेश (उत्तरप्रदेश) में आया और हिन्दी भाषा का अभ्यास करने लगा तो इस ग्रन्थ के लेखक जिन्होंने हाल ही में संसार का त्याग किया है, आयु में प्रवीण होते हुवे भी हमारे जीवन के सब सु:खों और दु:खों के बीचमें एक प्रकृत बन्धु के रूप में मिले ।

वह एक नया और आश्चर्यजनक समाचार लाये थे कि श्री श्री भगवान् जगत के कल्याण के लिये प्रभु जगद्बन्धु रूप में अवतीर्ण हुये हैं । खबर नई थी—परन्तु श्री श्री प्रभु जी के नाम तथा प्रेम से समस्त प्रयागधाम नाच उठा । उस प्रेम की बाढ़ में मैं भी एक तृण के समान बहने लगा ।

श्री श्री प्रभु जी ने अपने गुणों से मुझ पर कृपा की । बिना विचार यह अनुभव करने लगा कि प्रभु जी स्वयं ईश्वर हैं । हमारे परित्राण के लिये आये हुए हैं । केवल हमारे ही नहीं बल्कि समस्त विश्व के उद्धार के लिये अवतीर्ण हुये हैं ।

हमारे बहुतेरे भाइयों तथा इस प्रदेश में रहने वाले भक्तों की इच्छा से मैंने और दो चार प्रभु जी के भक्तों ने मिलकर लेखक श्रीमत् जयबन्धु जी से प्रचार के लिये एक ग्रन्थ लिखने का अनुरोध किया । अभी हाल ही में उन्होंने हमारे लखनऊ के

दरिद्रगृह में रहकर इस ग्रन्थ को समाप्त किया और प्रकाशन का भार भी इस गरीब पर ही डाल दिया। आज श्री श्री प्रभुजी के चरणों में सानुरोध प्रार्थना है कि "हे प्रभु दयालु आप ही इस क्षुद्र ग्रन्थ रूप नाव के चालक होकर हमारे देशवासियों में इस पवित्र भावना को लाकर निज नाम तथा प्रेम में तल्लीन कर इस विश्वग्रासी काल प्रलय के हाथ से रक्षा करें।

रमणी मोहन भट्टाचार्य
इलाहाबाद

जय जगद्बन्धु
जय भुवनमंगलावतार

परम पूज्यपाद श्रीमत् कुञ्जदास जी की आशीर्वाणी

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(श्रीमद्भगवद्गीता)

जब कभी धर्म की ग्लानि होती है तब श्रीभगवान अवतीर्ण होते हैं। करुणामय तब नित्यधाम में नहीं रह पाते। श्री श्री प्रभु बन्धु सुन्दर के शुभ आविर्भाव के पूर्व एक दिन माता वामादेवी से दिव्य स्वप्न योग में कहा था "संसार अधर्म से परिपूर्ण हो गया है, मैं शीघ्र हरिनाम प्रचार के लिये तुम्हारी गोद में आ रहा हूँ।" किसी समय प्रभु जी ने श्री मुख से कहा था अणु परमाणु कीट पतंग स्थावर जंगम संसार के सभी हरिनाम के भिक्षुक हो कर मेरी ओर ताक रहे हैं। इस बार सबको हरिनाम आस्वादन कराऊँगा तब ही मेरा नाम जगद्बन्धु। इसबार चारों महादेश में समान रूप में धर्मस्थापन होगा। इस बार श्री भगवान जगद्बन्धु नाम धारण किये हैं संसार में सभी इस नाम को लेकर सुखी होंगे।

हिन्दी भाषा में अभिन्न श्री कृष्ण व श्री गौरांग श्री श्री बन्धु चन्द्र की श्री लीला का प्रकाश हो रहा है। इस ग्रन्थ का दर्शन तथा श्रवण कर सभी जन प्रभु बन्धु का कृपा-लाभ करेंगे।

प्रभु जी ने कहा है—"अनादि के भी आदि गोविन्द स्वयं ईश्वर श्रीकृष्ण व श्री गौरांग दोनों लीलाओं की सर्वशक्ति का योग ही हरि पुरुष जगद्बन्धु प्रभु जगद्बन्धु है।

श्री ईश्वर का धराधाम में अवतीर्ण होना केवल शास्त्र प्रमाण से नहीं जान सकते। अपनी शक्ति का प्रकाश करने से व संसार को जनाने से ही जाना जा सकता है।

श्री ब्रह्मा जी ने कहा है :—

तथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्।
(श्रीमद्भागवत)

प्रभु आपके कृपालाभ से जो अनुगृहीत है वह ही तुम्हारे तत्त्व का अनुभव कर सकता है अन्यथा चिरकाल विचार करने पर भी कोई तुम्हें नहीं जान सकता।

जय जगद्बन्धु
जय महाउद्धारण लीला
जय डाहापाड़ा धाम

❀ प्रस्तावना ❀

प्रस्तुत हिन्दी ग्रन्थ का प्रकाशन इलाहाबाद निवासी ड रमणीमोहन भट्टाचार्य जी के उत्साह एवं प्रयत्नों का परिण है अतः उनके प्रोत्साहन एवं सहयोग के लिये मैं आभारी हू यह कहना अत्युक्ति न होगा कि उनकी ही चेष्टा का फल प्रकाशन है।

इलाहाबाद निवासी श्री दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य भाई साह आदि प्रभु के अन्यान्य भक्तों के प्रति भी मैं उतना ही आभा हूँ क्योंकि इस कार्य की सफलता एवं प्रेरणा की अनुभूति उन् से मिली है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री श्री "प्रभुजी की लीला सम्बन् विषयावली" श्रीमद्गोपी बन्धुदास कृत तथा डा० महानामब्र ब्रह्मचारी द्वारा सम्पादित लीलाग्रन्थ "श्री श्रीबन्धु लील तरंगिणी" से अनेक सहायतायें ली हैं अतः मैं उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

इलाहाबाद निवासी श्री कालीपदराय तथा लखनऊ निवास कुमारी जना भादुरी एम० ए० के प्रति भी मैं आभार प्रक करता हूँ कि उन्होंने अपने घोर प्रयत्नों से इस ग्रन्थ का बंगल पांडुलिपि से हिन्दी में अनुवाद तथा सम्पादन कार्य किया।

मुरादाबाद जिले के चन्दौसी निवासी श्री कुंजबिहारीलाल ज पेप्सु निवासी श्री वेदप्रकाश जी, शाहजहांपुर मोतीचौक निवास

श्री बालकृष्ण जी टण्डन ने जो आर्थिक योग देकर प्रोत्साहन दिया है उसके लिये मैं आजन्म कृतज्ञ हूँ। साथ ही साथ बरेली निवासी श्री राजबहादुर सक्सेना एवं श्री रामगोपाल वर्मा जी के प्रति भी उतना ही कृतज्ञ हूँ क्योंकि आप लोगों ने ग्रन्थ प्रकाशन में समय समय पर अनेकों चेष्टाओं एवं सहानुभूति द्वारा मुझे प्रोत्साहित किया।

हिन्दी अनुवाद की शुद्धि एवं सुन्दरता बढ़ाने में बरेली आचार्यपीठ के अध्यक्ष स्वामी श्री राघवाचार्य महाराज ने जो अथक परिश्रम किया उसके लिये मैं आभार प्रकट करता हूँ। अन्त में मैं कलकत्ते के मोहन प्रेस के मालिक श्री निरंजन बन्द्योपाध्याय के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने ग्रन्थ के प्रच्छदपट एवं श्रीमूर्ति आदि छपवा कर ग्रन्थ का प्रकाशन कार्य पूर्ण किया।

सर्वोपरि दयालु प्रभु श्री जगद्बन्धु सुन्दर की कृपा से ही श्री ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। प्रभुजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम करता हूँ। प्रभु जगद्बन्धु हरि की जय हो, महाउद्धारण लीला की जय हो।

❀ जय जगद्बन्धु हरि ❀

लेखक का निवेदन

मैंने कभी कल्पना भी न की थी, कि श्री श्री जगद्बन्धु इस अधम के द्वारा ग्रन्थ की रचना करवायेंगे। अपने गुणों एवं योग्यता को पूर्णरूपेण भुला कर, प्रभु जी के स्मरण में कालक्षेप कर रहा था। विद्या, बुद्धि का अभाव है, इसीलिये सम्मान एवं प्रतिष्ठाभिमान से तनिक डर कर चलता हूँ। किन्तु प्रभु जी की इच्छा ही बलवती है, शक्तिशालिनी है, अतः इस अधम एवं अयोग्य हस्त को भी लेखनी ग्रहण करनी पड़ी। बंगला भाषा में अनेकों ग्रन्थ प्रभु जी के कृपापात्र भक्तगणों ने लिखे हैं। अंग्रेजी में भी दो, चार ग्रन्थ हैं। लेकिन हिन्दी भाषा में कोई भी ग्रन्थ नहीं है। श्री श्री प्रभु जी के कार्य से, कोई विगत ३४-३५ वर्ष से उत्तर प्रदेश में मेरा आना जाना है। आग्रहशील व्यक्तियों के पास प्रभु जी की महिमा का वर्णन किया, उनके आग्रह प्रकाश करने पर भी, प्रभु के सम्बन्ध में कोई भी हिन्दी ग्रन्थ न दे सका। इससे अत्यन्त लज्जा एवं दुःख का अनुभव होता था। उत्तर प्रदेश एवं बिहार के प्रभुभक्तगणों की यह हार्दिक अभिलाषा थी, कि प्रभु जी की महिमा के सम्बन्ध में, एक हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशित हो। पिछले दो वर्ष पूर्व, मेरी उपस्थिति में वर्तमान ग्रन्थ के प्रकाशक

श्री रमणी मोहन भट्टाचार्य जी ने बंगाल के प्रसिद्ध सुलेखक भक्त द्वारा अनुवाद कराने के लिये एक पाण्डु लिपि भी मंगवायी थी। परन्तु वह देश काल एवं पात्रोचित न होने के कारण प्रकाशित नहीं हुआ। क्या किया जाय। मैं मन ही मन विचार करने लगा। हिन्दी भाषा में प्रभु जी की ग्रन्थ प्रकाशित करने की इच्छा क्रमशः बलवती होने लगी। इलाहाबाद में, प्रभु जी के भक्त श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य जी के घर पर मैं टिका हुआ था। एक दूसरे दिन रात्रि को सबने शय्या ग्रहण कर ली थी। एक दूसरे कक्ष में मेरे रहने की व्यवस्था थी। मन में एक विचार उदित हुआ कि प्रभु जी के स्मरण में प्रयत्न करके देखा जाय कि इस अयोग्य अधम के द्वारा प्रभु ग्रन्थ की रचना करवायेंगे अथवा नहीं। क्योंकि प्रभु जी तो असम्भव भी सम्भव कर सकते हैं। उनकी इच्छा हो तो कौवा भी गाय में परिवर्तित हो सकता है। मेरे पास ही भूमि पर दो चार बेकार कागज़ के खंड पड़े हुये थे। उन्हीं पर लिखना प्रारम्भ कर दिया जो कुछ भी लिखा उसे प्रातः काल दिनेशदा को दिखाया। वे सुन कर अत्यन्त प्रसन्न एवं सुखी हुये। उन्होंने और भी लिखने को उत्साह दिया। इसके पश्चात लखनऊ में श्री रमणी मोहन भट्टाचार्य जी के गृह में ही ग्रन्थ की समाप्ति हुई। प्रभु जी के अधिकारी भक्तगण प्रभु जी के इस लीलाग्रन्थ को प्रकाशित करेंगे। इस संक्षिप्त ग्रन्थ की रचना में प्रभुजी के जिन भक्तगणों द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों की सहायता ग्रहण की है एवं इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में जिन जिन व्यक्तियों ने प्रत्यक्ष

या परोक्ष रूप से सहायता की है उनके प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

हे मेरे दयालु प्रभु ! तुम्हारे निकट मेरी कातर प्रार्थना है कि अपने करुणा-कटाक्ष के द्वारा इस ग्रन्थ की प्राणहीन भाषा में प्राणों का संचार करो। जिससे यह ग्रन्थ तुम्हारी ओर सबकी दृष्टि का आकर्षण कर सके।

हे मेरे अदोषदर्शी बन्धु-भक्तगण ! तुम सब भी कृपा करो, जिससे अधम का यह बालोचित प्रयास सार्थकता लाभ करे।

जय जगद्बन्धु हरि

भवदीय—
लेखक

जय जगद्बन्धु हरि

कीर्त्तनेर अधिक आइ किछुइ नाइ ।

तोमरा कीर्त्तन भिन्न अन्य कोन व्रत वा नियम करिओ ना ।

(बन्धुवाणी)

कीर्त्तन से अधिक और कुछ नहीं है ।

तुम लोग कीर्त्तन भिन्न अन्य कोइ व्रत या नियम न करना ।

श्री श्रीमहानाम महाकीर्त्तन

हरिपुरुष जगद्बन्धु महाउद्धारण ।
चारिहस्त चन्द्रपुत्र हाकीटपतन ॥
(प्रभु प्रभु प्रभु हे) (अनन्तानन्दमय) ॥

जय जगद्‌बन्धु हरि

❀ भूमिका ❀

'वही तो हूं मैं' यह वाणी है मेरे आराध्यदेव, मेरे इष्टदेव प्रभु जगद्‌बन्धु सुन्दर की। समस्त प्राणियों के प्राण, सभी सुखों के आश्रय, आनन्दघन, सत्यस्वरूप जगद्‌बन्धु प्रभु जगद्‌बन्धु के ही रूप में समस्त शक्तियों को एक ही आधार में केन्द्रित कर अवतीर्ण हुये हैं। आनन्द के अभिलाषी सुखों के भिखारी अपने स्वरूप को भूले हुये माया मुग्ध जीवों के समस्त अभावों को मिटाने के लिये तथा शाश्वत शान्ति का विधान करने के लिये। वे प्रगट हुए हैं केवल साधुजनों भक्तों के लिये नहीं, अपितु जगत के सभी स्तर के जीवोंके लिये।

'**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्**' अर्थात् साधुओं के परित्राण दुष्कृतों का विनाश, तथा धर्म-संस्थापन के आगे इसबार प्रभु ने श्रीमुख से कहा कि अणु-परमाणु, स्थावर जङ्गम, कीट-पतङ्ग तक पृथिवी के समस्त जीव उद्धार के लिये हरिनाम के भिखारी बनकर मेरी ओर आशापूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। इसबार सब को हरिनाम का आस्वादन कराऊँगा। तभी तो मेरे जगद्‌बन्धु नाम की सार्थकता प्रकट होगी।

पंचभूतात्मक जगत के सभी पदार्थों में जीव शक्ति विद्यमान है। अणु-परमाणु में, कण-कण में, जल, स्थल

और अन्तरिक्ष में सर्वत्र सब में जीव शक्ति मौजूद है। इस बार सबके स्वरूप को जागृत कर अपने स्वरूप का आस्वादन कराकर जीवों के समस्त दुःखों का अन्त करना है—कितना बड़ा आश्वासन है। कितना आशा से परिपूर्ण सन्देश है। चाहे कोई कितना ही पतित हो, पाखण्डी हो, अपराधी हो, उपेक्षित हो, किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं है सभी का उद्धार करना है, यह प्रभु जी की प्रतिज्ञा है।

समस्त प्रयोजनों को मिटाने के लिये, समस्त दुर्दशाओं का अन्त करने के लिये एक मात्र दिव्य औषधि महानाम महामन्त्र—'हरि पुरुष जगद्‌बन्धु महा उद्धारण' है इसी महौषधि को प्रदान करने के लिये जगद्‌बन्धु आये हैं। यह महौषधि रक्षौषधि है, प्रेम का सन्देश है।

बन्धु हरि का कहना है कि इस बार मेरी लीला एक सहस्र वर्ष तक धराधाम पर चलेगी। युगों में नहीं, लाखों वर्षों में नहीं, चौरासी लाख योनियों के भोगने के बाद नहीं केवल एक सहस्र वर्षों में ही उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण होनी है।

प्रभु केवल मनुष्यों को ही नहीं, अणु-परमाणु तक को स्वरूप का आस्वादन करावेंगे। उनकी वाणी है—"मेरा काम प्रकृति के अनुसार होगा"। व्यर्थ किसी प्रकार का कोलाहल करने के लिये वे नहीं आये। इन्द्रजाल या जादू करने के लिये उनका आना नहीं हुआ। उनका कार्य प्रकृति के अनुसार है। इसमें समय तो लगता ही है। प्रभु ने कहा है—'समुद्र को सोख लेने की शक्ति बहुतों में मिल सकती है; पहाड़ों को

तोड देने की सामर्थ्य भी बहुतों में हो सकती है। किन्तु जीवों के पाप-ताप ग्रहण कर उनको प्रेमा भक्ति प्रदान करने की शक्ति केवल श्रीकृष्ण, श्रीगौराङ्ग महाप्रभु और मुझ (जगद्‌बन्धु) में है। साधु-संन्यासी अपने स्वार्थों की पूर्ति करने में तथा अपनी प्रतिष्ठा में तत्परता के साथ संलग्न हैं। परम भक्त या त्रिकालज्ञ मुक्त महापुरुषों को छोडकर दूसरा कौन मेरे कार्य में सहायक हो सकता है। कई भक्त लोग अभिमान के वशीभूत होकर अपने आपको अवतार कहने का साहस कर सकते हैं। सबसे कह देना कि कोई मेरे लिये निताई, अद्वैत आदि न बन बैठे। इसबार मैं एक ही आधार में सर्वरूप का प्रकाश प्रकट कर रहा हूं। मैं वही हूं कमल लोचन हरि, भवभयहारो। मैं सभी का उद्धार करूँगा।'

प्रभु ने बताया है कि वर्तमान काल प्रलय काल है। इस काल में प्रलय और सृष्टि की कितनी क्रीडा होरही है। प्रलय की सारी लयकारी शक्तियां (forces of destruction) इस कार्य में लगी हैं। कितने देश और जनपद नष्ट होजावेंगे, कौन जानता है ?

प्रभु ने प्रलय की घोषणा की है। साथ ही रक्षा के लिये हरिनामकीर्तन का उपदेश दिया है। चन्द्रपात ग्रन्थ में, जो उनकी रचना है उन्होंने स्वयं लिखा है:—

"महाप्रलय के बा महा उद्धारण सेवा,
महामोह तुई बुझि भी छी (तुई भी छो रा)
(गती नाई गती पाउ)"

आशय यह है कि महाप्रलय का समय आ गया है, यह सत्य है। किन्तु जो महाउद्धारण प्रभु का नाम लेंगे और उनकी सेवा करेंगे वे महाशक्तिशाली होंगे। महाप्रलय से बचने का कोई उपाय था ही नहीं। प्रभु ने अपनी शरण देकर रक्षा का द्वार खोल दिया है।

श्री श्री प्रभु का भुवनमंगल कार्य आरम्भ हो गया है। प्रभु की अमृतमयी वाणी कार्य में परिणत होकर सार्थक होती जारही है। प्रभु ने कहा है—"हरिनाम प्रेम से पृथिवी हिलेगी। चार महादेशों में समान रूप से एक ही महान् धर्म का संस्थापन होगा। मद्यपान और गौहत्या बन्द हो जावेगी। क्या ये महावाक्य सार्थक नहीं हो रहे हैं ?

श्री श्री गौराङ्ग महाप्रभु ने हरिनाम का प्रचार किया था। किन्तु तीन चार सौ वर्षों में ही क्या दशा हो गई है ? अनाचार, व्यभिचार, अत्याचार ने धर्म को मलीन कर दिया है। काशीधाम में दशनामी संन्यासी समुदाय के गुरु वेदान्त-दर्शन के आचार्य श्री प्रकाशानन्द सरस्वती ने मायावाद का खण्डन कर प्रेमधर्म का स्रोत बहाया था। किन्तु इन तीन चार सौ वर्षों में सारा स्रोत कहाँ चला गया ? पता नहीं लगता। रह गया है केवल धर्म का निष्प्राण ढांचा।

प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर के प्राकट्य के समय से पुनः हरि-नाम और प्रेम धर्म की ओर लोगों का ध्यान गया है। भारत के कई प्रदेशों में जहां हरिनाम लेशमात्र भी सुनाई नहीं देता था पिछले ३०—३५ वर्षों में हरिनामकीर्तन आरम्भ हो गया

है। वर्तमान भारत के सभी प्रदेशों में नाम कीर्तन की लहर आ गई है। यद्यपि प्रयोजन में भेद के कारण नियम निष्ठा की प्रतिष्ठा पूरी तरह नहीं हो पा रही है और न समुचित वातावरण बन पा रहा है। अभी तो योग का अथवा ज्ञान का सम्बन्ध होने के कारण शुद्ध भाव की स्थापना नहीं हो पा रही है। फिर भी आरम्भ तो हो ही गया है। भारत में ही नहीं बाहर भी प्रेम धर्म के चिन्ह मूर्तरूप धारण कर रहे हैं।

मद्यपान, गौहत्या आदि का निषेध करने की चेष्टायें हो रही हैं। हमारा शासन भी इस दिशा में अग्रसर हो रहा है।

सन् १८९९ में 'त्रिकाल ग्रन्थ' नामक अपनी रचना में प्रभु जी ने अनेकों भविष्यवाणियां की हैं। यथा—

१—राजा नहीं, प्रजा है।

साम्राज्यवाद नहीं रहेगा उसके स्थान पर प्रजातन्त्र अथवा गणतन्त्र की स्थापना होगी।

२—टोपी वाले टोपी खोलकर सलाम देकर चले जायेंगे।

शक्ति सम्पन्न ब्रिटिश सरकार भारत का शासन छोड़कर चली जावेगी।

३.—रक्तपात विना ही भारत स्वाधीन होगा।

युद्ध या संग्राम किये विना ही भारत स्वाधीन होगा।

४—फोर्ट विलियम पताका तिशिरा

ब्रिटिश राज्य का प्रतीक (निशान) फोर्ट विलियम से

हट जाएगा और भारत का तिरंगा झंडा उसके स्थान पर लहरायेगा

५–जमींदार को डाकू और प्रजा को बन्दी कहते हैं ।

जमींदारी प्रथा का अन्त होगा, इसका संकेत इस वाणी में है ।

६–समाज नहीं रक्खेंगे, समाज नहीं रक्खेंगे, समाज के बाँध तोड़ देंगें ।

अस्पृश्यता का वर्जन या छुआ छूत का दूर करना ही इस वाणी का अर्थ है । प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर के भक्तों में छुआ छूत के रोग का बहुत दिनों पूर्व अन्त हो चुका है । प्रभु के महाप्रसाद वितरण में वर्ण या जाति का विचार नहीं किया जाता है । ऊंच नीच छोटा-बड़ा कोई भेद नहीं है ।

७–ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली जाएगी ।

बृटिश साम्राज्य की भारत में राजधानी बहुत दिनों तक कलकत्ता रही । बाद में दिल्ली राजधानी बनी ।

८–हाईकोर्ट बंगाली का ।

बृटिश राज्य के समय ही कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति बंगाली होने लगे थे ।

९–बंगाल का अंगच्छेद होगा ।

अंग्रेजी सरकार ने बंगाल का कुछ भाग असम में और कुछ बिहार में मिला दिया था । इसी कारण बंग भंग आन्दोलन हुआ था ।

१०–कालेज कोतवाली ।

अंग्रेजी शासन काल में असहयोग आन्दोलन में उच्च-शिक्षित युवकों ने भाग लिया । देश की स्वाधीनता के लिये वे जेल गये, उन्होंने फांसी की सजा भोगी और कितने ही प्रकार की कठोर यातनाओं को स्वीकार किया । प्रभु ने अपने त्रिकाल ग्रन्थ में 'पुलिस लुण्ठन' का उल्लेख किया है । उस समय शान्ति और रक्षा के स्थान पर पुलिस उसके विपरीत ही करती थी ।

११–कालेज उद्धार

अंग्रेजी शासन काल की शिक्षा पद्धति मानव को मानवता का पाठ नहीं पढ़ाती थी । उस पद्धति में नैतिकता के लिये बिलकुल स्थान नहीं था । इस पद्धति का अन्त होकर मानव की उन्नति के लिये कोई पद्धति प्रवर्तित होगी, यही इसका तात्पर्य है ।

१२–जेल-क्षेम-क्षमा ।

देश के नेताओं का कारावास, जो कि १९४२ में हुआ था, देश के मंगल के लिये था । इसी के परिमाणस्वरूप देश की जनता देशोद्धार में प्राणपण से जुटाई गई थी । जो जेल जायगे उनको अहिंसक रहना होगा ।

प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर की लीला की विशेषता यह है कि उनका इस बार अवतरण भारत ही नहीं अपितु जगत की समस्याओं के समाधान के लिये हुआ है । हरिनाम, प्रेमधर्म का प्रचार ही उनका मुख्य उद्देश्य है इसके साथ ही साथ हरि

नाम ग्रहण करने में समर्थ मनुष्य के विकास के लिये, अनुकूल वातावरण का निर्माण करने के लिये तथा जगतीतल के हिंसा द्वेष, स्वार्थ, पाशविक मनोवृत्ति एवं वासना से मुक्त करने के लिये उनका अवतरण हुआ है। अस्तु।

प्रभु के उपदेशों को चार विभागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. ब्रह्मचर्य साधना,
२. शरणागति
३. हरिनाम संकीर्तन का प्रचार
४. प्रेमा भक्ति के लाभ के लिये भजन-साधन।

ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य शक्ति स्थिर होती है। शरीर और मन तेजस्वी तथा शक्तिशाली होते हैं। क्षयोन्मुखी जाति की उन्नति के लिये इससे बढ़कर दूसरा शक्तिसंचय करने का उपाय नहीं है।

भगवान के चरणों में आत्म समर्पण कर शरणागति करने से मानव का अहकार-ममकार दूर हो जाता है। आत्मा को स्वरूप की उपलब्धि होती है।

उच्च और निम्न ब्राह्मण और चाण्डाल को भजन के एक समान स्तर पर मिलाने के लिये कीर्तन के सिवाय दूसरा उपाय हिन्दूधर्म में नहीं है। जातीय संगठन के लिये यह अमोघ शस्त्र है।

प्रेमा भक्ति मनुष्य की परम शान्ति का चरम एवं परम साधन है।

श्री प्रभु के परम निर्देश के अनुसार जातीय कल्याण के लिये संगठन का कार्य परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को लेकर अर्थात् मनुष्य मात्र को लेकर करना होगा। व्यक्तियों का समूह परिवार होता है और परिवारों का समूह ग्राम देश तथा जगत। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाङ्गीण मनुष्यत्व को प्राप्त करने के लिये प्रभु की भुवनमंगल वाणी का अवलम्ब लेना होगा तथा तदर्थ चेष्टा करनी होगी।

विचार किया जाय तो यह समझने में देर न लगेगी कि देश ही नहीं जगत धीरे धीरे अध:पतन की ओर चला जारहा है। भगवान् से बहिर्मुख, नैतिक चरित्र से हीन, भोग विलास में संलग्न लोग ध्वंसोन्मुख हो रहे हैं। व्यक्ति परिवार और समाज का जीवन ही नहीं साधु-संन्यासियों का आश्रम मलीन हो चुका है। यह काल का दुर्जय प्रभाव नहीं तो और क्या है? प्रभु की वाणी है:—

कलुष नयन कर उन्मिलन,
सन्मुखे प्रलय हल।
ऊर्ध्व बाहु करि श्री गौरांग स्मरि,
जय जय राधे बल।

हे जीव! पाप और अपराध से कलुषित अपनी आंखों को खोल कर देखो। प्रलय काल उपस्थित है। यदि इस समय तुम त्राण चाहते हो तो श्री गौराङ्ग का स्मरण करो जय राधे, जय राधे का कीर्तन करो।

वर्तमान जगत में खण्ड प्रलय चल रहा है और भविष्य में महाप्रलय आने वाला है। 'प्रलय' शब्द जगत की दुरवस्था

का ज्ञापक है । जगत के भीषण ध्वंस का युग आरम्भ होगया है । सम्पूर्ण जगत के भीषण ध्वंस का युग । घोर कलिकाल का अवसान । युगसन्धि का समय । इस सन्धिकाल में मानव सभ्यता विनाशोन्मुख है । चारों दिशाओं में भय है; कलि का ताण्डव नृत्य हो रहा है । मानव सृष्टि का श्रेष्ठ अवदान पद-दलित होगा । मानव समाज के घोर दुर्दिन हैं ।

प्रभु प्रलय के दृश्य देख कर भय से कांप उठे हैं । और जीवों को आत्मरक्षा के लिये हरिनाम कीर्तन करने को कह रहे हैं:—

हरिनाम लओ भाई
आर अन्य गति नाई।
हेर प्रलय एलो प्राय
(यदि सृष्टि राखो भाई) (हरिनाम प्रचार कर)

इसका आशय यही है कि भाई सब मिलकर हरि का नाम लो । इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है । देखो प्रलय प्रायः आगया है । यदि इस सृष्टि को बचाना चाहते हो तो हरिनाम का प्रचार करो ।

प्रभु की वाणी है:—

'यह प्रलय काल है । मेरे एकान्त शरणागत भक्त को छोड़ इस सृष्टि में अन्य किसी को रक्षा मिलना कठिन है' ।

जिस प्रकार प्रबल अग्नि को शान्त करने के लिये जल की अधिक परिमाण में आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार इस प्रलय से त्राण पाने के लिये विशेष रूप से हरिनाम कीर्तन आवश्यक है । जिस प्रकार भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं उसी प्रकार

उनका हरिनाम भी सर्वशक्तिमान् है । असंभव को संभव करने की सामर्थ्य नाम में है । जिन्होंने नाम की साधना की है वे नाम की शक्ति का अनुभव करते हैं ।

प्रभु की वाणी है:—

'अस्त्र के शत्रु कहे—प्रेमे विश्व विजय हय'
'हरिनामेर साम्राज्य भास'

आशा की बात यह है कि जिस प्रकार प्रलय का कार्य चल रहा है और भयङ्कर होता जा रहा है उसी प्रकार भगवत्कृपा से शान्ति विधान का कार्य भी चल रहा है । जगत के ध्वंस के लिये जिस प्रकार अणु और परमाणु के शस्त्रास्त्र बन रहे हैं उसी प्रकार शान्तिकामी व्यक्ति या संघशक्ति के द्वारा हिंसा की भावना को रोकने का प्रयत्न कर रहे हैं । कोई कोई महानुभाव जगत के विभिन्न देशों की एक सम्मिलित सरकार गठन करने की चेष्टा कर रहे हैं । प्रभु की वाणी है—चारों महादेशों में समान रूप से धर्म संस्थापन होगा । हिंसा की असद्भावना के दूर हुये बिना धर्म की संस्थापना किस प्रकार हो सकेगी ?

प्रभु की वाणी है—आमि सकलेर-सकले आमार, तोमरा पृथिवीर सकल के आपन करियो ।

प्रभु बन्धु के उदार और जगत पावन वाणी समूह को मूल बना कर इस ग्रन्थ की भूमिका उपस्थित की गई है । बन्धु हरि की प्रेममयी वाणी भूमिका के माध्यम से अपेक्षाकृत सुन्दर सुदृढ और श्रेष्ठ निर्माण करेगी ।

जय जगद्बन्धु हरि

अवतरणिका

हमारा भारतवर्ष विशाल एवं विचित्र देश है। कहा जाता है कि भारत में जिस वस्तु का अभाव हो उसे संसार में प्राप्त करना कठिन है। असंख्य जाति, असंख्य भाषा एवं असंख्य धर्म-सम्प्रदायों से युक्त भारत इस संसार में अतुलनीय है। प्राचीन काल से न जाने कितने धर्मों का अभ्युत्थान यहाँ हुआ। वेद, वेदान्त, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, भागवत, आदि इसके प्रमाण हैं। मत्स्य, कूर्म्म, वराह, मीन आदि दश अवतारों के अतिरिक्त श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, श्री चैतन्य आदि अवतारों का आविर्भाव युग युग में इसी पवित्र भारत भूमि पर ही हुआ है। श्री बुद्धदेव प्रवर्तित बौद्ध धर्म का प्रचार केवल भारत में ही नहीं प्रत्युत विदेशों में भी हुआ है। आज भारतीय सरकार भी उस महान् महात्मा के अहिंसा की वाणी का पूर्ण प्रयोग राज्य में कर रही है। श्री शंकराचार्यजी का मत आज भी दशनामी संन्यासियों की चेष्ठा से उनकी अक्षय कीर्ति का गान कर रहा है। इस प्रकार न जाने कितने विभिन्न मतों का प्रचार कार्य हो रहा है। युग युग से होने वाले धर्मों का प्रचार सत्य की नींव पर आधारित है और सत्य सदैव दृढ़ एवं अविनश्वर है। भारतवर्ष धर्म्म-क्षेत्र है। सत्य अथवा धर्म स्वरूप श्री भगवान के भिन्न भिन्न स्वरूपों की अनुभूति ही विभिन्न धर्मों का एवं मतों की उत्पत्ति

के कारण हैं। परमपुनीत भगवान को जिस रूप में जिन्होंने देखा अथवा जिस रूप में जिन्होंने अनुभव किया है उसे ही प्रधान मानकर उन्होंने अपने सिद्धान्त की सृष्टि की है। प्रत्येक धर्म-मत का रूप ही परवर्त्ती काल में आने वाले अन्य धर्मों के सामने कुछ न कुछ म्लान हुआ है किन्तु सम्पूर्ण लोप नहीं हो सका। इस प्रकार धर्म ही मानव को क्रम विकास के पथ पर आलोकदान करता हुआ अग्रसर कर रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही जिस प्रकार उत्थान और पतन के मध्य से अग्रसर होता हुआ मानव समाज आज ज्ञान-विज्ञान की सहायता से सर्वाङ्गीण उन्नति लाभ कर रहा है उसी प्रकार नव-समाज के भाग्य विधाता श्री भगवान भी क्रमशः जीव जगत को नाना रूपों में दर्शन दे रहे हैं। सत्य धर्म द्वारा ही इस जीव जगत के भयंकर दुखों का हरण किया जा सकता है।

वृक्षवल्कलधारी जीव इस नवीन युग में पेट्ट वस्त्र का व्यवहार कर रहा है। आदिम काल की वर्वर जाति कच्चा मांस खाना छोड़कर स्वादिष्ट अन्न तथा पेय द्वारा क्षुधातृष्णा निवारण करने लगी है। इसी प्रकार यातायात के नये साधन मनुष्य के आवागमन को सुचारु रूप से परिचालित करने में सहायता कर रहे हैं। इधर प्रकृति का विकास हो रहा है उधर जीव के परम शान्ति विधान के हेतु श्री भगवान भी निरवच्छिन्न काल के सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि इन चार युगों के क्रम से विभाजित कर क्रमशः ध्यान, यज्ञ, परिचर्या एवं नाम की व्यवस्था करते हैं। कहा भी है—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

अर्थात् कृतयुग में विष्णु भगवान् के ध्यान करने से त्रेता में यज्ञ करने से, द्वापर में परिचर्या के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह कलियुग में हरिकीर्तन से प्राप्त हो जाता है। साधर्न का यह क्रम नाम से महानाम रूपी महान धर्म तक पहुंचता हुआ महा उद्धारण प्रभु जी के माध्यम में सम्पूर्ण जगत का उद्धार करने जा रहा है।

श्री भगवान् के अवतारों में एक क्रम है। जिस प्रकार यह क्रम विकसित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार साधन का क्रम भी विकसित होता जाता है। इस विकास की चरम सीमा है महानाम महाउद्धारण जो स्पष्टतया श्री जगद्बन्धु प्रभु के द्वारा प्रकाश में आ गया है। सत्ययुग में सत्यस्वरूप के महिमा की रस सृष्टि, रसास्वादन एव वितरण कुछ भी न हो सका था। केवल चतुर्भुज नारायण का ध्यान ही एक मात्र अवलम्बन था। भगवान और भक्त में संयोग अधिक न था।

त्रेतायुग में वैकुण्ठनायक लीला-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने सरयू के तट पर स्थित अयोध्या नगर में, श्री दशरथ जी के घर में जीवों के उद्धार के हेतु मनुष्य रूप में जन्म ग्रहण किया। कहा जाता है कि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना श्री रामचन्द्र जी के अवतार लेने के पूर्व की थी। भक्तकवि तुलसी दास जी ने रामायण की रचना द्वारा मनुष्य जाति को सार्थक बना दिया। उनका यह ग्रन्थ अतुलनीय है ऐसा प्रतीत

होता है मानो स्वयं भगवान का ही अमूल्य दान है। भारत की समाज जनता ने इस ग्रन्थ का रसास्वादन किया है यज्ञ तपस्या धर्म के रक्षार्थ रामचन्द्र जी ने राक्षसों का वध किया। स्वय आदर्श राजधर्म तथा प्रजा का पालन करके उन्होंने जनता को शिक्षा प्रदान की। आज भी वह आदर्श प्राणि मात्र के हृदय में चिर जागृत है। महात्मा गान्धी ने भी इसी "राम-राज्य" को स्थापित करने की ओर संकेत किया है। श्री राम का आदर्श था पिता के वचन का पालन, जिस हेतु उन्होंने १४ वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार किया। शारीरिक तथा मानसिक उद्वेगों को सहकर अनेक दुःखों तथा कष्टों को झेलकर सतीसाध्वी पत्नी का उन्होंने उद्धार किया। श्री लक्ष्मण जी ने भी असीम भ्रातृ स्नेह के कारण ही अग्रज के साथ १४ वर्ष तक वनवास में जाना प्रफुल्लता से स्वीकार किया। भ्रातृ-प्रेम में लीन भरत श्री राम को वनवास से लौटा न सके किन्तु उनके पवित्र पादुका को राजसिंहासन पर स्थापित कर उन्होंने राज कार्य की परिचालना की। लक्ष्मण को शक्ति वाण विद्ध देख कर श्री रामचन्द्र जी ने कहा था:—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तत्र देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥

प्रजानुरंजक राम ने प्रजा के कारण ही अपनी प्रिय पत्नी सीता को वनवास दिया। आदर्श पत्नी सीता जी ने श्री राम पर कोई दोषरोप न करके लक्ष्मण जी से कहा था, "लक्ष्मण! रघुराज जी से कहना कि प्रजानुरंजन के हेतु बिना दोष के उन्होंने मुझे वनवास भेजा परन्तु यहाँ संन्यासिनी बनकर भी

में उन्हीं के ध्यान में रत रहूँगो" । हे रामचन्द्र आज भी भारत-वासी आपके युगान्तर के बीते हुये लीलाओं का स्मरण करते चले आ रहे हैं । आज भी उनके हृदय मन्दिर में आप वास कर रहे हैं । परन्तु प्रवाहमान काल की गति के कारण आज न हैं वह राम और न उनकी वह अयोध्या । आज इस संघर्षमय पृथ्वी के वासी कर्त्तव्य-बुद्धिहीन होकर पागल की भाँति इधर उधर दौड़ रहे हैं । न है शान्ति; न है सुख । आज रामचरित्र केवल रामायण में लिपिबद्ध है । उसे अनुकरण तथा अनुसरण करने वाला कोई नहीं । व्यक्ति, परिवार, समाज, राजनीति और धर्म–सर्वत्र ही मलीनता और उच्छृंखलता व्याप्त है ।

त्रेतायुगावसान में द्वापर के अन्तिम चरण में नित्य गोलोक-धाम से वृन्दावन चन्द्र श्रीकृष्ण वृन्दावन में अवतीर्ण हुये । न तीर धनुष, न युद्ध सज्जा, परन्तु केवल विश्व विजय करने वाला पवित्र उज्ज्वल प्रेम । क्या ही अपूर्व मूर्ति है श्रीभगवान की । हाथों में वंशी, गले में वैजयन्ती माला, भाल में मयूरपुच्छ और चरणों में नुपुर । यही हैं हमारे घनश्याम । अपरूपरूप चलते हैं तो मानो नृत्य कर करहे हैं, बोलते हैं तो मानो गीत गा रहे हैं । माधुर्य पूर्ण उस अनन्त रूप गुण की एक छटा ही समस्त त्रिभुवन को, समस्त प्राणियों को आकर्षित कर लेती है । केवल त्रिभुवन ही नहीं प्रत्युत समस्त भगवत् स्वरूप प्राणियों तथा लक्ष्मी स्वरूपा स्त्रियों के चित्त को आकर्षित करने वाला है वह अपूर्व रूप । श्रीकृष्ण-माधुर्य में ऐसी अनिवर्चनीय आकर्षण करने की शक्ति है कि स्वयं प्रभु ही उसके आस्वादन के लिए चंचल हो जाते हैं । श्रीकृष्ण इस

रस माधुर्य के रूप में अनुभव की वस्तु है इसका वर्णन भाषा द्वारा संभव नहीं । श्री विल्वमंगल द्वारा श्री कृष्ण-माधुर्य का वर्णन क्या ही अपूर्व है—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।
मधुसन्धि, मधुस्मितमेतवहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत)

गोपाल तापनीय श्रुति में कहा गया है–श्रीकृष्ण ही परम देवता हैं । दिव धातु का अर्थ है क्रीड़ा या लीला । देवता शब्द का अर्थ है लीलाकारी अर्थात् लीला करने वाले । लीला पुरुषोत्तम । कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

ब्रजवासियों के साथ ही श्रीकृष्ण लीला सम्पन्न हुई है । धीरे धीरे गोकुल वासी कृष्ण ने वृन्दावन में अपनी लीलाओं का प्रकाश किया एव साथियों के साथ उसी लीला में विभोर रहने लगे । यहाँ स्त्री पुरुष सभी उनकी क्रीडा के साथी हैं । दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुररस से पूर्ण है यह लीला ।

ब्रज लीला के प्रकाश करने का मुख्य उद्देश्य है भक्त को प्रेम रस के सार का आस्वादन कराना तथा जगत में राग मार्ग की भक्ति का प्रचार ।

श्रीकृष्ण की इच्छा शक्ति तथा उनकी लीला सहायक चित्-शक्ति रूपिणी योग माया के प्रभाव से श्रीकृष्ण स्वयं, पिता माता, सखागण एवं स्वकीय कान्ता गण भी आत्म विस्मृत होते हैं । योग माया के बल से कृष्ण ने प्रेम रस के आस्वादन के हेतु उन लीलाओं को प्रकट किया जो गोलोक में होना असम्भव थीं ।

अनादि काल से ही नित्यधाम में नव किशोर नटवर के रूप में वह विराजमान हैं। वात्सल्य रस के आस्वादन तथा उसके समस्त विचित्र एवं वैशिष्ठ्य को प्रकट करने के हेतु उन्होंने अपने शिशुरूप का दर्शन कराया।

प्राकट्य लीला में अन्य रसों की अपेक्षा मधुर या कान्ता रस का ही अपूर्व वैचिन्य स्फुरित हुआ है। मिलन के निमित्त उत्कण्ठा ही मिलन के आनन्द की पुष्टि करती है। उत्कण्ठा वृद्धि के साथ ही मिलन के आनन्द में चमत्कारिता की वृद्धि होती है। चित्शक्ति रूपी योग माया के प्रभाव से कृष्ण ने स्वकीया को परकीया में सज्जित किया यही कारण है कि ब्रज में परकीया भाव से रस में कोई अपवित्रता का भास नहीं हुआ। ब्रज की मधुर भावात्मिका लीला आपातत: दृष्टि से काम क्रीडा के अनुरूप प्रतीत होती है किन्तु वास्तव में कामक्रीडा नहीं है। इसमें आत्मेन्द्रिय प्रीति नहीं हैं वरन् सम्पूर्ण कृष्णेन्द्रिय प्रीति है। ब्रज के नायक एवं नायिका का एक मात्र उद्देश्य परस्पर के प्रति प्रीति निवेदन है। इसमें काम की कोई गन्ध नहीं। अप्राकृत वस्तु में प्राकृत बुद्धि का आरोप करना अपराध ही है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं; श्रीराधा उन के प्रेम की विकृति या घनीभूत अवस्था है श्रीराधा प्रकृति नहीं—उद्धारण अवतार हैं। वे एकात्मा होकर भी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से अनादि काल से पृथक देह धारण किए हैं। प्रेमास्वादन के निमित्त एक से दो हुए।

राधा कृष्ण प्रणय विकृति ह्लादिनी शक्ति राधा—कृष्ण सुख को तात्पर्यमयी सेवा द्वारा प्राप्त करना तथा कृष्णप्रीति

विधान ही श्री राधिका का कार्य है। श्री कृष्ण के अन्य कान्ताओं में वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं अन्य गोपियों का भी यही भाव है। श्रीकृष्ण-सुख को प्राप्त करने के हेतु उन्होंने जाति-धर्म, वेद-धर्म, लोक-धर्म, लज्जा, धैर्य, देह-सुख, आत्मीय स्वजन सभी का त्याग किया।

भगवान कृष्ण ने ऐसी सर्वचित्ताकर्षक अनिवर्चनीय ब्रज-लीला प्रकट की जिसके विषय में सुनकर माया—मुग्ध जीव संसार सुख के अकिंचित्कर्ता को उपलब्ध करने में समर्थ हो सकता है एवं उक्त लीला द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा में अपने को धन्य करने की आकांक्षा उनमें जागृत हो सकती है। दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि आज भी अप्राकृत ब्रज-लीला में प्राकृत बुद्धि का प्रभाव है। आज भी श्रीकृष्ण के पवित्र मधुर प्रेम में सन्देह वर्तमान है।

एकादश वर्ष की आयु में कृष्ण ने कंस का वध किया। उससे पूर्व अनुष्ठित ब्रज में प्रेम की पराकाष्ठा पूर्ण सुमाधुर्य रासलीला, वस्त्रहरण लीला प्रभृति में भी दोष—त्रुटियों को, मानव प्रकट करने में कुण्ठत नहीं होता। न जाने कब मानव वहिर्मुखता के घेरे से निकलकर अर्न्तमुखी होगा।

विदग्ध माधव में एक श्लोक है—

> अनर्पितचरीं चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ
> समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
> हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसंदीपितः
> सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

अर्थात् इससे पूर्व बहुत कालपर्यन्त जो अर्पित न हो सका, अनन्त उज्ज्वल रसमयो अपनी उस भक्ति सम्पत्ति दान के हेतु जो कृपा वशत: कलियुग में अवतीर्ण हुये—स्वर्ण से भी अति सुन्दर द्युति समूह द्वारा समुद्भासित, ऐसे शचीनन्दन हरि सर्वदा तुम्हारे हृदय-कन्दर में स्फुरित होवें।

श्रीकृष्ण लीला अप्रकट होने के पश्चात् फिर से जब भारत में अधर्म का अभ्युत्थान हुआ तब श्रीकृष्ण ने जीव जगत के स्वार्थ, जीव-दु:ख से कातर होकर यह स्थिर किया कि जगत में बहुत समय व्यतीत हो गया प्रेमदान नहीं किया गया। धर्म परायण व्यक्ति ही भगवान का ध्यान करते हैं उन्हें भगवान के ऐश्वर्य का ही ज्ञान है, शुद्ध माधुर्यमय भगवान के रूप का नहीं। प्रेमभक्ति के बिना दु:ख निवारण का कोई उपाय नहीं है। अत: इसी प्रेम-भक्ति प्रचार के हेतु श्री हरिनाम संकीर्तन प्रवर्तित करवाकर एवं स्वयं दास, सखादि चारों भावों की भक्ति प्रदान कर भगवान जीव को प्रेमोन्मत्त करेंगे स्वयं भक्त-भाव अंगीकार कर जीवों को भक्ति-धर्म की शिक्षा देंगे।

इसी उद्देश्य से कलियुग के आरम्भ में कुछ काल पश्चात् नवद्वीप में श्रीकृष्ण गौरांग के रूप में अवतीर्ण हुये। नवलीलाकारी गौरांग पहले निमाई नाम से परिचित हुये। पढ़ने लिखने में उनकी अनन्य प्रतिभा देखकर लोगों को विस्मय हुआ। अल्प समय में विराट पाण्डित्य लाभ कर उन्होंने नवद्वीप को धन्य किया। उनके अपूर्व अलौकिक रूप सौन्दर्य पांडित्य एवं प्रतिभा ने सभी के चित्त को आकर्षित किया।

विद्याध्ययन में उनकी रुचि अधिक काल तक न रही, श्रीकृष्ण भक्ति लाभ करने के हेतु वे उन्मत्त हुये। सभी यह देखकर आश्चर्य चकित हुये कि पाण्डित्य गौरव से गौरवान्वित निमाई अब पण्डित नहीं प्रत्युत् कृष्ण विरह दीन विग्रह स्वरूप एक परम भागवत रूप में परिवर्तित हो रहे हैं। नव द्वीप निवासी परम तेजस्वी वैष्णव श्री अद्वैत, श्रीवास एवं गदाधर के के साथ वे भी हरि संकीर्तन में मत्त हो गये। भक्त का यह रूप अधिक समय तक गुप्त न रह सका। इसके अतिरिक्त श्री नित्यानंद श्रीहरिदास आदि लीला साथियों ने आकर हरि-नाम-रूप का स्रोत बहा दिया। पंडितों एवं कुछ अन्य सम्प्रदायों के लोगों ने इसका घोर विरोध किया। यह देख २८ वर्ष की आयु में संन्यासीप्रवर केशव-भारती द्वारा वे संन्यास मंत्र में दीक्षित हुये। इसी समय से वे श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम से प्रसिद्ध हुये। इसके पश्चात् चैतन्य प्रभु ने नीलाचल, दक्षिणात्य, झारीखण्ड, वाराणसी, प्रयाग, वृन्दाबन आदि में असंख्य व्यक्तियों को नाम प्रेम वितरण कर धन्य किया। लुप्त तीर्थ श्रीमथुरा, श्रीवृन्दावन, श्रीरूप, सनातन, भूगर्भ, लोकनाथ प्रभृति भक्तों द्वारा उद्धार करवाया। उन्होंने संकीर्तन विरोधी जिला शासक काजी, जगाई, माधाई प्रभृति दुष्टों एवं पतितों का उद्धार किया। यवन हरिदास द्वारा हरिनाम की प्रवल शक्ति एवं महिमा को प्रकट करवाया। यवन होकर हरिनाम कीर्त्तन करने के हेतु मुसलमान काजी ने उन्हें बाइस बाजार में वेत्राघात द्वारा प्राणनाश की आज्ञा प्रदान की। किन्तु हरिनाम के प्रभाव से हरिदास को तनिक भी

आघात प्रतीत न हुआ । बादशाह ने आश्चर्य चकित होकर हरिदास को यथावत मर्यादा देकर उनको इस पवित्र कार्य के करने में पूर्ण स्वतन्त्रता दी । उन्होंने उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र एवं सर्वश्रेठ पंडित वासुदेव सार्वभौम के पाण्डित्यगरिमा को नष्ट कर नाम मन्त्र में उन्हें दीक्षित किया ।

वाराणसी में शंकराचाय के मायावाद का खण्डन कर संन्यासी समाज के एकछत्र अधिपति मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वती को उन्होंने प्रेम भक्ति के पथ का पथिक बनाया । वृन्दावन जाने के मार्ग में भी प्रभु ने जंगलों के हिंसक जन्तुओं को प्रेम-दान किया । वे भी कृष्ण प्रेम में उन्मत्त होकर कृष्ण २ नामोच्चारण पूर्वक नृत्य करने लगे । न जाने कितने कोल, भील सांवताल, विधर्मी, म्लेच्छ महाप्रभु की कृपा से कृष्ण प्रेम पाकर, धन्य हुये । इस प्रकार कृष्ण नाम व प्रेम वितरण करने के पश्चात् श्रीराधा-कृष्ण-मिलित अंग रूप श्री गौरांग महाप्रभु ने प्रकट लीला के अन्तिम १८ वर्ष इसी प्रेमोन्मत्त अवस्था में श्रीराधा के भाव में आविष्ट होकर नीलाचल में व्यतीत किये । प्रेमातिशय से प्रभु की प्रत्येक अंगग्रन्थि, कभो २ एक वितस्ति—परिमाण शिथिल होकर, देह सात—आठ हाथ लम्बा हो जाता था । कभी कूर्माकार या मांस पिंड के समाने हो जाता था । महाभाव में इस प्रकार की अभिव्यक्ति मानव बुद्धि के लिये अतीत है, यह भगवान में ही संभव है ।

'मन्मना भवोमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' इत्यादि वाक्यों में श्रीकृष्ण ने राग मार्ग के भजन का उपदेश मात्र दिया था,

किन्तु सर्वचित्ताकर्षक आदर्श के अभाव में उसे अनुसरण करने में सांसारिक प्राणी आकृष्ट न हो सके । महाप्रभु चैतन्य ने स्वय भक्तिभाव से भजन कर एवं स्वीय भक्त—वृन्दों द्वारा भजन करवाकर भजन का परमोज्ज्वल आदर्श स्थापित किया । यह स्वयं महाप्रभु के स्वरचित शिक्षाष्टक से जाना जा सकता है कि हरिनाम माहात्म्य कितना मधुर है ।

संकीर्तन से पापी संसार का नाश होता है । चित्तशुद्धि सर्वभक्ति—साधन—उद्गम है । कृष्ण प्रेमोद्गम प्रेमामृत आस्वादन तथा कृष्ण प्राप्ति के हेतु सेवामृत समुद्र में प्रत्येक मनुष्य की इच्छा भिन्न २ प्रकार की होतो है । लेकिन कृपा दृष्टि से ही नाना नामों का प्रचार हुआ । जो सदैव सोने, उठने, बैठने आदि समयों में नाम जपता है देशकाल नियम के शृंखला से दूर, उसे सर्व सिद्धि होती है ।

तृणापेक्षा सुनीच होकर अर्थात् पूर्णतया निरभिमान होकर वृक्ष की भांति धैर्य्य धारण कर अर्थात् जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते या पुष्प तोड़ने पर या उसकी शाखाओं को काट लेने पर भी वृक्ष अपने दु:खदाता को छायादान करने से विरत नहीं होता, उसो प्रकार उत्तम प्राणी होने पर भी अभिमान शून्य होकर हरिकीर्त्तन करना होगा तभी प्रेम-भक्ति का लाभ हो सकता है ।

महाप्रभु ने स्वयं हरिनाम का प्रचार किया । एवं गोस्वामियों के द्वारा भी इसका प्रचार करवाया । इसी 'नाम' के प्रभाव से सभी जगत् में प्रेम स्रोत प्रवाहित होने लगा परन्तु

कालान्तर में वही प्रेम धर्म म्लान होने लगा। धर्म के नाम पर अधर्म, अनाचार होने लगा जिसे देखकर लोगों की हरिनाम पर जो श्रद्धा भक्ति थी, लोप होने लगी। धीरे धीरे सभी क्षेत्र में अधर्म का प्रभाव फैलने लगा और फलस्वरूप प्रलय उपस्थित हुआ।

ऐसी अवस्था को देखकर गोलोक में भगवान का आसन कांप उठा। जीव-दुःख कातर श्रीहरि का हृदय रो उठा और बंगाल की भूतपूर्व राजधानी जिला मुर्शिदाबाद में भागीरथी के तीर पर स्थान डाहापाड़ा ग्राम में, एकाधार में अपनी समस्त शक्तियों का संचय कर श्रीभगवान अवतरित हुये—जगद्बन्धु के रूप में "जगद्बन्धु" का नाम धारण कर।

श्री श्री प्रभु के वाणी का अनुधावन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस बार प्रभु केवल प्रेम-भक्ति का दान देने के लिए नहीं आये प्रत्युत् मानव-समाज की समस्त ग्लानियों को दूर कर मनुष्यत्व की उन्नति के हेतु तथा मानव एवं भगवान के बीच सम्बन्ध स्थापित करने केलिए भगवान की पूर्व लीलाओं को समन्वित कर श्री श्रीप्रभु जगद्बन्धु के रूप में धरा पर अवतीर्ण हुये। प्रभुजी ने कहा है—"मुझे कृष्ण भी नहीं कहा जा सकता और न गौरांग, क्या मैं वही नहीं हूँ? हाँ इस बार तत्व बहुत ही निगूढ़ है। दशरथ-पुत्र राम, ब्रजनन्दन कृष्ण एवं श्री राधा के सभी लक्षण मुझ में हैं। क्या तम्हारी आंखें ऐसी हैं जो तुम उन्हें मुझमें देखो। केवल मनुष्य ही नहीं अणु परमाणु तक मैं अपने स्वरूप को प्रकाश करूंगा तभी मेरा नाम जगद्बन्धु। अबकी चार महादेशों में समान रूप से धर्म संस्थापित होगा

हरिनाम के प्रेम से समस्त धरा कम्पायमान होगी। तुम धीरे-धीरे कार्य करो, ब्रह्मचर्य का पालन करो मैं एक एक आघात में एक एक महादेश (Continent) को ठीक करदूंगा मद्यपान, गोहत्या समाप्त होगी" यह थी उन प्रभु की वाणी। इसके अतिरिक्त भी जगत कल्याण के हेतु उनकी अनेक वाणियाँ हैं।

भुवन—पावन प्रभु जगद्बन्धु की लीलाओं की गाथाओं एवं भविष्य-वाणियों का यह संक्षिप्त ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रन्थ का पाठ करने से जन-कल्याण साधन होगा। कल्याण के हेतु ही इस ग्रन्थ का प्रचार किया जा रहा है। जीव-जगत प्रभु की कृपा लाभ द्वारा अपने को धन्य करे यही एकमात्र लेखक की श्री प्रभु के चरणों में कातर प्रार्थना है।

—जयबन्धु दास

श्रीश्रीबन्धु–वन्दनाष्टकम्

पद्मासनसमासीनं पद्मपलाशलोचनम् ।
स्मरदर्पहर–स्मेरं स्मरामि बन्धुसुन्दरम् ॥१॥

चारु–लोचन–चातुर्य–चमत्कृत–चराचरम् ।
चित्त–चकोर चौरं तं बन्धुचन्द्रं भजाम्यहम् ॥२॥

विद्युद्विडम्बि–विग्रहं विकसदिन्दुवदनम् ।
श्रीबन्धुवितोदं वन्दे बामादेवीस्तनन्धयम् ॥३॥

विषम–विषयारण्य–दाव—निर्वाण—नीरदम् ।
कन्दर्प–वृन्द–सौन्दर्यं श्रीबन्धुमभिवादये ॥४॥

असमोर्द्ध्व–सुमाधुर्यं मदन–मद–मर्द्दनम् ।
ब्रह्मचर्यं विशिष्टं बन्धुसूर्यं भजाम्यहम् ॥५॥

प्रेमवश्यं अनाराध्यं प्रीतिरसास्पदं परम् ।
नमामि नयनानन्दं श्रीजगद्बन्धुसुन्दरम् ॥६॥

श्रीमहानाम विग्रहं महानाम–यज्ञेश्वरम् ।
सुधेन्दु–सुन्दरं बन्धुं नमामि दीन–नन्दनम् ॥७॥

महानामात्मकं परं डाहापाड़ा–पुरन्दरम् ।
श्रीअंगन–कामेश्वरं वन्देऽहं बन्धुसुन्दरम् ॥८॥

'महानामव्रत'

जय जगद्बन्धु हरि

प्रेमावतार प्रभु जगद्बन्धु

(१),

आविर्भाव की पूर्व सूचना

अनास्वादितमाधुर्यप्रदानायावतारणम् ।
श्रीहरि पुरुषं वन्दे श्री जगद्बन्धुसुन्दरम् ॥
अनादेरादिगोविन्दं वन्दे स्वतन्त्रमीश्वरम् ।
पञ्चतत्त्वमयं प्रभुं श्री जगद्बन्धु सुन्दरम् ॥

श्रवण-मन-रसायन श्री प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर की लीला अप्राकृत सुरतरंगिणी की धारा है जो अनादि और अनन्त है। प्रभु जीवों के उद्धारण के हेतु लीला करने आये। उनकी लीला परम सुखदायिनी है ; सुन्दर से भी सुन्दर है ; भावुक भक्तों के लिये संग्रहणीय है। जो कृपाप्राप्त अधिकारी हैं वे इसे सानन्द चित्त से ग्रहण करते हैं। साधु गुरुकृपा से वहिर्मुख उन्मुख होते हैं। प्रभु की वाणी यह है कि इस वार महा–उद्धारण लीला से अणु-परमाणु, स्थावर, जङ्गम, कीट, पतङ्ग आदि तक कृतार्थ होंगे। चिरकाल से वञ्चित एवं उपेक्षित जनों के लिये यह कम आशा की बात नहीं है।

पूर्वबंग प्रदेश में फरीदपुर जिला है। यह आज कल पूर्व पाकिस्तान में है। यहाँ के सुविख्यात, न्यायशास्त्रप्रवीण, पण्डित श्री दीनानाथ न्याय रत्न महाशय बंगाल–बिहार–उड़ीसा के राजस्व सचिव बंगाधिकारी महाशय की राजसभा में सभा-पण्डित का आसन अलंकृत करने के लिये मुर्शिदाबाद जिले के डाहापाड़ा आये। स्थानीय संस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष पद को भी उन्होंने सुशोभित किया। उनके आदर्श चरित्र और पाण्डित्य ने सभी को मोहित कर लिया था। पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर डाहापाडा ग्राम में वे सपरिवार रहने लगे। नारायण के विग्रह की सेवा उनके जीवन का व्रत था। उनकी पत्नी का नाम था वामादेवी। कुछ दिनों पूर्व इस ब्राह्मण दम्पती को पुत्रवियोग का आघात पहुंच चुका था। माता–पिता दोनों इस आघात से मर्माहत हुए थे। फलस्वरूप उनके हृदय में ऐसे पुत्र की कामना उत्पन्न हुई जिससे कभी किसी प्रकार के शोक की सम्भावना न रहे। ऐसे पुत्र की कामना से वे नित्य नारायण के सन्मुख प्रार्थना किया करते। इसी प्रकार समय बीतता गया।

भावग्राही जनार्दन ने धर्मप्राण शुद्धचित्त भक्त दम्पती की प्रार्थना सुनी। उसको स्वीकार किया। क्यों न करते ? जीव जगत में अवतीर्ण होने के लिये उन्होंने वात्सल्यरसामृत पिता-माता को प्रकट किया था। निजजन के माध्यम से ही तो भगवान् की लीला चला करती है। जगन्माता वामादेवी के शरीर में सन्तान सम्भावना के लक्षण प्रकट हुए। एक दिन स्वप्न में प्रकट होकर ज्योतिर्मय परम पुरुष ने वामादेवी से कहा—'देवि ! अधर्म ने पृथ्वी को ग्रस लिया है। धर्म की रक्षा के लिये, प्रेमा

भक्ति की स्थापना के लिये मैं तुम्हारे यहाँ आरहा हूँ, वामादेवी के हृदय में आनन्द-सिन्धु उमड पडा। आसन्नप्रसवा जननी का शरीर निस्सीम रूप लावण्य से निखर उठा। देवी के असाधारण रूप–लावण्य को देख कर लोग कहने लगे कि साक्षात् भगवती जैसा रूप माधुर्य है। गृह-सेवक नवीनमण्डल ने ग्रन्थकार को बताया कि भगवती के रूपमाधुर्य में और माँ के रूप माधुर्य में अन्तर नहीं था। शुभ मुहूर्त में रूप ' अधिराज कोटि कन्दर्प कान्तिमान् श्री हरि आविर्भूत होंगे इस विश्वास के साथ साथ वामादेवी का रूप-लावण्य बढ़ता ही गया।

(२)

शुभ आविर्भाव

बंगला सन् १२७८ सौर वैशाख का दिनांक १६। सन् १८७१ ई० की २८ अप्रेल। दिन शुक्रवार शुक्ला नवमी (सीता नवमी)। दशों दिशायें प्रसन्न हैं। शुभज्योत्स्नापुलकित यामिनी। ग्रहनक्षत्रवेष्टित सुनिर्मल आकाश। चन्द्रोदय के कारण दिङ् मण्डल विचित्र शोभा में युक्त होकर जीव-जगत के लिये आनन्द का वितरण कर रहा है। प्रकृति शुभ योग, क्षण और शुभ ग्रहों के समावेश में व्यस्त है। कौन जानता है, किसके इस धराधाम पर अवतरण की प्रतीक्षा की जा रही है। अघटितघटनापटीयसी शक्तिमती प्रकृति के अनुकूल आज धीरे-धीरे पुष्पवन्त योग, महेन्द्रक्षण और नवग्रह के पांच शुभ ग्रह तुंगस्थान पर आकर मिल रहे हैं। ऐसे शुभ क्षण में सर्व-सुलक्षणसम्पन्न, सुवर्णकान्ति से दीप्तिमान्, शिशु भूमिष्ठ हुआ। नयनाभिराम हृदयानन्द शिशु को देखकर माता वामादेवी, पिता दीनानाथ समस्त पुरवासी नरनारी आनन्दसागर में निमग्न हो गये। यही नवजात दिव्य शिशु हैं हमारे ग्रन्थ-प्रतिपाद्य श्री प्रभु जगद्बन्धु।

श्री भगवान की स्वरूपशक्ति है योगमाया। उसी के आवरण में उनकी लीला चला करती है। योगमाया जिससे जो कराना चाहे करा सकती है। उसके हाथों में भगवान् भी खेलने की गुड़िया बन जाते हैं। उसके निर्देशन में ही लीला

होती है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अधीश्वर सामान्य मायिक जीव के समान दस मास तक माता के गर्भ में क्यों निवास करेंगे? अपनी इच्छा शक्ति से वे लीला करते हैं। प्रभु ने कहा है—"मैं अयोनिसम्भव हूँ। इच्छा के अधीन अवतार ग्रहण करने वाला हूँ।"

गीता में कहा है—

> अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्।
> प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
> जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
> त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
> (४।६, ६)

अर्थात्—अजन्मा, अव्ययात्मा, भूतों का ईश्वर होते हुए भी मैं अपनी प्रकृति का अधिष्ठान ग्रहण कर आत्म-माया के द्वारा प्रकट होता हूँ। हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं जो तत्त्वतः यह जानता है वह देह का त्याग करने के पश्चात् पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। मुझे प्राप्त होता है।

१८९१ ई० में प्रभु ने डाहापाड़ा में अपने एकनिष्ठ भक्त श्री अतुलचन्द्र चम्पटि (भूतपूर्व हेडमास्टर जिला स्कूल, आरा, बिहार) महाशय से अपने जन्मरहस्य का इस प्रकार वर्णन किया था—

"अतुल! आज अपना जन्मरहस्य बताऊंगा। जन्मस्थान मुर्शिदाबाद का डाहापाड़ा। राजधानी से भिन्न स्थान पर अवतार का आविर्भाव नहीं होता। ब्रह्माधिकारी बंगाल के श्रेष्ठ धर्माधिकारी हैं। खाइयों से घिरा उनका किला जैसे

महल हो। दीनानाथ न्यायरत्न उनके सभापण्डित। न्यायरत्न और उनकी पत्नी भट्टाचार्यों के द्वारा प्रदत्त भूमि पर रहते थे। न्यायरत्न और उनकी पत्नी अन्नप्राशन उत्सव के सम्बन्ध में बंगाधिकारी के घर गये थे। लौटने पर उन्होंने देखा कि एक सद्योजात अपूर्व शिशु के ज्योतिर्मय आलोक से गृह आलोकित है। न्यायरत्न और उनकी स्त्री दोनों स्तम्भित रह गये। न्यायरत्न जी की गृहिणी उस समय गर्भवती अवश्य थीं, किन्तु लोगों ने समझा कि उन्होंने पुत्र प्रसव किया है। इस घटना को उन दोनों ने किसी से नहीं बताया।

इस घटना के डेढ़ वर्ष बाद न्यायरत्न की गृहिणी का स्वर्गवास हो गया और भट्टाचार्य के परिवार को एक स्त्री ने उनका पालन-पोषण किया। न्यायरत्न ने शिशु का जन्मपत्र बनाकर रक्खा ही था। उसी समय महारानी स्वर्णमयी के पास एक संन्यासी ज्योतिषी आये। भारतविख्यात आयुर्वेद शास्त्र में युगान्तर करने वाले गंगाधर कविराज के साथ न्यायरत्न महाशय का विशेष प्रेम था। कविराज ने न्यारत्न से बालक का जन्मपत्र संन्यासी को दिखाने के लिये कहा। गंगाधर जी के अनुरोध पर न्यायरत्न ने जन्मपत्र संन्यासी को दे दिया। संन्यासी ने जन्मपत्र को ले लिया और कहा—"मैं देख रक्खूंगा। तुम अमुक दिन आना। निश्चित दिन न्यायरत्न संन्यासी के पास पहुंचे। संन्यासी ने कहा—"न्यायरत्न! मैं अच्छी तरह देख न सका। दो चार दिन बाद आना।" फिर न्यायरत्न उनके पास पहुंचे। संन्यानी ने यहा—"मैंने

अच्छी तरह जन्मपत्र को देख तो लिया किन्तु अभी मेरे कौतूहल की निवृत्ति नहीं हुई है तुम अमुक दिन आना।"

पुन: न्यायरत्न संन्यासी के पास पहुँचे। संन्यासी ने प्रश्न किया—"तुम्हारा पुत्र जीवित है?" न्यायरत्न ने पूछा—"आपने ऐसा प्रश्न क्यों किया? क्या ग्रह का कोई दोष है?" संन्यासी ने कहा—"नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। बताओ, जब तुम आये थे तो बच्चा क्या कर रहा था?" न्यायरत्न ने कहा—"बच्चा आंगन में खेल रहा था। संन्यासी ने कहा—"न्याय रत्न! एक काम करो। बच्चे को ले आओ मैं एक बार उसे देखूंगा।"

न्यायरत्न चले गये और गंगा जी के पार उतर कर बच्चे को लेकर वापिस लौटे। संन्यासी ने बच्चे को हृदय से लगा लिया। उनकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली। संन्यासी को रोते देखकर न्यायरत्न डर गये। बोले—"आप रोकर बच्चे का अकल्याण क्यों कर रहे हैं?" संन्यासी ने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। उन्होंने बच्चे के चरणों को अपने मस्तक पर रख लिया और कहा—'न्यायरत्न! आज मैं समझा कि कि मेरा नैपाल से बंगाल आना क्यों हुआ? प्रत्येक अवतार में ऐसा सौभाग्य एक आध को ही मिलता है। आज मेरा सौभाग्य है। तुमसे मैं और क्या कहूँ। जिन पांच ग्रहों के संचार और संयोग से भगवदवतारों का आविर्भाव होता है, वे ही पांचो ग्रह इस शिशु के लग्नपत्र में तुंगस्थ हैं। श्रीराम, लक्ष्मण आदि के जन्मपत्रों में ऐसा मिलता है। यह बालक दिग्विजयी महापुरुष है। इस से जीव कृतार्थ होंगे।

श्रीमद्भागवत संहिता में ब्रह्मा जी ने स्तुति की है—

कोवेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन
योगीश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥
(१०।१४।२१)

भगवन् ! जिस समय आप योग माया का विस्तार करते हुये क्रीडा करते हैं उस समय आप की लीला कहाँ, कैसे, कितनी कब और क्यों होती है यह त्रिलोकी में कौन जान पाता है ?

डाहापाडा के निकटवर्ती देवी स्थान किरीटेश्वरी के मन्दिर में एक और संन्यासी आये थे। वे न्यायरत्न के घर बन्धु गोपाल को देखकर पूछने लगे—"यह किसका लडका है ? साक्षात् नारायण के लक्षण इसमें दिखाई पड रहे हैं"। पिता के द्वारा पुत्र का परिचय दिये जाने पर उन्होंने कहा—'न्यायरत्न ! तुम्हारा पुत्र राजा होगा'। न्यायरत्न ने कहा—'मुझ जैसे दरिद्र का पुत्र राजा' ! उत्तर था—'भोग का राजा नहीं, योग का राजा'।

बन्धु हरि युग-युग में माता–पिता के सम्बन्ध से माया का प्रकाश किया करते हैं। भागवत में बताया गया है कि माता देवकी और पिता वसुदेव के समक्ष भगवान् श्रीकृष्ण पहिले दिव्य चतुर्भुज रूप से प्रकट हुए फिर कुछ क्षणों के बाद प्राकृत शिशु बन गये।

'प्राकृत मनुष्य नहे निमाई पण्डित', 'अयोनि सम्भव' से प्रकट होता है कि श्री गौराङ्ग महाप्रभु प्राकृत मनुष्य नहीं थे।

जगन्नाथ मिश्र और शचीदेवी की अंगज्योति से महाप्रभु का आविर्भाव हुआ। मायातीत श्रीकृष्ण जीवों के हित के लिये विशेष चिन्हों के साथ मनुष्यों में मनुष्य रूप से अवतरित होते हैं।

दिव्य नर देह धारी बन्धु हरि के युगल चरण कमल मस्तक पर धारण करते हैं।

अचिन्त्याः खलु ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत् ।

जिन भावों तक मनुष्य की बुद्धि नहीं पहुँचती उनके साथ तर्क जोड़ना ठीक नहीं होता।

---

(३)

दिगम्बरी देवी

बन्धुहरि की आयु डेढ़ वर्ष की थी जब वामा देवी का देहान्त हुआ। डाहापाड़ा में उनकी देख रेख करने वाला न रहने पर उन्हें फरीदपुर लाया गया। कुछ दिन उनकी चाची रासमणि देवी ने उनका लालन पालन किया। किन्तु बाद में उनका भी देहान्त हो जाने पर दीदी दिगम्बरी देवी उनका लालन पालन करने लगी। वे प्रभु बन्धु की भगवत्ता अनुभव करने पर परवर्ती काल में स्वीय इष्ट मंत्र त्याग कर प्रभु के नाम और सेवा करती थीं। अपने शैशव काल में जब वह कोई शब्द उच्चारण नहीं कर सकते थे—हरिनाम उच्चारण नहीं कर सकते थे तो अपनी तोतली बोली में अस्पष्ट स्वर से "हयि" "हयि" कहकर ताली बजा बजा कर नृत्य करते थे। जगत के (उनके नाम) कीर्त्तन करने का आग्रह देखकर दीदी ने बेंत के ढ़ोल और पीतल की करताल खरीद दीं। जगत सुन्दर खेलते खेलते करताल बजाबजा कर 'आधा" आधा" (राधा नाम के अपभ्रंश) कहकर नृत्य करते थे। बाल्यकाल में एक दिन वे तुलसी वृक्ष के निकट से जा रहे थे। देखकर दीदी बोली—"जगत तुलसी की छाया पर पांव न देना-तुलसी वृन्दा रानी है"

जगत तुलसी के चारों ओर छाया को बचाकर घूमने लगे और छाया भी प्राकृतिक नियम का उल्लंघन कर वह जिधर जांय उनके पीछे पीछे घूमने लगी, मानो जगत के पांव को स्पर्श करेगी। जगत बोल उठे—दीदी! यह मुझे नहीं छोड़ती है"

दीदी ने कहा है—रात में जब मैं जगत को लेकर लेटी रहती थी उस समय न जाने कहाँ से किस तरह एक सांड उसी घर में आ जाता था और किसी को भी पांव से न कुचलकर इधर उधर सूंघता फिरता था। रास्ते में जाते समय मैदान की गौएँ भी घास न खातीं, जब तक देख सकती थीं जगत की तरफ देखती रहती थीं मौका पाने पर जगत के शरीर को चाटती थीं। जगत गाय के थन में मुँह लगाकर दूध पीते थे—गाय और बछड़े को आदर करते थे।

दीदी जगद् बन्धु के पुराने कपड़े रख दिया करती थी। मैंने देखा है कि उन कण्ड़ों में नाना प्रकार के रंग लगे थे। दादी के वृद्धावस्था में फरीदपुर की औरतें उनके पास बन्धु-कथा सुनने आती थीं। वे उनसे यदि अपने किसी स्वजन की रोग व्याधि के सम्बन्ध में कहतीं तो दीदी वही पुराने वस्त्र से एक टुकड़ा फाड़कर उन्हें दे देती थीं और कहती थीं कि उस टुकड़े को धोकर पानी पिला देना, अच्छा हो जायगा। और रोगी स्वस्थ हो जाता था। इस प्रकार खेल कूद के माध्यम से आत्म प्रकाश करने के बाद प्रभु ने पढ़ने लिखने में मन लगाया।

---

(४)

प्रकाश की प्राग्दशा

जगद्बन्धु के सात वर्ष की आयु के समय उनके पिता दीनानाथ न्याय रत्न महाशय का देहान्त हो गया। पितृ श्राद्ध के समय सप्त वर्षीय बालक बन्धु हरि ने आठ घण्टे एक आसन से बैठकर कृतविद्य की तरह विशुद्ध भाव से संस्कृत मंत्र उच्चारण कर श्राद्ध कार्य सम्पन्न किया।

अपने बाल्य काल में नाना स्थानों में अपने स्वजनों के घर रह कर पढ़ लिखकर कुछ बड़े होने पर उन्होंने फरीदपुर ब्राह्मण कांदा के मकान में रहकर फरीदपुर जिला स्कूल में पढ़ना आरम्भ किया शरीर को आपाद मस्तक ओढ़कर एक आंख खुली रखकर रास्ते के एक किनारे से वह स्कूल जाते थे। स्कूल में पृथक आसन पर बैठते थे ? किसी के अंग स्पर्श नहीं करते थे। शिक्षकों के साथ पढ़ने लिखने को छोड़कर और किसी प्रकार का वार्तालाप नहीं करते थे। बाल्यावस्था से ही भूमि की तरफ दृष्टि रखकर रास्ता चलते थे। वे विनयी, स्वतन्त्र, नैष्ठिक, तथा स्वल्पभाषी थे। उनकी स्वर सुमधुर वीणा ध्वनि सा था। बाल्य अवस्था से ही वह तुलसी, देव मन्दिर, ब्राह्मण और साधु सन्तों को प्रणाम करते थे। वह लोक शिक्षा गुरु थे–

"आपनि आचरि धर्म जीवेरे सिखाय" (आप धर्म का पालन कर जीव को सिखाते हैं)—इसमें उनका कोई उपदेष्टा नहीं था।

तेरह वर्ष की आयु में प्रभु का उपनयन संस्कार हुआ। उसी समय से उनका उषः स्नान, त्रिस्नान, जप, संयम निष्ठा ब्रह्मचर्य आरम्भ हुआ। अति साधारण वस्त्र व्यवहार करते थे। साधारण धुले हुये कपड़े पहनते थे–धोबी से धुला हुआ या सोडा साबुन से धुला कपड़ा नहीं पहनते थे, मुँह और पांव पोछने के लिये अलग अलग गमछा रखते थे। शुद्ध और पवित्रता के आधार थे।

प्रभु जगद्बन्धु कभी कभी गृह देवता श्री श्री राधा गोविन्द जी की सेवा करते थे। जिस दिन प्रभु पूजा करते उस दिन विग्रह मूर्ति उज्ज्वल दिखाई देती थी। किसी दिन श्री राधा का वेष गोविन्द जी को और किसी दिन श्री गोविन्द जी का वेष श्री राधा को पहनाते थे। अपने भाव में न जाने कि क्या क्या दिव्य बातें कहते थे।

कभी कभी रात के समय बन्धु सुन्दर आसन लगाकर कमल के फूल की तरह जलाशय में तैरते थे। एक दिन एक भक्त दम्पति (पति पत्नी) एक क्षण के लिये बालक बन्धु के राधा मदन के रूप में दर्शन-कर क्या देखा कि सोचते सोचते परमाश्चर्यान्वित हो गये।

---

(५)

दुखीराम के प्रति कृपा

एक दिन सन्ध्या समय जगद्बन्धु स्कूल से घर लौट रहे थे। सारा शरीर सफेद कपड़े से ढका हुआ था—केवल दो पैर दिखाई दे रहे थे। रक्तवर्ण चरण युगल दिखाई पड़ रहे थे। मध्यान्ह सूय के किरण जसी शुभ्र अंगज्योति वस्त्र भेद कर प्रकाशित हो रही थी। उसी समय बाजार के दूकानदार दुखीराम फरीदपुर बाजार से दही लेकर किसी विवाह स्थान में देने जा रहा था। अचानक दुखीराम रुक गया जैसे कि कोई अद्भुत दृश्य उसके दृष्टिगोचर हुआ हो......वह दृश्य और कुछ नहीं उसकी दृष्टि प्रभु जगद्बन्धु के चरण कमलों पर पड़ी थी। उस दृश्य से आकृष्ट होकर दुखीराम जगद्बन्धु के पीछे पीछे चलने लगा वह भूल गया कि उसे उस रास्ते को छोड़ दूसरे रास्ते से जाना था। जगद्बन्धु रास्ते के किनारे अपने गृह में चले गये तब दुखीराम का ज्ञान लौट आया किसी अपरिचित गृह में वह किस तरह प्रवेश करेगा? इस कारण वह उसी स्थान पर खड़ा रहा। दुखीराम नयन मूंद कर स्तम्भ की तरह स्थिर होकर खड़ा रहा। बहुत देर तक वह वैसा ही रहा उसके बाद काम समाप्त कर दुकान में लौट

गया। सारी रात वह सो नहीं सका। इस प्रकार का एक आकर्षण, एक अस्थिर भावना उसके मन में आन का कोई कारण वह न समझ सका। रूप के लोभी नयन अरूप के रूप को देखना चाहते हैं। अगर एक झलक देख लेता है तो उसकी यह अवस्था होती है।

धीरे धीरे अनुसन्धान करते करते उसने पता लगाया कि उनका नाम जगद्बन्धु है, वे चक्रवर्ती के परिवार के हैं और दुखीराम के परिचित जलधर के साथी हैं। वे जलधर की दूकान पर कभी कभी आते हैं। दुखीराम ने जलधर से कह दिया कि 'जब वे आवें तो उनको मेरी दूकान पर ले आना।' इसके बाद दुखीराम को यही चिन्ता हो गई कि वे कब आते हैं। किसी काम में उसका मन नहीं लगता था। वह यही सोचता रहता था।

चिर परिचित स्वजन को योगमाया पराया बना देती है। एक दूसरे की पहिचान में नहीं आता। दुखीराम एक दिन दुकान पर बैठा प्रभु का ध्यान कर रहा था कि जलधर उनको साथ लेकर वहाँ उपस्थित हो गया। दुखीराम अस्थिर हो उठा। उनको कहाँ बैठाये? किस प्रकार उनका स्वागत करे? उसका आसन उनके बैठने योग्य कहाँ है? और कोई उपाय न देख उसने अपनी बैठने की चौकी पर जल का छींटा दिया, उसको पोंछकर एक वस्त्र बिछा दिया और उनके बैठने के लिये यह आसन प्रस्तुत किया। जगद्बन्धु बैठ गये। उनके श्री मुख में हंसी स्वाभाविक रूप से थी। देखते देखते दुखीराम

की अवस्था विचित्र होगई। निर्निमेष दृष्टि से वह उनके मुखचन्द्र के अमृत का पान करने लगा। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि यह मुख उनका चिर परिचित है। जैसे कि किसी अनजान देश का उनके साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध हो। स्नेह रस ने दुखीराम के हृदय में उथल पुथल मचादी। प्रीति के आवेश में उसके मन का द्वार खुल गया। आदर-सत्कार की भाषा में वह बोल पड़ा—'अहा! स्कूल से लौटे हो। मुंह सूख गया है।' तुरन्त एक लोटा पानी लाकर उसने सामने रख दिया और कहा—'मुंह-हाथ धो लो।' जब उन्होंने मुंह-हाथ धो लिये तो दुःखीराम ने थाली में दूध की मलाई, छेना, खोया और चीनी लाकर रख दी। प्राण के द्वारा उपस्थित वस्तुओं को प्राणाराम ग्रहण करने लगे। दुखीराम कभी उनके मुख को निहारता और कभी उनके श्रीमुख से विनिःसृत वीणा विनिन्दित स्वर को सुनता। यह प्रभु का प्रथम आगमन हुआ।

अब वे नित्य आने लगे। दुखीराम भी प्रतिदिन जलपान की सामग्री, आसन आदि सजाकर रखता है। बन्धु आते हैं, आसन पर बैठते हैं, जलपान करते हैं और चले जाते हैं। दुखीराम का आनन्द सीमा को पार कर रहा था मानो उसे आकाश का चन्द्रमा हाथ लग गया हो।

कुछ दिनों के बाद जगद्बन्धु के ताश का खेल आरम्भ हुआ। दुखीराम, जलधर आदि के साथ ताश का खेल। भावोन्माद में खेल का आरम्भ हुआ करता है। बन्धु के उठते

ही खेल बन्द हो जाता है। प्रभु दुखीराम को आप ही आप उपदेश देते हैं—"दुखीराम! हरिनाम करो। श्री गौर, गदाधर को आत्मसमर्पण करो।" दुखीराम था शक्ति का उपासक, काली माँ का भक्त। जगद्बन्धु का उपदेश उसको अच्छा नहीं लगता। एक दिन तो उसने कह भी डाला—'और बड़े हो जाओ, तब उपदेश देना। तब लोग सुनेंगे।' दुखीराम ने सोचा कि एक बालक के मुंह से उपदेश शोभा नहीं देते। और काली तथा कृष्ण में भेद ही क्या है? सब एक ही तो हैं। जगद्बन्धु ने देखा कि दुखीराम को उनका उपदेश प्रिय न लगा तो उन्होंने कह डाला—तुम जिनकी साधना करते हो, उनका मैं पिता हूँ।' यह कहकर वे चल दिये। फिर वहाँ आना उन्होंने बन्द कर दिया।

दुखीराम सोचने लगा कि उसने तो काली माँ की साधना अथवा अपने भजन की कोई बात जगद्बन्धु को बताई नहीं। फिर जगद्बन्धु को यह कैसे मालूम हुआ तथा उन्होने यह कैसे कहा? उनका मुख बिना देखे दुःखीराम चिन्तित हो उठा। उसे कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इसी तरह कुछ दिन बीते।

एक अमावास्या की रात्रि में दुखीराम ध्यान लगाकर आसन पर बैठा था कि एक दम माँ काली उसके सामने आगईं। माँ ने कहा—"वे जैसा कहते हैं, वैसा ही करो। हम लोग भी वैसा ही करते हैं जैसा वे हम से चाहते हैं।" माँ यह कहकर अन्तर्धान हो गईं। दुखीराम तत्क्षण आसन

से उठकर खड़ा हो गया। उस समय गम्भीर अन्धकार था। समय ब्राह्ममुहूर्त का था। तत्काल वह ब्राह्मणकाँदा के चक्रवर्ती के घर की ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि बन्धु-हरि नंगे बदन स्नान करने के लिये जलाशय के घाट पर खड़े हैं। बन्धु के शरीर की ज्योति से जल, स्थल, तरुलता सभी रंगीन हो गये थे। दुखीराम ने इस अपरूप शोभा को देखा। आत्म हारा होकर वह धरती पर लोटकर दण्डवत्प्रणाम करने लगा। प्रभु ने पूछा—'यह तुम आज क्या कर रहे हो।' दुखीराम का उत्तर था—'कब मन की अवस्था कैसी हो जाती है, कहा नहीं जा सकता।' काली माँ के दर्शन और आदेश की बात उसने प्रभु से नहीं कही। इसके बाद ही वह बाजार लौट गया और उसी दिन से जगद्बन्धु के उपदेश के अनुसार उसने हरिनाम कीर्तन और श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का ध्यान आरम्भ कर दिया। किन्तु आश्चर्य यह कि गौराङ्ग महाप्रभु के ध्यान के समय उसे जगद्बन्धु दिखायी देने लगते थे। एक दिन दुखीराम ने जगद्बन्धु से पूछ ही डाला—"प्रभु! जिस समय मैं गौराङ्ग महाप्रभु का ध्यान करता हूँ, उस समय मेरे सामने महाप्रभु नहीं आते। आता है कोई दूसरा रूप।" प्रभु ने उत्तर दिया—"ध्यान करते समय जो मूर्ति तुम्हारे सामने आती है उसी को तुम अपने ध्यान का रूप जान लो।" दुखीराम समझ गया कि गौर और जगद्बन्धु एक ही हैं।

परवर्ती काल में एकबार प्रभु दुखीराम आदि भक्तों के साथ श्री नवद्वीप गये थे। वहाँ दुखीराम महाप्रभु के आंगन में पहुँचकर श्री गौरांग और जगद्बन्धु अभिन्न हैं या नहीं यह दोनों के रूपों को मिलाकर देखने लगा। उसने देखा कि सब कुछ एक ही है। भेद केवल वस्त्र और चादर का है। श्री गौराङ्ग के वस्त्र और चादर नीले हैं और जगद्बन्धु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। दुखीराम के मन में सन्देह उपस्थित हुआ। इधर दुखीराम को न देख प्रभु ने खोजने के लिये लोगों को भेजा। दुःखीराम के आजाने पर प्रभु ने पूछा—'कहाँ गये थे।' दुखीराम ने उत्तर दिया—'महाप्रभु के आंगन गया था।' प्रभु ने पूछा—'क्यों गये थे।' उत्तर था—'महाप्रभु के विग्रह का दर्शन करने के लिये।' दुखीराम ने मन की बात खोलकर न कही। इसके बाद फरीदपुर लौटने पर प्रभु जी ने दुखीराम को एक कागज पर लिखकर दिया—'नीले रंग की एक धोती और एक चादर लेते आना।' दुखीराम के द्वारा लाये जाने पर प्रभु ने नीली धोती और नीली चादर पहिन ली। दुखीराम के मन का सन्देह दूर हो गया।

जगद्बन्धु छात्रावस्था में आत्मगोपन करने की चेष्टा करते थे। फिर भी कभी कभी उनके दिव्यभाव का बहिः प्रकाश हो ही जाता था। उस समय जिन लोगों ने उन्हें—स्कूल में, घर में, मन्दिर में, पेड़ तले या मैदान में—विभिन्न स्थानों में देखा उन्होंने उन्हें कभी गम्भोर चिन्ता मग्न, कभी अन्य-मनस्क, कभी निरुद्देश्य दृष्टियुक्त, कभी उदास दृष्टि, और कभी उत्कर्ण पाया। निर्जन में अत्यन्त उद्ग्रीव होकर वे कभी सुनने लगते थे। कभी मैदान में विह्वल अवस्था में पड़े रहते

थे । यदि कोई उनका प्रियजन उनको देख लेता तो वह उठाकर उनको घर पहुंचा जाता । किसी किसो दिन शिक्षकों से विना कहे ही वे क्लास से उठकर चले जाते थे । शिक्षकों को उनका भावावेश मालूम हो चुका था । इस कारण उनसे कोई कुछ नहीं कहता था ।

---

(६)
परीक्षा केन्द्र

अध्ययन के बाद परीक्षा । तृतीय श्रेणी के इतिहास की परीक्षा का दिन । बन्धु अपने स्वाभाव के अनुसार अनमने से एक ओर देख रहे थे । हेडमास्टर उनकी अवस्था को न समझ सके । उन्होंने उल्टा ही समझा और बन्धु को परीक्षा देने के लिये निषेध किया । परीक्षा के निरीक्षक अन्य शिक्षक ने कहा कि जगद्बन्धु ने कोई अनुचित नहीं किया है । इस पर भी हेडमास्टर ने अपने आदेश को पूर्ववत् रक्खा ।

लेखक ने सुना है कि हेडमास्टर महाशय ने अपने पूर्व आचरण के लिये पर्याप्त पश्चात्ताप किया है ।

पावना में जगद्बन्धु ने प्रवेशिका श्रेणी तक पढ़ा। किन्तु भागवती भावना क्रमशः बढ़ती गई। अतः स्कूल में रहना उनके लिये और अधिक दिन सम्भव न हो सका।

बाल्यकाल से ही उनके तुलसी एवं देवविग्रह को प्रणाम करने, निर्जन स्थान में अवस्थान करने, उदासीन भाव में रहने, यात्रा (एक तरह के नाटक) गाने में प्रह्लाद, ध्रुव आदि भक्तचरित्रों के अभिनय दर्शन से बाह्यज्ञान-शून्यता, ब्रह्मचर्य के नियम में निष्ठा, हरिनाम में तन्मयता आदि लोकोत्तर भाव प्रियजनों के चित्ताकर्षक बन गये थे। पावना में इन भावों का विशेष प्रकाश फैला। उनके अनेकों अनुवर्तियों ने इस स्थान में ब्रह्मचर्य शिक्षा और हरिनाम ग्रहण किया।

समस्त सौन्दर्य के माधुर्य धाम बन्धुचन्द्र ब्रह्मचर्य, सत्य प्रेम और पवित्रता के मूर्तिमान विग्रह थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये नियम हैं। बन्धु के अनुवर्ती भक्तों ने उनमें पूर्ण रूप से इन यम-नियमों को प्रत्यक्ष देखा।

---

(७)
विषप्रयोग

बन्धु सुन्दर ने निश्चय कर लिया कि अब वे फरीदपुर के स्कूल में न पढ़ेंगे। रांची में उनके भाई तारिनी चक्रवर्ती थे। उनके पास रहकर वे वहां द्वितीय श्रेणी में पढ़ने लगे। रांची में बन्धु का औदास्य भाव और भी बढ़ गया। घर के रसोइया और नौकर को चोरी करने का अभ्यास था। अपना अपराध प्रकाश में न आजाय इस भय से दोनों ने मिलकर प्रभु बन्धु के भोजन पदार्थ में 'आर्सेनिक' विष मिला दिया। उसे भोजन करते ही बन्धु संज्ञाहीन हो गये। रसोइया भाग निकला। नौकर से असली बात चक्रवर्ती महाशय को मालूम हुई। उन्होंने चिकित्सा और शुश्रूषा के द्वारा बन्धु को स्वस्थ किया।

जब उनके अभिभावकों को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने समझा कि बन्धु को रांची में रखना निरापद नहीं है। अतः उनको दोदी गोलोक मणि देवी के पास पावना ले जाया गया। वहाँ के जिला स्कूल में आपको भर्ती करा दिया गया। देवी गोलोक मणि के पति प्रसंन्न लाहिडी जमींदार वकील थे। वे बन्धु सुन्दर का तत्वावधान करते थे। उस परिवार के श्रीश, जगदीश, रणजीत आदि बन्धु को प्राणों से भी अधिक प्रेम करते थे।

(८)

ब्रह्मचर्य शिक्षा

वर्तमान जगत के अधिकांश तरुण-तरुणी जीवन के मेरु-दण्ड से हीन हैं। सब कुछ रहते हुए भी उनमें किस तत्त्व का अभाव है, यह कोई नहीं खोजता। बन्धु सुन्दर ने उनके असली अभाव को अपनी दिव्यदृष्टि से देखा था। उनमें अभाव है तप: शक्ति का, ब्रह्मचर्य का तथा जीवन में ब्रह्मतेज धारण करने का। यह अभाव मानव जीवन को निस्सार बना देता है। ब्रह्मतेज की समष्टिभूत प्रतिमा जगद्बन्धु सुन्दर के श्रीमुखारविन्द से जीवन गठन के श्रेष्ठ धर्म ब्रह्मचर्य का उपदेश रूप मधु क्षरण होने लगा। कुछ किशोरों ने निविष्ट चित्त से उस मधु का आस्वादन किया। उन्होंने उस आदर्श को अपने चित्त में अंकित कर लिया और उस शिक्षा को अपने जीवन में उतार लिया।

बन्धु सुन्दर के श्रीमुख से महाशक्ति से पूर्ण तथा स्नेह एवं करुणा से ओत-प्रोत उपदेश की धारा प्रवाहित होने लगी। वे उपदेश देते—"चैतन्य लाभ करो। नैष्ठिक बनो। धर्म से जययुक्त बनो। सदा पवित्र, सदा निष्ठावान्, नैष्ठिक होने से व्यक्ति के किसी काम में बाधा नहीं पड़ सकती। वृथा न

बोलो। वृथा वाक्य का व्यय दुर्भाग्य है। ज्ञान की साधना करते रहो। नहीं तो तुम कभी कुछ न कर सकोगे। स्वपद में प्रतिष्ठा के साथ रहो। सर्वतो भाव से शरीर की रक्षा करो। शरीर, मन तथा प्राण के द्वारा यथासाध्य धर्म की रक्षा करो। धर्मरक्षा करते करते यदि मृत्यु हो जाय अथवा कोई विपत्ति आजाय तो भी अच्छा। जो सत्यपथ पर चलता है कोई उसका केशाग्र भी स्पर्श नहीं कर सकता। भयभीत क्यों होते हो? ब्रह्मचर्य पालन करो और पालन कराओ।

इस संसार में उपदेश की आवश्यकता कम है आचरण, शील एवं आदर्श की आवश्यकता अधिक है। पावना के तरुणों के अदृष्ट से वही आदर्श मूर्त रूप में उपस्थित हुआ था। ब्रह्मचर्य हीन मानव की भोग में योग्यता नहीं होती, त्याग में भी अधिकार नहीं होता। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही मार्गों के संयोग स्थल में सर्वाङ्गीण ब्रह्मचर्य की ध्वजा चाहिये। अटूट ब्रह्मतेज के संरक्षण की दृढ़ साधना चाहिये। जगद्बन्धु की वाणी और व्यवहार में यही सत्य परिस्फुटित हुआ था। मन में सुगम्भीर भक्ति, भाव रस का उन्मेष, बाहर ब्रह्मचर्य का उद्‌बोधन—जगद्बन्धु के लीलाङ्कुर का द्विपत्रोद्‌गम पावना में पहिले हुआ।

स्कूल के पढ़ने-लिखने में जगद्बन्धु का अभिनिवेश कम होने लगा। केवल कीर्तन करना, कीर्तन सुनना, भक्तिमूलक नाटक देखना प्रियजनों को लेकर बन-उपवनों में बैठकर उपदेश

देना, त्रिस्नान, तपस्या, कठोर आहार-विहार—इन सब में गम्भीर अभिनिवेश। किन्तु सबके आश्चर्य की सीमा न रहती जब हमारे चरितनायक का परीक्षाफल अच्छा होता। सभी कहते ऐसा अटूट ब्रह्मचर्य होने पर अधिक पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नही होती।

---

(९)

सात्विक भावदशा

भावदशा, समाधि आवेश, अश्रुपात, कम्पन आदि सात्विक विकार अधिक समय तक प्रभु जी में अप्रकट न रह सके। पावना के श्री हरिनाम संकीर्तन में ये सात्विक भाव प्रकाश में आने लगे। कभी कभी वे दिन रात अचैतन्य अवस्था में पड़े रहते। फिर हरिनाम संकीर्तन द्वारा उनका चैतन्य किया जाता था।

दूर से हरिनाम कीर्तन की ध्वनि सुनायी पड़ने पर बन्धु मतवाले की तरह चलने लगते। भावावेग से कभी नाले में और कभी भूमि पर, कभी कहीं और कभी कहीं संज्ञाहीन होकर गिर पड़ते थे। यदि उनको कमरे में रोका जाता तो वे वहीं कीर्तन की ताल पर नाचते नाचते बेहोश हो जाते। पावना में बहुसंख्यक असंयत, अजितेन्द्रिय एवं पतित जीवन व्यतीत करने वाले लोग उनके सत्य एवं सुमधुर उपदेशों, ब्रह्मचर्य शिक्षण तथा हरिनाम दान से प्रभावित हुए। प्रभु जी ने चाण्डाल पर्यन्त अभय पद में आश्रय प्रदान किया।

'चिराग तले अन्धेरा'। पावना में विरोधी भी जागे। ये लोग उनकी अलौकिक प्रतिभा को सहन न कर सके। उनकी

शिक्षा से लड़के संसार को त्याग कर संन्यासी न हो जायँ इस भय से ऐसे लोगों ने अमानुषिक अत्याचार आरम्भ कर दिये। एक दिन ब्राह्ममुहूर्त में स्नान के समय दुष्टों ने उनको डुबा कर मारने की चेष्टा की किन्तु बन्धु सुन्दर किसी प्रकार बच गये।

एक दिन दीदी गोलोकमणिदेवी शिव जी की पूजा करते समय जगद्बन्धु के प्रति दुष्टों के द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का स्मरण कर आंसू बहाने लगी। यह देख कर क्षमा के देवता बन्धु हरि ने कहा—"दीदी ! इस तरह आंसू गिराने से उनका अकल्याण होगा।" जीवन को नष्ट करने के लिये उद्यत रहने वाले शत्रु के लिये भी कल्याण कामना एक मात्र परमानन्द बन्धु को छोड़ अन्यत्र कहाँ सम्भव है।

पावना के अत्याचारियों ने और एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में भ्रमण करते हुए बन्धु सुन्दर पर आक्रमण कर दिया और अमानुषिक प्रहार किये। चन्द्रमा पर बज्र फेंकने वाले भी होते हैं। कुसुमों पर तोप दागने वालों की कमी नहीं होती। विधाता ! धन्य है तुम्हारी सृष्टि। इस सृष्टि वैचित्र्य में सभी सम्भव है। जिन्होंने आज अत्याचार किया वे बन्धु सुन्दर के अपरिचित नहीं थे। एक बार आपने उन पर दृष्टिपात किया और अपने कमल लोचनों को बन्द कर लिया। इसके बाद आपका सुकोमल तनु लुढक गया। उन पापियों ने आपको मृत समझकर जंगल में फेंक दिया। विश्व के प्राण प्राणहीन की तरह पड़े रहे। पावना नगर के चौकीदार ने जंगल में उज्ज्वल

प्रकाश देखा। पास पहुँचकर देखा कि एक देह से ज्योति निकल रही है। "क्या आश्चर्य ? मैं क्या देख रहा हूँ।" सोचते हुए उसने डरते डरते शरीर पर हाथ लगाया। देखा, मृत्यु नहीं हुई है, किन्तु अवस्था अधमरी हो गई है। "हाय ! हाय ! यह लाहिडी परिवार का वही साधु बालक है। माजी का भाई।" कहते हुए चौकीदार तेजी से दौड़ा। उसने जाकर प्रसन्न लाहिडी महाशय को खबर दी। खबर पाते ही लाहिडी बाबू और परिवार के अन्य लोग दौड़ पड़े। बहुत लोगों ने बन्धु हरि को उठाया, मानो भूपतित प्रभात मलिन पूर्णिमा के चन्द्रमा को उठाया जा रहा हो। वे आपको उठाकर लाहिडी बाबू के घर ले आये। सभी हाय हाय कर रहे थे। कितनों ने उन दुष्टों को धिक्कारा, कितनों ने कानों में उँगली डालली, कितने रोने लगे और छाती पीटने लगे। गोलोक मणि तो बहुत पहिले ही मूर्छित हो गई थी।

चिकित्सा और सेवा शुश्रूषा चलने लगी। काफी समय के बाद बन्धु सुन्दर की स्वाभाविक चेतना लौटी। प्रसन्न लाहिडी महाशय बार बार पूछने लगे—"जगत ! बोलो, किसने ऐसा काम किया ? अगर तुमने पहिचान लिया हो तो बताओ। मैं इसका प्रतिकार करूँगा। बन्धु सुन्दर के नीरव व्यथित एवं मलिन मुख पर हंसी के चिन्ह दिखाई पड़े। लाहिडी महाशय ने फिर पूछा—"तुमने किसी को नहीं पहिचाना ?" "क्यों नहीं"—नीरवता तोड़ते हुए जगत सुन्दर बोले। "सभी को पहिचानता हूँ। किन्तु नाम का क्या काम है। नाम न

लेना ही अच्छा ।" लाहिडी बाबू एक बालक की तितिक्षा, क्षमा और सब से बढ़कर चित्त की दृढ़ता देखकर चमत्कृत रह गये ।

सन्ध्या होने से पहिले ही युवकों का दल उपस्थित हुआ । बन्धु के ऊपर किये गये अत्याचार ने उन लोगों का हृदय तोड़ दिया था । किसी किसी की रोषाग्नि यहाँ तक प्रज्वलित हो उठी थी कि लगता था कि ऐसे कुकर्म का पता लगते ही वे कठोरता के साथ इसका उपयुक्त प्रतिशोध लेंगे । बन्धु सुन्दर ने उन दुष्कृतकारियों के नाम पूछने पर कागज-पेन्सिल मांगा । मिलने पर उन्होंने बड़े बड़े अक्षरों में लिखा—

"आमि दण्डदाता नहि उद्धारण बटि ।'

मैं दण्डदाता नहीं उद्धारक हूँ ।

प्रभु के एकान्त कृपा प्राप्त राजर्षि वनमालिराय के समयान्तर में दुष्कृतकारियों का नाम पूछने पर प्रभु ने लिखा—

"पाप रूप हिमाचल शिरोदेशे छिल ।
लाहिडो पवन वेगे उडाइया दिल ।।"

अपराधी के अपराध को ग्रहण न करना ही क्षमा है । अपराधी को अपराधी के रूप में न समझकर उपकारी के रूप में ग्रहण करना क्षमा से भी महत्तर महा उद्धारण धर्म है । ऐसा दृष्टान्त पृथिवी में अन्यत्र न मिलेगा ।

परम दयालु नित्यानन्द प्रभु को जब मधाई ने मारा था तो निताई ने कहा था—

"मारलि—मारलि कलसीर काणा ।
ताई बोले कि प्रेम दिबो न ।।"

यद्यपि तुमने कलश के टुकड़े से मुझे मारा है तथापि क्या मैं तुम्हें प्रेम न दूँ । इस कथन में अपराध का होना स्वीकार किया गया है ।

ईसामसीह पर जब पाषाणों से प्रहार किया गया था तो उन्होंने कहा था—"हे भगवन् ! जो मुझे मार रहे हैं उनको क्षमा करना ।" इस कथन में भी अपराधी का अपराध होना स्वीकार किया गया है । किन्तु प्रभु ने अपराधी को उपकारी विशेषण दिया है ।

प्रभु संयम, सहिष्णुता, क्षमा, दया, अहिंसा, सत्य और प्रेम के मूर्तिमान आदर्श हैं । स्वयं आदर्श के रूप में उपस्थित होकर आपने उपदेश दिया है—

'मार खाइओ मारिओ ना ।' (मारखाना मारना मत)

मनः प्राणे जीवे कर कारुण्य कल्याण ।
क्षमा दया धर्म दान उद्धार विधान ।।

(उद्धारण धर रे) (सबे हरि नाम दान)
(एई कल्याण विधान)

———

(१०)
पावना में बन्धु और भक्तों के दल

जगद्बन्धु के प्रति किये गये भीषण अत्याचार का विवरण सुनकर तारिनी चक्रवर्ती महाशय उन्हें रांची ले गये। पढ़ाई यहीं समाप्त हो गई अब वह प्रेम भक्ति चन्द्रिका, भागवत, व अन्यान्य वैष्णव ग्रन्थों को लेकर तन्मय रहने लगे।

बाद में स्वेच्छापूर्वक वे पुनः पावना लौट आये। यहाँ अत्याचारियों के सामने वे निर्भयता के साथ बार बार विचरण करने लगे और पूर्ववत् अविचलित होकर अनुवर्तियों को ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश तथा हरिनाम का दान करने लगे।

उत्तरकाल में अत्याचारियों की बड़ी दुर्दशा हुई। वे लोग अनुताप के अश्रु विसर्जन करने लगे। उनमें से कोई कोई प्रभु जगद्बन्धु के अनुगामी भी हो गये।

बन्धु हरि के अपरूप तेजपुञ्ज, रूप, लावण्य और अन्यान्य दिव्य लक्षण आदि देखकर धीरे धीरे बहुत से गण्यमान्य व्यक्ति उनके अनुरागी तथा शरणापन्न हुए। शिवभक्त श्रीश लाहिडो और उनकी सहधर्मिणी बन्धु को शिव मानकर उनकी सेवा करते थे। स्वर्णतार से गुथी हुई रुद्राक्ष की माला बन्धु हरि को पहिना कर उन्होंने कृतार्थता का अनुभव किया।

---

(११)
बन्धु अभिन्न नारायण

लाहिडी भवन में निवास के समय गोलोक मणि ने एक दिन घटना क्रम से बन्धु हरि के वक्षःस्थल पर भृगुपद चिन्ह देखकर संज्ञाशून्यता प्राप्त की। प्रभु ने बाद में उनको प्रकृतिस्थ किया। भृगु के पद का चिन्ह भगवान् नारायण का असाधारण चिन्ह है। इस चिन्ह का प्रभु के वक्षःस्थल पर दर्शन बन्धु अभिन्न नारायण के तत्त्व को प्रकट करता है।

---

(१२)
राजर्षि वनमालीराय

पावना नगर के मध्य से नगर संकीर्तन का दल जा रहा था। बहुत से मृदङ्ग और करतालों के साथ असंख्य व्यक्ति कीर्तन मग्न थे। कीर्तन की ध्वनि से पावन नगर आनन्द मुखरित हो उठा था गौरलीला को अन्तर्हित हुए चार सौ वर्ष बीत चुके थे। कीर्तन सागर में भी भाटा आगया था। बन्धुचन्द्र के उदित होने से नाम सागर में ज्वार आगया। प्रेम का स्रोत फिर प्रखर वेग से प्रवाहित होने लगा। प्राणों को मोहित करने वाला ऐसा संकीर्तन सुदीर्घ काल से नहीं हुआ था। भावरस परिपूरित नाम की तरंग उठ रही थी—

कृष्ण गोविन्द गोपाल श्याम ।
राधा माधव राधिका नाम ॥

नाम की ध्वनि नील गगन का भेदन कर रही थी। राजकीय गौरव से सम्पन्न एक व्यक्ति हाथी की पीठ पर बैठ कर राज पथ से जा रहा था। साथ में सिपाही लठियाल तथा और अन्य लोग भी थे। मालूम होता था कि कोई राजा है। संकीर्तन की ध्वनि उनके कानों में पहुँची। कीर्तन इतना प्राणोन्मादकारी था कि राजा के लिये हाथी की पीठ पर बैठा

रहना सम्भव न रह सका। महावत से हाथी को रुकवा कर वे वहीं उतर पड़े और नंगे पैरों द्रुतगति से जाकर कीर्तन में सम्मिलित हो गये। राजा अपने आप को भूल कर पथ पर चल रहे थे। जिन्होंने उनको पहिचाना उनको मालूम हो गया कि वे तडास के राजा वनमालीराय थे। ये बंगाल के एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने वस्तुतः कुछ देखा था। देखने की उत्कण्ठा उनको यहाँ तक बढ़ती गई कि उनको आत्मसंवरण करना असम्भव हो गया।

उन्होंने देखा कि कीर्तन के मध्य स्थल में रस से निर्मित स्वर्णमय पुरुष नृत्य कर रहा है। ऐसा मनोहर रूप, इस तरह की मनोरम भंगिमा उन्होंने अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी। प्रतीत होता था मानो समस्त कीर्तन का आनन्द एक स्थान पर पुञ्जीभूत हो गया है और उसमें से शान्त एवं उज्ज्वल करुणा की धारा दशों दिशाओं में चारों ओर प्रवाहित हो रही है। एक अपूर्व अनुभूति के मनोराज्य में राजा ने अपने आप को खो दिया। बहुत दूर तक परिभ्रमण करने के पश्चात् कीर्तन रुका। बन्धु सुन्दर के श्रीमुख से निस्सृत दो-चार शब्दों ने सभी के श्रवण एवं मन को परितृप्त कर दिया था। राजा ने एक दो प्रश्न भी किये। प्रभु से मन चाहा उत्तर पाकर वे अत्यन्त तृप्त हुए। राजा ने विनीत भाव से निवेदन किया—"यदि बनवारी नगर में स्थित इस दास के वास स्थान में प्रभु अपनी पदधूलि वितरित करें तो यह दास कृतार्थ हो जावेगा।" श्री बन्धु सुन्दर ने मन्द हास के साथ

उत्तर दिया—"वृषभानुनन्दिनी की इच्छा से समय आने पर आऊंगा।"

राजा के गृह में पितृ पुरुष के द्वारा स्थापित श्रीराधाविनोद जी की सेवा पहिले से प्रतिष्ठित थी तथापि अवेष्ठनी के प्रभाव से भागवत चर्चा के प्रति उनकी रुचि नहीं थी। वे ब्राह्म समाज के प्रभाव से प्रभावित हो चुके थे। वे ईश्वर को मानते थे, ब्रह्म को मानते थे उपासना मानते थे किन्तु श्रीभगवान् के श्री विग्रह को नहीं मानते थे। अनुराग सेवा और राधागोविन्द के वनविलास को वे कवि कल्पना मानते थे। लेकिन पावना के राजपथ पर उस प्रेमघन रूप सागर की प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन पाकर राजा वनमाली प्रेम साम्राज्य के प्रधान द्वार पर आ उपस्थित हुए थे। नाम और नामी की रसपरिपूरित वायु ने राजा में पूर्ण परिवर्तन ला दिया था। इस दिन को राजा वनमाली के जीवन का नवीन आरम्भ कहा जा सकता है। बड़ी आशा से हृदय बाँधकर वे अपने वासस्थान पर लौटे। रास्ते में केवल वही अभावनीय घटना और दृश्य उनके नयन पथ पर नृत्य करने लगे। कीर्तन नटवर का मधुमय रूप, प्राणस्पर्शी कीर्तन और अभिनव भावमय भाषा—"वृषभानुनन्दिनी को इच्छा से समय आने पर आऊँगा" उन्हें बार बार याद आने लगी। "मधुरं मधुरम्······अखिलं मधुरम्" के अनुसार वनमाली को मधुर सिन्धु का पता मिल गया था।

---

(१३)

पगला

पावना नगर के उपकण्ठ पर एक विशाल वटच्छाया में एक टूटे फूटे पक्के मकान में एक पगला रहता था। वह अनेकों देशों की भाषाओं में वार्तालाप कर लेता था। नगर के वृद्ध लोगों ने सदा पगले को एक ही दशा में देखा था। पगला सभी को पहिचानता था। कहीं का कोई व्यक्ति उसके सामने आ जाय वह तुरन्त पहिचान लेता था। वह तुरन्त सामने आने वाले व्यक्ति का नाम पता उसके पूर्व पुरुषों का नाम ठिकाना बोल देता था। पगले को न जाना हुआ कुछ न था। लगता था कि मानो वह सर्वज्ञ हो। जिससे जो कुछ कह देता था। वह पगला, वही होकर रहता था।

नित्य कितने ही लोग उस पगले के पास आते थे। "तेरा भला होगा होगा"—यह सुनकर लोग अपने अपने भविष्य के सम्बन्ध में निश्चित और प्रफुल्लित हो जाते और प्रसन्नता के साथ अपने घरों को लौट जाते थे। पगला जिस टूटे-फूटे मकान में रहता था उसकी दीवारों में अनेकानेक साँप दिन में फुफकारते रहते थे। पगले की कमर में वस्त्र के नाम पर एक फटा पुराना मैला चिथड़ा रहता था। कभी कभी जब वह

बोलने लगता तो असम्बद्ध बातें तथा अश्लील गालियाँ उसके मुख से निकलने लगतीं। फिर भी उसके ज्ञान की थाह न पाकर कितने ही ज्ञानीजन उसके चरणों की धूलि के लिये वहाँ पहुँचते थे।

जगद्बन्धु सुन्दर भी पगले के पास जाया करते थे। चिर स्वतन्त्र प्रिय प्रभु पगले के साथ एक शय्या पर सोते थे। पगले का नाम था हारान। सभी उसे इसी नाम से पुकारा करते थे। किन्तु बन्धु सुन्दर बड़े आदर और सम्मान के साथ उस पगले को "बूढ़ा शिव" कहते थे। पगला बन्धु सुन्दर को 'जगा' के नाम से पुकारता था। कभी कभी पगला 'जगारे जगारे जगा" की घण्टों तक धुन लगा देता। बन्धु पुकारते—'शिवरे'। पगला पुकारता 'जगारे'। ऐसा मालूम होता था कि मानो दोनों का बहुत पुराना परिचय हो। बन्धु घण्टों उसके पास बैठे रहते। वह अपनी बाहों से पकड़ कर बन्धु को घण्टों तक अपनी छाती से लगाये रहता। दोनों की बातों से परस्पर दोनों की देह रोमाञ्चित हो उठती। जिस समय दोनों तन्मय होकर बातचीत करने लगते थे तो ऐसा लगता था मानों दोनों ही किसी रस के राज्य में पहुँच गये हैं।

पगला कभी कभी लाहडी के घर भी आता। देवी गोलोकमणि उसे विशेष यत्न के साथ खिलाती पिलाती। दीदी के मुख की ओर देखकर पगला कहता—"दीदी! हम लोग एक देश के हैं।" कभी कहता—"सुनो दीदी! जगा मनुष्य नहीं है। मैं भी मनुष्य नहीं हूँ। जगा राजा है। हम सब उसकी प्रजा हैं।"

पगले का वार्तालाप दीदो को बड़ा मधुर लगता था। पगले का यह सब रहस्य कौन समझेगा? प्रभु ने कहा है—"शिव साक्षात् शिव हैं। यह पगला और कोई नहीं स्वयमेव शिव है।" गौरलीला के सीतानाथ (अद्वैत प्रभु) महाप्रभु की लीला के अप्रकट होने के बाद से छद्म वेष में हैं।

दीदी दिगम्बरी देवी को शिव नें कहा था—"दीदी! जगा मनुष्य नहीं है साक्षात् है। जगा का यत्न करना।" योग माया के आवरण में लीला होती है। स्वजन साथ न रहने पर लीला का आस्वादन प्रेम का आस्वादन किस प्रकार हो सकेगा?

—— ——

(१४)

गोलोकमणि को दर्शन

देवी गोलोकमणि और उनके पति श्री प्रसन्नकुमार लाहिडी एक विवाह के उपलक्ष में ब्राह्मण कांदा आये थे। उस विवाह के बाद भी वे वहाँ कुछ दिनों के लिये ठहरे थे। गांव में एक दिन एक ब्राह्मण के घर विवाह था। श्री प्रसन्नकुमार और उनकी पत्नी जगतसुन्दर के साथ उस विवाह में सम्मिलित होने के लिये गये थे। वहाँ से लौटने पर रात हो गई।

वन के रास्ते से वे लौट रहे थे। मार्ग में यदि कोई परिचित मिलता तो उससे वे बातें भी कर लेते थे। इस प्रकार चलते रहने पर श्री जगद्बन्धु कुछ आगे हो गये। श्री प्रसन्न-कुमार और गोलोकमणि पीछे रह गये थे। अकस्मात् किसी परिचित के साथ बात करते करते वे अनमने हो गये। एक दम उनको दृष्टि जगत की ओर गई। उनको जगद्बन्धु दिखाई नहीं दिये। वे अदृश्य हो गये थे। उस समय वन में अन्धकार था। दोनों ने इधर उधर देखा। कहीं जगद्बन्धु दिखाई न दिये। देखते देखते वे कह उठे कि क्या जगत चला गया या कहीं छिपकर तमाशा देख रहा है। बड़ी उत्सुकता, वे चारों ओर देख रहे थे। हठात् उनकी दृष्टि एक बहुत बड़े वृक्ष के

तने की ओर पहुँची। उन्होंने देखा कि उस वृक्ष से ज्योति बिखर रही है। वृक्ष के मूल में उनके ध्यान की मूर्ति खड़ी है और वह चारों ओर ज्योति बिखेर रही है। युगल मूर्ति श्री राधा मदनमोहन। रूप की अद्भुत छटा। सारा वन आलोकित हो रहा था। लाहिडी दम्पति मन्त्रमुग्ध होकर देखते रह गये। इतने में श्री राधाकृष्ण अन्तर्धान हो गये और उसी वृक्ष की एक बगल से जगद्बन्धु सुन्दर बाहर आगये और हंसने लगे। लाहिडी दम्पति ने प्रश्न किया—'जगत! अचानक तुम कहाँ चले गये थे।' जगद्बन्धु ने उत्तर दिया—"मैं तो उस पेड़के नीचे खड़ा था।" अपने छोटे भाई के इस खेल को दीदी कैसे समझ पायेगी।

उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि बन्धु सुन्दर के तपोमय एवं ब्रह्मचर्यनिष्ठ शुद्ध एवं सुकोमल गौर देह पर स्वर्ण तार से ग्रथित रुद्राक्ष की माला धारण कराव । लाहिडी पत्नी ने तुरन्त वैसो रुद्राक्षमाला बन्धु सुन्दर के गले में भक्ति-भाव से पहिना दी । बन्धु सुन्दर के दिव्य रूप में लाहिडी दम्पति को साक्षात् शिव के दर्शन हुए । "न भिन्नः हरिः हरात्" अर्थात् हरि और हर में भेद नहीं है । हरि और हर में एक आत्मा है । शिव भक्तावतार पञ्चमुख से हरि नाम कीर्तन करते हुए तन्मय रहते हैं ।

---

(१५)

रुद्राक्षमाला

श्रीशचन्द्र लाहिडी बड़े ही धर्म प्राण थे । उनकी पत्नी और वे दोनों ही देवादिदेव शंकर के उपासक थे । कैलाशपति की मूर्ति उनके ध्यान का आधार थी । पार्वती पति की दम्पति पर परम कृपा थी । वे सानन्द अपना जीवन व्यतीत करते थे । बन्धु सुन्दर के दर्शन के बाद से दोनों ही के मन में एक नूतन भावना की सृष्टि हुई । जगद्बन्धु साक्षात् शिव हैं, जगद्बन्धु की घनिष्टता के साथ उनका यह विश्वास दृढ़ होता गया । बन्धु का गलित रजतवर्ण, आकर्ण विस्तृत लोचन की दृष्टि, आजानु सुडौल बाहुयुगल, सभी देवादिदेव उमाकान्त के समान प्रतीत होते थे । लाहिडी दम्पति जगद्बन्धु को देखते ही आनन्द से प्रफुल्लित हो उठते । बन्धु जब कदम्ब के वृक्ष के नीचे पद्मासन लगा कर बैठते तो उनको ऐसा लगता कि साक्षात् शिव ध्यान में तल्लीन हैं । श्रीशचन्द्र कभी कभी भक्ति और प्रीति के साथ बन्धु सुन्दर को अपने घर ले जाते । वहाँ उनको आदर के साथ खिला पिलाकर वे उनको नव वस्त्र-उत्तरीय, उपवीत आदि पहिनाते और इस प्रकार पहिनाकर अपार सुख का अनुभव करते ।

(१६)

राजा वनमाली राय और राजगुरु

राजा वनमाली राय ने जब से बन्धु सुन्दर को देखा वे कुछ के कुछ हो गये। सांसारिक कार्यों में उनका मन न लगता। उनको प्रतीत होने लगा कि पथ पर जिस परमरूप माधुरी से युक्त पुरुष के दर्शन मिले हैं उनको पाये बिना जीवन व्यर्थ हो जावेगा। "उनको समीप में लाकर नयन तृप्त करेंगे, वार्तालाप करेंगे उस तरह मधुर बातें जी भरकर सुनेंगे, आदर से सुन्दर एवं स्वादिष्ट भोजन करावेंगे।" इस प्रकार की कामनायें उनके मन में होने लगी थीं।

राजवंश के गुरु पुत्र—नदिया के अद्वैतवंश की सन्तान श्रीमद् रघुनन्दन गोस्वामी उस समय राजवाड़ी में थे। राजा गुरुपुत्र के साथ कीर्तन में देखे गये उस रूपवान् पुरुष के सम्बन्ध में चर्चा किया करते थे। रघुनन्दन जी राजा के प्राणधन की चर्चा सुनकर मुग्ध हो गये थे। उनके मन में उन स्वर्ण पुरुष के दर्शन करने की उत्कण्ठा बढ़ने लगी। इस प्रकार बन्धु सुन्दर का दर्शन करने के लिये दोनों ही व्यक्ति अधीर हो उठे। अन्त में यह निश्चय हुआ कि रघुनन्दन गोस्वामी पावना जावें और वहाँ वे बन्धु सुन्दर के समक्ष राजा वनमाली

राय के नम्रनिवेदन को प्रस्तुत कर राजवाड़ी ले आवें। राजा की इच्छा यह थी कि बन्धु सुन्दर को हाथी की पीठ पर आसीन कर लाया जाय। अतः रघुनन्दन जी हाथी लेकर गये।

बन्धु सुन्दर के स्वागत के लिये राजधानी को सुसज्जित किया जाने लगा। राजाधिराज आयेंगे, यह चर्चा सर्वत्र होने लगी। तरह तरह के आयोजन किये जाने लगे। राजबाड़ी में चहल पहल मच गई। उस रूपवान् दिव्यपुरुष का दर्शन करने के लिये सभी के हृदयों में कौतूहल हो उठा।

रघुनन्दन जी पावना पहुँचे। वहाँ उन्होंने बन्धु के समीप उपस्थित होकर दण्डवत् प्रणाम किया और अपना परिचय देकर राजा की प्रार्थना निवेदन की। बन्धु सुन्दर की करुणा-पूर्ण दृष्टि जब रघुनन्दन पर पड़ी तो उनका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। वे एक नवीन जगत में पहुँच गये। प्रभु ने पूछा—"रघु! तुमने शिव का दर्शन किया है।" इसका मर्मार्थ तो रघुनन्दन न समझ सके किन्तु स्वर माधुरी ने उनके मन और प्राण को शीतल कर दिया। 'रघु' कहकर पुकारने में जो जन्मजन्मान्तर के परिचय का भाव मौजूद था यह समझने में उनको विलम्ब न लगा।

एक भक्त ने जो वहाँ उपस्थित था रघुनन्दन से कहा—"प्रभु ने आपसे बूढ़े शिव हारान पगले के बारे में कहा है।" तब रघुनन्दन ने प्रभु जी को उत्तर दिया—"जी नहीं। शिव दर्शन तो अभी तक नहीं किया है।" प्रभु ने कहा—"तो जाओ

शिव दर्शन कर आओ।" शिव अति निकट अवस्थान कर रहे हैं। तब रघुनन्दन शिव का दर्शन करने के लिये गये।

रघुनन्दन को देखते ही पगला बोल उठा—"तू कौन है रे? आ जा, आ जा, आ जा। तू तो मेरे घर का आदमी है रे।" और अत्यन्त सहज भाव से गोस्वामी का आदर कर पूछने लगा—'तूने गौराङ्ग को देखा है।

रघुनन्दन ने सोचा कि वहाँ कहीं गौराङ्ग महाप्रभु की मूर्ति स्थापित होगो। उस मूर्ति के ही दर्शन की बात कही जा रही है। अतः उन्होंने उत्तर दिया—"जी नहीं। गौराङ्ग कहाँ हैं?" यह सुनते ही पगला बोल उठा—"गौर को नहीं पहिचाना। अरे जिसे लेने आया है।" यह कह कर पगला, "मेरा जगा रे जगा, जगारे जगा" कहते कहते बगल बजाने लगा।

गोस्वामी जी गौर को लाने वाले ठाकुर अद्वैत के वंशधर थे। सहज ही किसी को गौर मानने वाले न थे। पहिले तो उन्होंने राजा से सुना था। फिर उनके ऐकान्तिकता को देखा था। फिर रूपमाधुर्य के दर्शन और कण्ठमाधुर्य के श्रवण से उनको पर्याप्त विश्वास हो चुका था। अब पगले के शब्द ऐसे लगे मानो जुती हुई भूमि में बीज डाला गया हो। यही कारण था कि जिससे गोस्वामी जी अपने शेष जीवन में प्रायः कहा करते थे—मैं अद्वैत का बच्चा हूँ। भाई! मैं अद्वैत का बच्चा हूँ। जगद्बन्धु को मैंने ठोक पीट कर देख लिया है।

बूढ़े शिव के चरणों में प्रणाम कर गोस्वामी जी बिदा हुए। प्रभु जी ने प्रस्थान किया। सुसज्जित हाथी दो व्यक्तियों को लेकर बनबारी नगर राजबाड़ी के लिये रवाना हुआ। दो व्यक्तियों में एक नवीन किशोर और एक नवोन युवक। एक श्वेत वस्त्रावृत निराभरण तपोज्ज्वलकान्ति हमारे जगत सुन्दर और दूसरे तिलक माला सुशोभित नामजपनिरत परम-भागवत राजगुरु पुत्र श्री रघुनन्दन। दोनों ही नीरव थे।

मार्ग के दोनों ओर खड़े होकर पावना के निवासी ससंभ्रम उनके दर्शन कर रहे थे। रघुनन्दन ने पहिले ही चर के द्वारा समाचार भेज दिया था कि प्रभु आ रहे हैं। राजकर्मचारी सिपाही, लठियाल राजपुरी के प्रवेश पथ पर दोनों ओर खड़े थे।

महावत का इशारा पाते ही हाथी बैठ गया रघुनन्दन के कन्धे का सहारा लेकर एक विद्युद्वर्ण पुरुष अवतरित हुआ। राजा बहादुर ने अकिंचन भाव से नंगे पैर आगे आकर अभ्यर्थना की और नत हुए। "जय राधे, जय राधे, जय राधा विनोद की जय" इत्यादि ध्वनियों से आकाश गूँज उठा। नगरवासी अपरूप स्वर्णमय पुरुष के दर्शन से आत्मविभोर हो उठे। आज बनवारी नगर वास्तव में बनबारी नगर बन चुका था। मन्दिर में भक्तजन कीर्तनानन्द में मग्न हो गये। भक्तों ने कीर्तन आरम्भ किया—

श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधागोविन्द॥

नाम की ध्वनि गूँजने लगी । नदिया का आनन्द, ऐसा लगता था कि मूर्तिमान हो उठा हो ।

राजा वनमाली राय बन्धु सुन्दर को श्री श्रीराधा विनोद जी के मन्दिर के पार्श्वप्रकोष्ठ में ले गये । रानी माता के साथ पुरनारियाँ भी जगद्बन्धु के सामने प्रणत हुईं । धीरे धीरे भीड़ को बढ़ते देखकर बन्धु सुन्दर ने द्वार बन्द कर लिये ।

निभृत प्रकोष्ठ में राजा वनमाली बन्धु विनोद के साथ हरिकथा में निमग्न हो गये ।

---

(१७)
प्रभु और राजर्षि

राजर्षि ने बन्धु सुन्दर के सामने नतजानु संयुक्त कर सम्भाषण किया—"प्रभो" । बन्धु सुन्दर के वीणा विनिन्दित कण्ठ से प्रतिध्वनित हुआ—"राजर्षे" । दोनों ही दोनों के पारस्परिक सम्बोधनों से चकित हो उठे । परस्पर एक दूसरे को दोनों ने पहिचान लिया । हम लोग भी दोनों को उन्हीं नामों से सम्बोधित कर "जय, जय" गाकर धन्य हो जावेंगे ।

जगद्बन्धु कुछ दिनों तक राजर्षि महोदय को प्रेम भक्ति पथ का उपदेश देते रहे । राजर्षि का ब्राह्म भाव दूर हो गया । वे प्रभु प्रदर्शित प्रेम भक्ति के पथ के पुजारी बन गये । अपने गृह में स्थित श्री राधाविनोद के विग्रह तथा बन्धु विनोद को वे अभिन्न मानने लगे । राजर्षि प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों समय नियमित रूप से प्रभु बन्धु के सन्निकट बैठकर उपदेशामृत पान किया करते थे । श्री रघुनन्दन भी एकाग्र मन से प्रभु के उपदेशों को श्रवण किया करते थे । प्रभु जगद्बन्धु, श्री राधाकृष्ण और निताई गौर की अभिन्नता के विषय में दोनों के मन में कोई सन्देह नहीं रह गया था । दोनों ही भजन के पथ पर अग्रसर होकर जीवन की सार्थकता का सम्पादन कर रहे थे ।

'जयं जगद्बन्धु हरि'

---

(१८)

कलकत्ते में प्रभु बन्धु और बकुलाल

प्रभु के बाल्यकाल के साथी बकुलाल एन्ट्रैन्स की परीक्षा उत्तीर्ण कर कलकत्ते में रहकर पढ़ा करते थे। वे रहते थे मेस में और पढ़ते थे कालेज में। जगद्बन्धु का साथ छूट जाने के कारण वे अन्यमनस्क रहते थे। कलकत्ता नगर की किसी वस्तु में उनको आनन्द नहीं मिलता था। पहिले नयनानन्द बन्धु हरि के सुखमय संग में उनके आदेश और उपदेश के पालन में उनका जीवन गठित हो रहा था। अब उनका बिछोह हो जाने के कारण यह वियोग उनके लिये असहनीय हो उठा था। विरह व्यथा से बन्धु सुन्दर का हृदय भर उठा था। बन्धु सुन्दर का मुख उनके स्मृतिपटल पर सर्वदा घूमता रहता। मन किसी प्रकार शान्त नहीं हो पा रहा था। वे छत के कोने में बैठकर एकान्त में बन्धु सुन्दर का ध्यान किया करते थे। जिस समय वे ऐसा करते उनके नेत्रों से जल प्रवाहित होने लगता। जब उनकी व्यथा पराकाष्ठा पर पहुँच गई तो उन्होंने निश्चय कर डाला कि अगले दिन ही बन्धु सुन्दर के पास जावेंगे।

सन्ध्या के समय हठात् बन्धु सुन्दर वहाँ आकर उपस्थित हो गये। प्रिय भक्त के प्रबल प्रेम से आकृष्ट होकर भगवान्

इसी प्रकार सदा प्रकट हुआ करते हैं। यही भगवान् की लीला है। एक को रुलाते हैं और दूसरे को आनन्द सागर की उत्ताल तरंगों में हंसाया करते हैं। एक तरफ बन्धु हारा राजर्षि भरे हुए हृदय से तथा व्यथा भरे मन से व्रज की ओर चले जा रहे हैं और दूसरी ओर बकुलाल, आनन्द सागर में डुबकी लगाकर बड़ी प्रसन्नता के साथ रात्रि व्यतीत कर रहे हैं।

बकुलाल युवावस्था में प्रवेश कर चुके थे। यदि उपदेश का कवच उन पर न होता तो कलकत्ते के प्रलोभन पूर्ण जीवन में उनका बचना कठिन था। बन्धु ने सारी रात बैठे रहकर उनको उपदेश दिया। उपदेश देते देते बन्धु हंस कर कहने लगे—बकु ! तू या तो फकीर होगा या हाकिम होगा। परवर्ती जीवन में वे सबजज हुए थे। बन्धु के उपदेश के अनुसार बकु कठोर नियमों के साथ ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने में संलग्न हो गये थे। बन्धु के उपदेश से प्रेरणा लेकर वे निष्ठा और पवित्रता के साथ अध्ययन में संलग्न हो गये।

दूसरे ही दिन बकुलाल के साथ बन्धु सुन्दर परमानन्द में मग्न, टहल रहे थे। भाव और गति दोनों उद्देश्यहीन बालक की भाँति इधर-उधर देख रहे थे। बन्धु की प्रत्येक बात बकुलाल के कानों में मधु की वर्षा कर रही थी। बकुलाल कभी कभी कह उठते—"जगत ! यदि इस तरह एक तरफ देखते हुए रास्ता चलोगे तो गाड़ी से दब जाओगे।" बकु के इस परामर्श में बन्धु को आनन्द मिल रहा था।

दोनों मित्र बहु बाजार स्ट्रीट होकर चले जा रहे थे। अचानक बन्धु रुक गये। सामने बंगाल फोटोग्राफर आर्ट स्टूडिओ था। उसका विज्ञापन पढ़ने लगे। पढ़ कर बोले—"बकु ! चलो। फोटो खिचालें। इतना कहते कहते बन्धु स्टूडिओ के भीतर चले गये। चिर परिचित की तरह उन्होंने फोटोग्राफर को बुलाकर कहा—गुरुदास ! क्या आप हमारा चित्र खींच दोगे ?

बन्धु सुन्दर के अनन्य साधारण रूप माधुर्य का दर्शन पाकर और कर्णरसायन शब्द सुनकर गुरुदास मुग्ध हो गया। किसी मनुष्य में इतना सुन्दर रूप हो सकता है यह गुरुदास की कल्पना के बाहर था। आनन्द के असीम उल्लास में उसे कैमरा को भी ठीक करने की सामर्थ्य न रही। अपने सहकारी को केमरा ठीक करने का आदेश देकर वह तो र्निनिमेष दृष्टि से उस अप्राकृत दिव्य रूप की सुधा का पान करने लगा।

बन्धु सुन्दर अपरूप भाव से पद्मासन लगा कर बैठ गये थे और बकुलाल बायीं तरफ जप माला हाथ में लिये प्रशान्त भाव से खड़े थे।

भक्त और भगवान् के अभिनव मिलन के चित्र को भाग्यवान् गुरुदास ने यन्त्र के वक्ष में स्थापित करने के साथ साथ अपने हृदय पटल पर भी चिरकाल के लिये अंकित कर लिया।

———

(१९)

बन्धु रूप

तुच्छ लेखनी से श्री बन्धु सुन्दर की श्रीरूपमाधुरी को व्यक्त करना असम्भव है। जिसने उस रूप को देखा है वही जानता है। किसी उपमा के द्वारा उस रूप को समझाया नहीं जा सकता।

किसी भक्त ने वर्णन किया है—"बन्धु सुन्दर की काम-दमनकारी देह चार हाथ के परिमाण की है। उनका भुवन मोहन रूप सर्वचित्ताकर्षक तथा सर्वानन्द दायक है। शुभ्र वस्त्र का परिधान। हस्त एवं पदतल रक्त कमल के समान। आजानुलम्बित भुजायें सुदीर्घ स्वर्णदण्ड के समान लगती है।"

"आकर्ण विस्तृत नयन। करुणा रस से परिपूर्ण। दीर्घ सुशोभन कर्ण। नासिका सुन्दर। भ्रू युगल सुन्दर। अधरोष्ठ सुन्दर रक्तिम आभा युक्त। मनोहर मस्तक। मस्तक पर कृष्ण वर्ण घनी केश राशि। गण्ड देश सुविमल। हास्योज्ज्वल। भालदेश चन्द्रोज्ज्वल, प्रातः सूर्य के समान प्रदीप्त। सुविशाल स्फीत उन्नत वक्ष। वक्ष पर शुभ्र उपवीत। सुवर्ण सूत्र से ग्रथित रुद्राक्ष की माला। क्षीण कटि। पृष्ठ देश ज्योतिर्मय। जंघे सुकोमल और सुन्दर। सर्वाङ्ग सुगठित, उज्ज्वल, स्वर्ण चम्पक वर्ण नवनीत अंग।"

मुर्शिदाबाद बहरामपुर के श्री हरिचरनदास ने कहा है—"शास्त्रों में पढ़ा है कि श्रीमान् महाप्रभु कषित कांचनतनु थे। किन्तु रस वर्णन को अतिरंजित समझ कर विश्वास नहीं किया था। श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु को दर्शन करने के बाद से

मन की भ्रान्ति मिट गई। उनकी तरफ देखना, प्रभु जगद्बन्धु की तरफ देखना उनका ही निषेध था। कोई कोई तो अपराध के भय से उनकी ओर नहीं देखते थे। जिस समय वस्त्रावृत अवस्था में वे गंगा स्नान करके उठे, मैंने देखा कि वस्त्रावरण को भेदकर उनकी अंग ज्योति बाहर निकल रही है। अब मेरा मन वश में न रह सका। निश्चय कर लिया कि चाहे अपराध हो, चाहे पाप हो। जो होना होगा वह होगा। एक बार उनको देखेंगे ही बहरामपुर से हम सब मिलकर कीर्तन करते करते प्रभु के आविर्भावधाम डाहापाड़ा आये। रात में भीकीर्तन होता रहा। कृष्णपक्ष की अंधेरी रात। भट्टाचार्य महाशय के बाहर की तरफ के एक कमरे में प्रभु स्थित थे। मैं अकेला चुपचाप उधर गया। कमरे का द्वार खिड़की सभी बन्द करके प्रभु बैठे हैं। खिड़की एक जगह से कुछ टूटी थी। उसमें झांककर मैंने देखा कि प्रभु खुले शरीर पद्मासन लगाये बैठे हैं और देखा कि प्रभु के अंगों की कान्ति सुवर्ण से भी उज्ज्वल है। स्वर्ण कमल से भी सुन्दर मुख, आकर्ण विस्तृत नेत्र, आजानु लम्बित बाहु, विशाल वक्षःस्थल, मेरी आंखें चौंधिया गईं। पन्द्रह सेकिण्ड से अधिक मैं न देख सका। आधे घण्टे तक मेरी वाणी बोल न सकी। राधाघाट के जगदीश लाहिडी ने मुझ से पूछा—'कैसा देखा ?" आधे घण्टे बाद मेरी वाणी खुली। तब मैंने कहा—जाइये एक बार दर्शन कर जीवन सार्थक कर लीजिये। दर्शन करने पर उनकी अवस्था भी मेरी जैसी हो गई।"

———

(२०)

महात्मा शिशिरघोष को प्रभु दर्शन

सुविख्यात अमृत बाजार पत्रिका के सम्पादक स्वनामधन्य शिशिर कुमार घोष महाशय ने एक दिन अन्नदादत्त नामके एक भक्त को आवेश की अवस्था में यह कहते सुना कि श्री गौराङ्ग महाप्रभु पुनः अवतीर्ण हुए हैं और इस बार उनका नाम जगद्बन्धु है। तत्काल शिशिर बाबू ने पूछा—"कहाँ साक्षात्कार होगा ?" अन्नदादत्त ने कहा—"आगामी कल नवद्वीप जाते समय स्टीमर में साक्षात्कार होगा।" शिशिर बाबू ने फिर पूछा—"स्टीमर में तो बहुत से लोग होगें, पहिचानेंगे कैसे ?" आविष्ट अवस्था में ही अन्नदादत्त ने उत्तर दिया—"जो मनुष्य सब से सुन्दर होगा वही प्रभु जगद्बन्धु हैं।

जब अन्नदादत्त प्रकृतिस्थ हुए तो आवेश की अवस्था में अपने द्वारा कहे हुए शब्दों को सुनकर स्वयं भी प्रभु के दर्शन करने के लिये कृतसंकल्प हुए। दूसरे दिन यथा समय शिशिर बाबू, महेन्द्र बाबू और अन्नदा बाबू हुगली स्टीमर घाट पर पहुँचकर खड़े हो गये। स्टीमर के जेटी पर लगने पर वे स्टीमर में बैठे हुए अपने वाञ्छित धन को ढूंढने लगे। वह क्या ? वहां क्या है ? अन्नदा बाबू बालक के समान चिल्ला

उठे। चन्द्र कान्त मणि को पहिचानने के लिये समय की क्या आवश्यकता है? उसकी ज्योति ही स्वयं उसका परिचय है।

स्टीमर के एक निर्जन कोने में एक शुभ्र पर्दे के द्वारा घिरा हुआ कुछ दिखाई पड़ा। स्टीमर के सामने के भाग की ओर का पर्दा खुला हुआ था। कारण वह भाग लोक दृष्टि के बाहर था। सभी ने देखा कि नव गौर बन्धु हरि एक मृग-चर्म पर आसीन हैं। किसी पर भी उनकी दृष्टि नहीं है। उनका सर्वांग शुभ्र वस्त्र से आवृत है। कृष्ण केश; मुण्डित श्री मस्तक, पूर्ण चन्द्र को लजाने वाला उनका कान्तिमान श्री मुख मण्डल दृष्टिगोचर हो रहा था। रक्तिमाभ करकमल दिखाई पड़ रहें थे। अहा! कितना सुन्दर है वह रूप।

सभी लोगों के नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। सभी ने प्रणिपात किया। नव गौर बन्धु हरि ने उनकी ओर नीरव सहास्य मुख से कृपा दृष्टि की। शान्ति और आनन्द से सभी आत्मविभोर हो उठे।

स्टीमर जेटी छोड़कर आगे बढ़ा। उन लोगो को उतरने का ही अवसर न मिला। अतः वे रूप सुधा का पान करते हुए आनन्द मग्न होकर उसी स्टीमर से नवद्वीप चले गये। नवद्वीप में जैसे ही स्टीमर रुका नवगौर बन्धु हरि अवतरित हुए। उतरते ही प्रभु इतनी द्रुत गति से रवाना हुए कि उन लोगों को दौड़कर भी प्रभु का साथ पकड़ना असम्भव हो गया। पर्याप्त अनुसन्धान करने के पश्चात् भी वे इस तथ्य का पता न लगा सके कि प्रभु कहाँ अन्तर्हित हो गये? वे

परिश्रान्त हर्ष और विषाद के मध्य मग्न होकर वापिस हुगली आये। प्रभु के निर्देश के अनुसार शिशिर बाबू करताल बजा-कर कलकत्ते के मार्ग में टहल कीर्तन करने में भी संकुचित नहीं हुए। एक दिन टहल कीर्तन करते समय जब वे कुमार-टुली से आ रहे थे श्री प्रभु ने ऊपर से उनके मस्तक पर पुष्पों की वर्षा की। उससे शिशिर बाबू आविष्ट हो गये। शिशिर कुमार के गौर लीला प्रचार तथा अन्यान्य महान् कार्यों में श्री प्रभु की कृपामयी शक्ति प्रतिष्ठित थी।

———

(२१)

आत्म परिचय

बन्धु भक्त श्री रमेश शर्मा जब ढाका में शिक्षक के पद पर नियुक्त होकर प्रभु के आदेशों एवं उपदेशों का पालन करते हुए नवयुवकों को ब्रह्मचर्य एवं हरिनाम की शिक्षा दिया करते थे उस समय ढाके में श्री त्रिपुरलिङ्ग स्वामी नाम के एक साधु रहते थे। उनकी योग विभूति प्रसिद्ध थी। उनके बहुत से शिष्य भी थे। वे रमेशचन्द्र को चाहते तो थे किन्तु समय समय पर प्रभु पर कटाक्ष करते हुए कहा करते थे कि "तुम्हारे प्रभु का क्या परिचय है! वे किस सम्प्रदाय के हैं?" एक दिन तो वे यहां तक कह गये—"अन्धा गुरु बहरा चेला दोनों नरक में ठेलमठेला।" यह सुनकर रमेश बाबू ने उस साधु के पास जाना बन्द कर दिया।

किन्तु साथ ही रमेश बाबू के मन में प्रभु के आत्म परिचय को प्राप्त करने की जिज्ञासा बलवती हो उठी थी। उनका मन रह रह कर यही चाहता। किन्तु किसी के सामने वे इस बात को प्रकाशित न करते।

दो तीन दिन ही इस अवस्था में बीते थे कि अन्तर्यामी प्रभु का स्वहस्त लिखित आत्म परिचय का एक पत्र रमेश को

प्राप्त हुआ। रमेश उस पत्र को देखते ही आनन्द से अवाक् रह गये। उस पत्र की एक प्रतिलिपि लिखकर उन्होंने साधु को जाकर दी। उस पर लिखा था—

आत्म परिचय

"हरि"

१ नाम—जगद्बन्धु
२ जन्म—महेन्द्र क्षण
३ मुर्शिदाबाद राभ (राजधानी)
४ चारि हस्त पुरुष। महा उद्धारण
५ हरि महावतारण

इति

....

प्रभु का आत्म परिचय पाकर साधु (त्रिपुरलिंग स्वामी) प्रभु के दर्शन के लिये आये किन्तु उनको दर्शन नहीं मिला।

---

(२२)

चन्द्रभाल

प्रभु पर दृष्टि डालने का भक्तों को निषेध था। रमेश को भी मना किया गया था। किन्तु एक दिन की घटना है। प्रभु बन्धु स्वयं रमेश से बोले—"रमेश आज मेरी तरफ देखो।" रमेश ने कहा—"प्रभो ! देखना तो निषिद्ध है। प्रभु ने कहा—"अब तो मैं कह रहा हूँ। देखो।"

रमेश ने देखा—"बन्धु के ललाट पर पूर्ण चन्द्र विराजमान है।" रमेशचन्द्र ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—"प्रभो ! मैंने यह क्या देखा ?" प्रभु बोले—"इस को चन्द्रभाल कहा जाता है। यह पूर्ण रूप से एकमात्र श्रीकृष्णचन्द्र के मस्तक पर शोभा पाता है। इसका एक चतुर्थांश शिव जी के ललाट पर है।" इस घटना से प्रकट हो गया कि प्रभु और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं।

---

(२३)

श्री कृष्ण, श्री गौराङ्ग और प्रभु अभिन्न हैं

एक बार ढाका से फरीदपुर जाते समय अपने प्रिय भक्त नवद्वीपदास के साथ प्रभु स्टीमर की प्रथम श्रेणी में बैठे थे। वे अकस्मात् नवद्वीपदास से कहने लगे—"मेरा तत्त्व तुम लोगों में से किसी ने नहीं जाना। इन तीस वर्षों में किसी ने भी मुझे नहीं समझा। आज मैं तुम्हें अपना तत्त्व समझाता हूँ। ध्यान से सुनना। प्राण से ग्रहण करना और जगत में प्रचार करना। अनादि के आदि गोविन्द स्वयं श्री कृष्ण और श्री गौराङ्ग—श्री कृष्ण लीला और श्री गौराङ्ग लीला—इन लीलाओं में जो सर्व समष्टि शक्ति से सम्पन्न हैं, वही श्री हरि पुरुष प्रभु जगद्बन्धु हैं—समझे। मैं वही हूँ।"

श्री प्रभु ने और भी कहा—श्रीकृष्ण की तीन शक्तियाँ हैं—उनका सारा परिकर; वृन्दावन धाम; वृक्ष लता पशु पक्षी आदि। और श्री गौराङ्गलीला में उनका सारा परिकर, नवद्वीप धाम और उनकी लीला के समस्त उपकरण। श्रीकृष्ण की लीला, परिकर और धाम की समष्टि, श्री गौराङ्ग की लीला परिकर और धाम की समष्टि श्री हरि पुरुष तत्त्व है।

में एक ही सर्व समष्टि हूँ (the Lila combination of all things) श्री श्री हरिपुरुष के प्रकट नाम—श्री श्री प्रभु जगद्-बन्धु महावतारण—महा उद्धारण।"

"मैं सब का केन्द्र हूँ" अपना तत्त्व अपने श्री मुख से कहते कहते भाव के उल्लास में बन्धु सुन्दर के नयनयुगल निमीलित होने लगे। कुछ देर वे शान्त और स्थिर बैठे रहे। पश्चात् श्री देह एक बार सिहर उठी। और फिर वे कहने लगे—मुझे केवल श्रीकृष्ण या श्री गौराङ्ग तत्त्व न समझो। मैं वह नहीं हूँ। वही तो हूँ। किन्तु यह तत्त्व अत्यन्त निगूढ़ है। युगावतार को छोड़कर भी भगवान् आसकते हैं। समझे। युगावतार के भगवान् और स्वयं भगवान् में कुछ अन्तर है। युगावतार में सम्पूर्ण शक्ति का विकास नहीं होता। महा उद्धारण कार्य में वे युगावतार से अधिक शक्ति लेकर आते हैं। यह बात केवल शास्त्र प्रमाण से नहीं समझ सकोगे। इसके और भी प्रमाण हैं। यद्यपि युगावतार के भगवान् और स्वयं भगवान् एक ही हैं। तथापि शक्ति के प्रकाश में तार-तम्य है। जिस समय स्वयं भगवान् आते हैं उस समय युगा-वतार उनमें विलीन हो जाते हैं। श्री भगवान् का स्वयं अवतरण, यह शास्त्र प्रमाण से कैसे जानोगे? यह तो उनकी इच्छा पर है। जब वे प्रयोजन समझते हैं तो आते हैं। लक्षणों से उनको पहिचाना जा सकता है। वे जब शक्ति प्रकाश करते हैं और जगत को परिचय देना चाहते हैं, तभी जगत उनको जान पाता है।"

"मेरे आगमन के साथ साथ जगत के समस्त साधु महा-पुरुषों का आगमन हुआ है। मैं ही उनका केन्द्र हूँ।"

"मेरे इस तत्त्व का तुम जगत में प्रचार करो। मेरे कई भक्त अभिमान वश अपने को अवतार कहलायेंगे। सावधान! सब से इस बात का निषेध कर देना। कि मेरे लिये कोई निताई या अद्वैत न बन बैठे। इस बार मैं एक आधार में सब हूँ।"

"मैं ब्रह्माण्ड का बन्धु हूँ। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मैं अकेला ही कृष्ण कीर्तन करूँगा।"

"पतंगें उड़ रही हैं। डोर मेरे हाथों में है। जिसकी जहाँ इच्छा हो, जाने की चेष्टा कर सकता है किन्तु लौट कर मेरे ही पास आना पड़ेगा।"

"जानते हो। वृजलीला में श्रीमती राधारानी की दशम दशा हुई थी। महाप्रभु गौराङ्ग की द्वादश दशायें हुई थीं। इस बार तुम लोग मुझ में त्रयोदश दशा देख सकोगे।"

"लोग मिट्टी के बर्तन को ठोक पीट कर परख लेते हैं तब खरीदते हैं। तो मुझे भी बिना परखे कैसे मान लोगे? यदि इस धरातल के महान् ज्योतिषियों एवं गणनाकारों द्वारा यह सत्य प्रमाणित हो जाय तो मुझे ग्रहण करना। नहीं तो त्याग देना।"

प्रभु ने अपने हाथ से भक्त प्रसन्नकुमार बन्द्योपाध्याय महाशय को लिखा था—"मैं प्रभु जगद्बन्धु ने क्षण में जन्म

लिया है। मेरी जन्म कुण्डली में पांच ग्रह तुंगस्थ हैं मेरे ध्वज वज्राङ्कुश चिन्ह हैं। मैं वही कमलोचन हरि हूँ। मैं ही एक-मात्र पुरुष हरि महावतारण हूँ। और सब प्रकृति है। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बन्धु हूँ। इस बार सभी को हरि नामामृत का आस्वादन कराऊँगा। तभी मेरा 'जगद्बन्धु' नाम सार्थक होगा।"

"बृजलीला और गौराङ्ग लीला में विशेष कुछ नहीं हुआ था। बृजलीला में अष्ट सखियों ने रस का आस्वादन किया था। गौराङ्ग लीला में (१) रामानन्द, (२) स्वरूप दामोदर, (३) शिखि माहेतो (३½) माधवी देवो ये साढ़े तीन व्यक्ति मात्र रस का आस्वादन कर सके थे। इस बार मनुष्य मात्र को ही नहीं, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष तृण आदि तक इतना ही नहीं अणु-परमाणु तक मेरे स्वरूप का रसास्वादन होगा। मेरा जगद्बन्धु नाम सार्थक होगा।"

प्रभु ने अपने भक्त सुरेश चक्रवर्ती और डाक्टर श्रीधर बाबू के हाथ पकड़ कर कहा था—"मैंने तुम्हारे हाथों को बांध लिया। अब तुम्हें चिरकाल तक मेरा होकर रहना पड़ेगा। मुझे कोई नहीं मानता। आज मैं अपना परिचय देकर मुक्त हो जाऊँगा।" और कागज एवं कलम मंगाकर अपने हाथों से लिख दिया—

१. मुझे छोड़ कुछ नहीं है
२. हरि
३. महाउद्धारण
४. पुरुष

५. जगद्बन्धु
६. परब्रह्म
७. सृष्टि

"यह लो मेरा परिचय। आज से मैं मुक्त हो गया। सभी से मेरी बात कहना। लिखना और सर्वदा प्रचार करना।"

वाकचर निवासी भक्त श्रीगोपाल मित्र ने प्रभु से एक बार पूछा था—"प्रभो! आपका परिचय क्या है?" तब बन्धु हरि ने हंसते हंसते उत्तर दिया—मैं कोई भी नहीं हूँ। केवल एक चिन्हधारी पुरुष हूँ। महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम में जितने लक्षण थे वे सब मुझ में हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण में जो जो लक्षण थे वे सब मुझ में हैं।"

प्रभु कभी 'श्रीराधा' का नाम उच्चारण नहीं करते थे। अमुक, श्रीमती, वृषभानुनन्दिनी आदि विशेषणों के द्वारा अपना भाव प्रकट करते थे। इसका कारण यही था कि महाभाव स्वरूपिणी राधा का नाम उच्चारण करने से प्रभु स्वयं महा भाव दशा को प्राप्त हो जाते थे। प्रभु ने कहा है—"जो लक्षण महाभाव दशा में होते हैं उनको तुम क्या देखोगे? क्या पहिचानोगे? मेरे भाल पर राजटीका है। उन्नीस लक्षण हैं।" यह कहकर प्रभु नीरव हो गये थे।

दूसरे दिन गोपाल मित्र ने प्रभु से प्रश्न किया—"प्रभो! आप कहते हैं कि आप सत्यस्वरूप हैं। आपके आगमन के साथ साथ सत्ययुग का आरम्भ हो गया है तो फिर पृथ्वी में अब भी चोरी, डाका, हिंसा आदि अन्याय क्यों हो रहे हैं?

सत्ययुग के आरम्भ हो जाने पर तो किसी प्रकार अन्याय होना नहीं चाहिये ।" प्रभु ने उत्तर दिया—मैं आविर्भूत तो अवश्य हुआ हूँ किन्तु मेरी लीला का प्रकाश अभी तक नहीं हुआ है । इस समय मेरी स्थिति ब्राह्ममुहूर्त के सूर्य जैसी है । ब्राह्ममुहूर्त से दिन का आरम्भ हो जाता है । किन्तु सूर्य दिखाई नहीं देता । मध्याह्न में सूर्य भली भाँति दिखाई देता है । उसी प्रकार मेरा महाप्रकाश होने पर जगत मुझे पहिचानेगा । अभी मेरी शक्ति और लीला पूरी तरह प्रकाश में नहीं आई है इसी लिये जगत नहीं जानता । निश्चित जान लो कि मेरे प्रकाश से सत्य प्रतिष्ठित होगा ।"

प्रभु ने फिर कहा—"तुम्हारे गौरांग कहा प्रभु की देह पौने चार हाथ की थी । कलियुग के मनुष्य साढ़े तीन हाथ के होते हैं। मैं ही एकमात्र चार हाथ का हूँ और मेरे आगमन के पश्चात् जितने मनुष्य जन्म ग्रहण करेंगे वे पौने चार हाथ के होंगे ।

फरीदपुर के टेपा खोला निवासी श्री मथुर कर्मकार महाशय को प्रभु ने लिखा था—

धर्म कोई विशेष वस्तु नहीं है ।

प्रभु का द्वादश नाम उच्चारण करना

हरि	ई	ि इ
महाउद्धारण	आ	ऊ
पुरुष	ऊ ा	उ
जगद्बन्धु	ई ी	अ

——

(२४)
बुना जाति (हरिजन) का परिवर्तन

पावना जिला में अपनी पवित्र लीला समाप्त कर प्रभु फरीदपुर जिले के ब्राह्मण कांदा में अपने निवास स्थान पर आये । यहाँ आपके स्वजन वास करते थे । यहाँ रहते समय प्रभु ने समाज के द्वारा उपेक्षित और अस्पृश्य बुना जाति का उद्धार किया । ये लोग असभ्य और अनाचारी थे और अपनी जीविका के लिये लकड़ी चीरना, मट्टी खोदना आदि नाना प्रकार के काम करते थे । यह जाति बंगाल के विभिन्न भागों में फैली थी । हिन्दू समाज में इनकी संभाल न थी । समाज के निम्न श्रेणी के लोग भी इनको उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे । यह जाति सामाजिक अर्धनैतिक और नैतिक दृष्टि कोणों से अति हीन थी । फरीदपुर शहर के आसपास उन जगहों में जहाँ कोई भी रहना पसन्द नहीं करता वहीं ये लोग रहा करते थे । धर्म ने जिन पदार्थों को अभक्ष्य बताया है वह इनका भक्ष्य था ।

इस जाति के प्रमुख का नाम था रजनी सरदार । बड़े-बड़े केश, बड़ी दाढ़ी, शरीर काला और मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका इस प्रकार उसकी आकृति भयंकर लगती थी । स्वभाव भी उसका आकृति के अनुरूप था । वह लाठी,

बल्लम और धनुष चलाने में उस्ताद था। केवल मनुष्य ही नहीं हिंसक जन्तु भी उससे डरते थे। उसे देखकर बच्चे भय से चिल्ला उठते थे—'वह देखो रजनी सरदार आ रहा है।' और यह सुनते ही बच्चे माता के आंचल में छिप जाते थे।

ईसाई पादरियों ने इस जाति को ईसाई बनाने की भरसक चेष्टा की। पर वे सफल न हो सके। पादरियों ने डट कर समझाया कि हिन्दू धर्म में भेद भाव है और ईसामसीह प्रेम के अवतार हैं। ये लोग सुनते तो उनकी बात थे किन्तु अपना धर्म छोड़ने को तैयार न थे। वे यह समझते थे कि हिन्दूधर्म में उनका कोई सम्मानपूर्ण स्थान नहीं है फिर भी वे हिन्दू के रूप में ही जीवित थे।

किन्तु पादरियों का कुचक्र चलता रहा। अन्त में रजनी सरदार और उसके सहस्त्रों साथी पादरियों के बहकावे में आही गये। वे ईसाई मत को स्वीकार करने के लिये तैयार हो गये। धर्मपरिवर्तन की तिथि निश्चित हो गई। सब कुछ निश्चित हो चुका था। निश्चित तिथि में दो दिन शेष रह गये थे। किन्तु रजनी सरदार का मन अभी तक निर्णय नहीं कर सका था।

रह रह कर सरदार को उस दिन की बात याद आ रही थी जिस दिन जगद्बन्धु सुन्दर अपने अनुयायियों के साथ कीर्तन और नृत्य करते हुए अपने अपरूप रूपराशि से उनके वासस्थान को उज्ज्वल कर गये थे। उस दिन कीर्तन के भावावेश में रजनी भी अपने आपको भूलकर भावनृत्य में सम्मिलित हो गया था। प्रभु की रूप राशि से विमुग्ध उसका

मन जाति-वर्ण के भेद को भूलकर एक अपूर्व उन्माद में संलग्न हो गया था और वह नाचते हुए कीर्तन के साथ ब्राह्मण कांदा तक आया था। कीर्तन के समाप्त होने पर सभी को महाप्रसाद मिला महाप्रसाद लेकर तथा प्रभु को प्रणाम कर सभी अपने अपने घर गये।

रजनी को भी उस दिन महाप्रसाद मिला था। महाप्रसाद लेकर जब वह प्रभु को प्रणाम करने गया तो प्रभु ने उसको देखा। रजनी ने प्रभु की कृपादृष्टि का अनुभव किया। उसका मन प्राण मुग्धकारी करुणापूर्ण दृष्टि पर मोहित हो उठा। और वह उस कृपा दृष्टि को भुला न सका। यहाँ तक कि ईसाई मत में प्रवेश करने का निश्चय हो जाने के बाद भी उस दिन की स्मृति रजनी के मस्तिष्क में मौजूद थी।

बुना जाति के सामूहिक धर्म परिवर्तन करने के निश्चय की सूचना से हिन्दू समाज तनिक भी विचलित नहीं हुआ। किन्तु प्रभु के प्रिय भक्त दुखीराम घोष इस संवाद को पाकर दुःखी हृदय से सोचने लगे कि 'जिस परम धन को पाकर मैं इतना सुखी हूँ कि संसार में लोभ उत्पन्न करने वाली कोई वस्तु मुझे नहीं दिखाई देती, उस परम धन के पास रहने पर भी रजनी सरदार अपने जत्थे के साथ ईसाई बनने जा रहा है।'

दुखीराम को यह संवाद केवल एक ही दिन पहिले मिला था। दुःख, चिन्ता एवं उद्वेग में किसी प्रकार सारी रात काट प्रातःकाल होते ही वह ब्राह्मण कांदा में प्रभु के समीप पहुँचे और बोले—"प्रभो! रजनी सरदार, जो उस दिन कीर्तन के

साथ साथ आया था, अपने साथियों के साथ ईसाई बनने जा जा रहा है।" दुखीराम के आग्रह करने पर और उसके वेदना-पूर्ण भाव को देखकर कारुणिक प्रभु अस्थिरता के साथ बोले—"दुखी ! तुम अभी जाओ और रजनी को मेरे पास बुलालाओ।

दुखीराम वहाँ से तुरन्त चल दिये वे दौड़ते दौड़ते रजनी के द्वार पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने रजनी को पुकारा और कहा—"रजनी ! तुम्हें प्रभु ने ब्राह्मण कांदा में बुलाया है।"

"प्रभु.........ब्राह्मण कादा में.........मुझे" कहते कहते रजनी का हृदय भर आया। वह आनन्द से गद्गद् हो उठा। सबके साथ कीर्तन करना, सब के साथ महाप्रसाद पाना, उन हेमकान्तियुक्त अपरूप रूपवान् दिव्य मनुष्य की करुणा पूर्ण दृष्टि.........सारी बातें क्रमशः उसे याद आने लगीं। वह बुना जाति का सर्दार था। फिर भी उसके हृदय में एक कोमल स्थान भी था जहाँ पर आन्तरिक एवं प्राणमय भावनायें सजीव हो रही थीं। पिछली रात रजनी को नींद नहीं आई थी। उसने स्वप्न में देखा था कि एक हेमकान्तियुक्त पुरुष उस पर करुणामयी दृष्टि डाल रहा है। उसके कानों में ये शब्द सुनाई पड़ रहे थे—"रजनी ! न जाओ, तुम मेरे हो. मुझे छोड़ कर न जाना।" मानो सनातनधर्म मूर्त होकर रजनी से अनुरोध कर रहा हो। उस दिन रजनी सबेरे सबेरे बिस्तर पर बैठे बैठे स्वप्न की बात सोच रहा था कि देवर्षि नारद की तरह यह देववाणी लेकर दुखीराम वहाँ पहुँचे थे कि प्रभु तुम्हें ब्राह्मण कांदा में बुला रहे हैं।

इसके प्रत्येक शब्द ने रजनी को सचेत कर दिया। अहा, प्रभु ने ब्राह्मण कांदा में बुलाया है—अपने आप बुलाया है—आग्रह के साथ—दूत भेजकर—मुझे !!! मुझ जैसे एक नगण्य, पतित दीन एक बुना को प्रभु ने स्मरण किया है। प्रभु ने केवल एक क्षण के लिये एक बार मेरी ओर देखा था। फिर भी वे मुझे नहीं भूले हैं। मुझ से उनका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? प्रभु का प्रेम मुझ पर ! तो क्या स्वप्न सत्य है ?

रजनी ने अपने बड़े बड़े केशों को सम्भाला। कमर में चादर बांध ली। कन्धे पर गमछा डाल लिया और लाठी हाथ में लेकर वह दुखीराम के साथ साथ चल पड़ा। रजनी का विशाल शरीर सभी की दृष्टि को आकृष्ट कर रहा था। प्रत्येक व्यक्ति उससे पूछ रहा था—"रजनी ! इतने तड़के कहाँ जा रहे हो" ? वह एक ही उत्तर देता—"प्रभु ने स्मरण किया है।" इसी गौरव से वह फूला न समा रहा था। उसका शरीर आनन्द से और प्रफुल्लित हो उठा था। उसका हृदय भी अपने छोटेपन को भूल गया था। क्षुद्रत्व की वेदना का भार कम हो चुका था। उसके लाल विशाल नेत्र भी पूर्ण दिखाई दे रहे थे। आज रजनी उस महान के पास जा रहा है जहाँ पहुँचने से उसका क्षुद्रत्व सदा के लिये लुप्त हो जावेगा। चलते चलते रजनी प्रभु के द्वार तक पहुँच गया।

"रजनी !......रजनी ! तुम आगये" कहते कहते प्रभु अस्त-व्यस्त अपने कमरे के बाहर निकले। निकलते ही उन्होंने रजनी को अपनी छाती से लगा लिया। बांध लिया उन्होंने

रजनी को अपने आलिंगन में। प्रणाम करने का अवसर ही रजनी को न मिल सका। रजनी अपने से बाहर हो गया। उसे स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं थी कि उसको जीवन में ऐसा दिव्य आलिंगन प्राप्त होगा।

रजनी ने पूछा—"प्रभो! आपने इस अधम को स्मरण किया?" "हां रजनी", प्रभु ने उत्तर दिया। सुना है कि तुम ईसाई होने जा रहे हो। "हां प्रभो! कल पादरी आवेगा।" रजनी ने कह डाला।

प्रभु ने प्रश्न किया—"रजनी! तुम लोगों के ईसाई बनने का क्या कारण है?" रजनी ने उत्तर दिया—प्रभो! "आप तो सर्वज्ञ हैं। सब कुछ जानते हैं। हिन्दू समाज में हम लोगों के लिये स्थान नहीं है। अपमान और अत्याचार सहते सहते इतने दिन बीत गये। अब और अपमान सहन नहीं किया जाता। हम लोग हीन बुना जाति के हैं। इस समाज में हम लोगों के लिये स्थान कहां?

"रजनी"—प्रभु गम्भीर स्नेहपूर्ण शब्दों में बोल उठे—"रजनी! कौन कहता है कि तुम लोग हीन हो? तुम लोग हीन हो! नहीं, तुम लोग महान् हो। हरिनाम करने पर और भी महान बन जाओगे। तुम लोग बुना जाति के नहीं हो। तुम लोग मानव जाति के हो। तुम लोगों का सही परिचय—तुम लोग हरि के दास हो। आज से तुम रजनी नहीं हो। तुम हरिदास हो। हरि नाम से अपनी गोष्ठी समेत धन्य हो जाओगे। आज से इसी क्षण से तुम लोग बुना नहीं रहे। तुम्हारी उपाधि होगी महान्त।"

रजनी मन्त्रमुग्ध होकर प्रभु की प्राणस्पर्शी अमृतमयी मधुर वाणी सुन रहा था। इस प्रकार की वाणी जो सब कुछ भुलाकर स्वरूप को जागरित करती है—इस प्रकार की प्रेम रस परिपूरित शब्दावली रजनी ने अपने जीवन में कभी नहीं सुनी थी।

प्रभु बन्धु ने पुकारा—"हरिदास। हरिदास अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त खड़ा था। "हरिदास, कल तुम यहां श्री राधागोविन्द जी का प्रसाद पाओगे। केवल तुम ही नहीं, तुम्हारी सम्पूर्ण गोष्ठी के बालक वृद्ध और युवा, नारियाँ सब को साथ लेकर आना।" प्रभु कह कर भीतर चले गये।

हरिदास विभोर होकर वहीं कुछ देर खड़ा रहा। इसके बाद प्रभु के निमित दण्डवत् प्रणाम कर, अपने घर की ओर चल पड़ा। आज उसको नया जीवन मिला था। नव जीवन के साथ उसे सब कुछ नवीन मिला था, नवीन दिखाई पड़ रहा था। नवीन आकाश, नवीन पृथिवी, नवीन पथ, नवीन वातावरण वह सम्पूर्णतया एक नवीन देश में नवीन मनुष्यों के मध्य पहुँच गया था।

हरिदास! तुम्हारा जीवन सार्थक हो गया। तुम द्विज बन गये और बन्धु हरि की कृपा से प्राप्त तुम्हारा यह द्विजत्व चिर-काल तक पतितपावन प्रभु की कीर्ति की घोषणा करता रहेगा।

पादरियों को निष्फल होकर लौट जाना पड़ा। उनके दस वर्षों के कठोर परिश्रम को बन्धु हरि की दो बातों ने बहा दिया। उनको बिदा कर हरिदास अपनी सम्पूर्ण गोष्ठी के

साथ ब्राह्मण कांदा पहुँचे । बन्धु सुन्दर के आदेशानुसार ब्राह्मण कांदा में कीर्तन हो रहा था । महोत्सव की योजना चल रही थी । जाति और वर्ण के विचार में न फंसकर सभी लोगों ने बड़ी तृप्ति के साथ एक साथ बैठकर महाप्रसाद ग्रहण किया । इस आनन्दपूर्ण उत्सव का कारण था बुना जाति का नवीन जन्म और उसका नूतन नाम करण । बन्धु सुन्दर के आदेशानुसार सभी बालक युवा एव वृद्धों तथा नारियों ने तुलसी की मालायें धारण कीं और प्रत्येक के कण्ठ में तुलसी माला की अपूर्व शोभा हुई ।

प्रभु हरिदास के हाथ में करताल देकर बोले—"यह लो स्वयं नित्यानन्द महाप्रभु की शक्ति । इसकी सहायता से जीवन भर हरि कीर्तन करना । इसी प्रकार आपने अन्य आठ व्यक्तियों को नयी करतालें दीं, चार को श्री मृदङ्ग दिये और उनको कीर्तन की छपी पुस्तक दी । प्रभु के अभिप्राय को समझकर महान्त हरिदास ने सब को लेकर कीर्तन आरम्भ कर दिया । कीर्तन का आनन्द छा गया । उस आनन्द का वर्णन करना असम्भव है । कीर्तन के मध्य में दोनों हाथ उठाकर बन्धु सुन्दर नृत्य करने लगे । हरिदास के नेत्र आंसुओं से द्रवित हो चुके थे और वह कीर्तन कर रहे थे । सभी लोगों के नेत्र गीले हो गये थे, हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठे थे और मन को शान्ति का अनुभव हो रहा था । पतितपावन लीला के मूर्त सन्दर्शन से धरती पुलकित हो उठी थी । अन्तरिक्ष से देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । जब कीर्तन हो चुका तो प्रभु ने हरिदास को बड़े आदर के साथ अपने पास बुला कर कहा—"हरिदास ! आज तुम और तुम्हारी गोष्ठी महान्त सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध होगी ।

इस प्रकार प्रभु की कृपा से बुना जाति का जो रूपान्तर एवं भावान्तर हुआ उसका वर्णन प्रत्यक्षदर्शी को छोड़ दूसरा कौन कर सकता है ? जो जाति असभ्यों की भांति जंगलों में सुअरों का शिकार करती हो और कच्चा मांस अग्नि में भून कर खाती हो वह गोपीचन्दन का तिलक लगा कर सात्विक आहार विहार में अभ्यस्त हो जाय यह आश्चर्य नहीं तो और क्या है ? आज यह जाति आदर्श बन गई है आज धनी मानी कुलीन ब्राह्मण उनकी चरणधूलि ग्रहण कर भक्ति का पाठ ले रहे हैं ।

इस घटना के समाचार पत्रों में प्रकाशित होते ही कलकत्ता और आस पास के पादरियों में हलचल मच गई । उनके पत्र ने भी इस घटना को प्रकाशित किया ।

महान्त सम्प्रदाय के लोग निरामिष भोजन के लिये अभ्यस्त हो गये । उनका अपूर्व कीर्तन, मृदंगवादन एवं लीलानुभूति आज तक सब को आनन्दित करती है । उनका कीर्तन सब के मन को मोह लेता है । स्पष्ट है कि इन लोहे के पुरुषों का सोने की मूर्तियों में परिवर्तन होने का कारण श्री जगद्बन्धु हरि ही हैं । पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है ।

---

(२५)

कलकत्ते के रामबागान की डोम (चाण्डाल) बस्ती और प्रभु बन्धु

पतितपावन बन्धु हरि की पतितों पर असीम दया थी। राम बागान में डोमों की बस्ती थी। यहाँ के अधिकांश व्यक्ति मद्य पीने वाले थे। अन्याय और अत्याचार उनके नित्यकर्म थे। बांस और बेंत का सामान बनाना उनकी जीविका का साधन था। वे जाति के फूल डोम थे परमदयालु प्रभु का ध्यान उन लोगों की ओर आकृष्ट हुआ। उनके उद्धार के लिये प्रभु उत्सुक हो उठे।

प्रभु तिनकाडे डोम की स्त्री को 'मां' सम्बोधन करते थे और डोम को 'तात'। उस स्थान पर हरि सभा की स्थापना हुई। कीर्तन के बड़े दल और छोटे दल का संगठन हुआ। वयस्कों को लेकर बड़ा दल और अल्पवयस्कों को लेकर छोटा दल बना। दिन रात लोग कीर्तन सागर में डुबकी लगाने लगे। बड़े, छोटे नर-नारी कीर्तन के भावों से उन्मादित हो उठे। कितने ही राजा-महाराजा रामबागान को छूकर अपने शरीर को पवित्र करने लगे। कितने हो जात्यभिमानी जाति खोकर फिर से जाति पा गये। प्रभु के श्री चरण रज के स्पर्श से

अपवित्र रामबागान परम पवित्र तीर्थ क्षेत्र में परिवर्तित हो गया। नाम कीर्तन की ध्वनि से रामबागान के रास्ते घाट आदि प्रतिध्वनित हो उठे। बालक वृद्धा युवा सभी के गले में तुलसी की माला पड़ गई, शरीर में गोपीचन्दन का तिलक हरिपदचिन्ह की आकृति का लग गया और मुख से हरिनाम निकलने लगा।

कितने ही धनीमानी प्रभु के आकर्षण से वहाँ जाकर त्याग और वैराग्य की विभूति से विभूषित हुए। घृणित, उपेक्षित, अस्पृश्य, मृतप्राय डोम जाति को फिर से प्राण मिल गये। वे मनुष्य बन गये। उनको मनुष्यत्व मिल गया। वे समाज में परिचित हुए। उनका ताल, राग रागनी आदि से युक्त कीर्तन मन को मोहित कर लेता था। शिक्षित भद्र व्यक्ति उन्हें अपने स्थानों पर कीर्तन करने के लिये बुलाते थे और उनके सुन्दर कीर्तन से मुग्ध होकर उनका आदर-सत्कार करते थे।

प्रभु का कहना था—"वे साक्षात बृजवासी हैं" उच्च-वंशीय कुलीन भद्र भक्तों से कहते थे, "उनके घर से मधुकरी (मधुकर वृत्ति) करके अगर न लाते हों तो नरक भोगी होंगे", प्रभु ने जाति हीनों को जाति दी प्रभु ने स्वरचित त्रिकाल ग्रन्थ में लिखा है—दयालु 'तिनकडि डोम हित हरि डोम', मर्यादा पुरुषोत्तम हरि ही मान दे सकते हैं। डोम जाति अधिकतर राम बागान में ही रहती है। कलकत्ते के दूसरे भागों में भी अल्पसंख्यक रूप में हैं। नाम प्रेम के स्पर्श से

सब एक हो गये—सबके मुँह से एक शब्द निकलता था। परभू ! परभू ! "जय जगद्बन्धु हरि बोल बोल।" प्रभु बन्धु भी उनका गाया हुआ कीर्तन सुनकर आनन्दित होते थे। प्रभु बन्धु के पास नाना प्रकार की सामग्रियाँ आती थीं—प्रभु उनको उन सब में लुटा देते थे।

एक दिन महा कीर्तनानन्द के पश्चात् भक्तों ने प्रभु से निवेदन किया—"प्रभो ! क्षुधा बोध हो रहा है", प्रभु ने हंसकर प्रश्न किया—"तुम लोग क्या खाना चाहते हो ?" हिरुमण्डल ने कहा—प्रभु, गरम रसगुल्ला खाने की इच्छा हो रही है। तत्क्षण प्रभु ने गृहाभ्यन्तर से दो हांडो पूर्ण गरम रसगुल्ला ला दिए। बालक भक्त छीना झपटी कर आनन्द से रसगुल्ला खाने लगे। महेन्द्र मण्डल ने आगे बढ़कर कहा—प्रभु मुझे एक नया दस रुपये का नोट दीजिए। तत्क्षण प्रभु ने एक नया दस रुपया का नोट निकाल कर दिया।

भक्तवर पीताम्बर बाबा जी को प्रभु बन्धु 'तात' के नाम से सम्बोधित करते थे। उसने कहा—"प्रभु रुपया पैसा या खाद्य द्रव्य लेकर क्या करेंगे। मृदंग दीजिए, मजीरा दीजिए कीर्तन करने की शक्ति दीजिए जिससे आपको सुखी कर सकें। तत्क्षण प्रभु ने उन सामानों को लाकर उनके सन्मुख रख दिया।

पीताम्बर बोले—प्रभु, नाम कीर्तन लेकर श्रीधाम पुरी जायेंगे। प्रभु ने प्रश्न किया—"इसके लिए तुम्हें कौन कौन सी वस्तुओं की आवश्यकता है तात !" प्रभु के मधुर सम्बोधन

से बिगलित होकर पीताम्बर ने कहा—इसके लिए चाहिए मृदंग, खुन्ती, चाँद माला, मजीरा और आशीर्वाद, तत्क्षण प्रभु ने गृहाभ्यन्तर से इन वस्तुओं को ला दिया और वस्त्राभ्यन्तर से अपने अरुण-करकमल को निकाल कर दिखाया। इसको प्रभु के परम आशीर्वाद सूचक मानकर पीताम्बर आनन्द से उन्मत्त होकर 'जय जगद्बन्धु बोल हरि बोल, हरि बोल" कहकर नृत्य करने लगे।

प्रभु नित्य रात रहते समय दो बालक भक्तों से वाहित डोलो में बैठकर रामबागान से गंगा स्नान करने जाते थे और रात रहते ही लौट आते थे। वे डोली से बाहर नहीं आते थे। डोली समेत वे उन्हें नहलाते थे। इसी तरह वे नित्य गंगा स्नान करते थे। एक दिन रास्ते में पुलिस ने डोली पकड़ी और भीतर क्या है पूछा, बालकों ने कहा कि भीतर उनके गुरुदेव हैं। पुलिस वालों ने अविश्वास की हंसी हंसकर देखना चाहा। डोलो उतारी गई और आवरण हटाकर उन्होंने देखा भीतर कुछ भी नहीं है। दोनों बालक रोने लगे। एक की आयु कुछ अधिक थी उसने कहा कि चलो नित्य की तरह डोलो गंगा जी तक ले जायँ और ऐसा ही किया गया। गंगा जी पहुँच कर डोली को पानी में उतारा—भीतर से नहाने का शब्द आने लगा। प्रभु के स्नान समाप्त होने पर आनन्द से रोमांचित बालक डोली को वहन कर वापस ले आये। वे समझ गये—हमारे प्रभु का पुलिस कुछ भी नहीं कर सकती है। हमारे प्रभु मनुष्य नहीं है—स्वयं भगवान् हैं।

चाषाधोया (धोबी) पाड़ा की डोमपल्ली में एक और चमत्कारिक घटना घट गई । उसी मुहल्ले के एक पार्श्व में बाबू हरराम के गृह में प्रभु अवस्थान कर रहे थे । प्रभु के आदेशानुसार भक्त प्रभु को कमरे के भीतर बैठाकर बाहर से ताला बन्द करके अपने अपने काम पर चले गये थे । प्रभु का ऐसा हीं आदेश था । बाद में प्रभु के इंगित पर दरवाजा खोला जाता था ।

हरराम महाशय का भतीजा निताई बहुत ही क्रोधी था उसका शरीर भी शक्तिशाली था । उसके मन में बड़ा दुःख था कि प्रभु उनके घर में आते जाते हैं किन्तु उसके दुर्भाग्य से कभी दर्शन नहीं हुआ । निताई भक्त नवद्वीप को दरवाजा खोलने को कहता है किन्तु प्रभु के इंगित विना नवद्वीप दरवाजा कैसे खोल सकता है ! एक दिन निताई बहुत क्रोधित होकर जबरदस्ती दरवाजा खोलने के लिए दो तीन गुण्डों को ले आया । बड़ा ही गोलमाल आरम्भ हो गया । मोहल्ले के डोम-नारियों के पास संवाद पहुँचा कि निताई प्रभु के कमरे का दरवाजा तोड़ रहा है । उनके हृदय पर बहुत ही चोट पहुँची । प्रभु की श्री पाद पद्म पर मन प्राण सुमर्पिता नारियाँ अपने बच्चों के लेकर दौड़ पड़ीं—प्रभु के पास । वे चिल्लाने लगीं—"निताई की इतनी स्पर्धा ? हमारे प्रभु पर अत्याचार करेगा !" वे दरवाजे पर डट गईं और बोलीं—"हम लोगों को और हमारे बच्चों को पहले मार दो तब दरवाजा तोड़ो—या हमी लोग अपने बच्चों को मारकर निताई के नाम पर मुकद्दमा

चलायेंगीं । हमारे शरीर और प्राणों का क्या मूल्य है ? हम लोग निताई की शक्ति परखेंगीं । उनके भाव देखकर निताई अपने गुण्डों को लेकर भाग गया । प्रभु ने कहा है—'डोम-पल्ली के वासी बृजवासी हैं । आज उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि वे भी बृज गोपियों की तरह बन्धु हरि के लिए प्राण त्याग सकती हैं । वे आत्म सुख नहीं चाहती हैं—बन्धु सुख ही उनका सुख है । बन्धुगतप्राणा यह सब डोम रमणियाँ धन्य हैं । किसने कहा तुम लोग क्षुद्र हो, गरीब हो, तुम लोग दुर्लभ बन्धु धन से धनी हो, धन्य हों ।

---

(२६)
कलकत्ते के राजा

चम्पटी ठाकुर प्रेमपागल वीर भक्त थे। जिसने इन्द्रियों को जीता है वही तो प्रकृत वीर है। भगवान् की तरह उनके भक्त भी जीवों के दुख से दुखी (कातर) है। इन्द्रिय जयी वीर भक्त चम्पटी का सर्वत्र आना जाना था। हरि बोल का शब्द सर्वदा उनके मुँह से निकलता था। चम्पटी को अगम्य कोई स्थान न था। जिस प्रकार गंगा जी की पवित्रता कोई नष्ट नहीं कर सकता उसी तरह चम्पटी की पवित्रता भी नष्ट करना असम्भव था। वैश्यापल्लीं की लड़कियों का उद्धार करना होगा–हरि नाम प्रेम द्वारा उनकी पतित वृत्ति छुड़ाना होगी। इस कारण वह उसके वैश्यापल्ली के चारों ओर हरि नाम कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। प्राण मन मोहक हरिनाम ध्वनि ने बहुतों के मन को चैतन्य किया। चेतना क्यों नहीं आयेगी ? दुर्बल मन के सामयिक उत्तेजना वश मनुष्य ऐसे बहुत से कर्म करते हैं–जिससे लौट आना असम्भव है। वेश्याओं की भी वह अवस्था है। चम्पटी के हरिसंकीर्तन और उपदेश ने उनमें से अनेकों के जीवन की गति बदल कर प्रेम भक्ति पथ का पथिक बना दिया। उनमें से जादुमणि बाई जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

एक दिन जादुमणि चम्पटी ठाकुर से बोली—"ठाकुर आप तो बहुतों को कुपथ से सुपथ में लाये हो–मेरे राजाबहादुर को भी सुपथ में ला दीजिये।" चम्पटी ने कहा—"मेरे साथ उनका परिचय करादो—मैं उन्हें ऐसे ठाकुर के पास ले जाऊँगा जो उन्हें सम्पूर्ण दोषों से मुक्त कर देंगे।

अवसर आने पर जादुमणि ने राजाबहादुर के साथ चम्पटी ठाकुर का परिचय करा दिया और राजाबहादुर से बोली—"चम्पटी ठाकुर आपसे जैसा कहें वैसा ही कीजिए। इससे आपका मंगल होगा"। राजाबहादुर के जीवन का परम शुभमुहूर्त आया होगा तभी तो अलांछनीय समझ जादुमणि ने अपने मन प्राण के विश्वास के अनुसार उपदेश दिया–कारण चम्पटी ठाकुर के उपदेश ने उसके प्राण को जागरित कर दिया था। स्पर्शमणि के प्रभाव से वह सोना बन गई थी।

राजाबहादुर ने पूछा—"कहिये चम्पटी ठाकुर मुझे क्या करना होगा ?"

चम्पटी ने कहा—"मेरे साथ तुम्हें फरीदपुर जाना होगा, वहाँ जाने पर सब प्रयोजन ही सिद्ध होगा।"

राजा ने प्रश्न किया—वहाँ जाकर क्या होगा ?

चम्पटी ने उत्तर दिया—"वहाँ पर प्रभु जी का दर्शन मिलेगा।"

राजा ने कहा—"प्रभु कौन है ?"

चम्पटी—"नव अवतारी महा उद्धारण हरि।"

राजा—"क्या वह मुझे दर्शन देंगे ?"

चम्पटी—"वह पतितपावन हैं—निश्चय ही दर्शन देंगे।"

राजा—तो फिर मुझे ले चलिए।

राजा यन्त्र चालितवत् चम्पटी के साथ रवाना हुए और फरीदपुर पहुँच गये। उस समय प्रभु एक उद्यान के बीच एक कुटीर में रहते थे। उनके पहुँचते ही प्रभु ने ताली बजाकर आवाज दी। चम्पटी समझ गये कि प्रभु बुला रहे हैं कुटीर के दरवाजे पर जाते ही प्रभु ने पूछा—अतुल(चम्पटी का नाम—चम्पटी उपाधि है) आ गये, साथ कौन है ?"

चम्पटो, "कलकत्ते के शोभा बाजार के राजा राधाकान्त देव बहादुर के नाती कुमार मनोन्द्र देव बहादुर आपके दर्शन के लिए बहुत कष्ट उठाकर आये है"।

कुछ देर रुक कर प्रभु बोले—'अभय नाई को बुलाकर उसका मस्तक मुण्डन करा दो।"

चम्पटी ने पूछा—"दर्शन किस समय होगा ?"

प्रभु ने कोई उत्तर नहीं दिया। चम्पटो कुमार बहादुर के पास जाने पर कुमार बहादुर ने पूछा—"चम्पटी महाशय प्रभु का क्या आदेश है ? किस समय दर्शन देंगे।" चम्पटी बड़े ही असमञ्जस में पड़ गये—अपने को धिक्कार देने लगा कि कुमार बहादुर को क्यों साथ ले आये—मस्तक मुण्डन करने का आदेश किस तरह वह कुमार बहादुर के सामने रक्खेंगे।

कुमार बहादुर व्यस्त होकर बारबार प्रश्न करने लगे—चम्पटी महाशय क्या सोच रहे हैं ? कुछ कहिए भी तो—प्रभु ने क्या आदेश दिया।

चम्पटी ने उत्तर दिया—"क्या कहूँ कुमार बहादुर आपको साथ न लाना ही अच्छा था।"

कुमार बहादुर ने कहा—"आप निःसंकोच होकर कहिए प्रभु का क्या आदेश है।"

चम्पटी ने कहा—"प्रभु ने कहा है कि आपको मस्तक मुण्डन कराना होगा।"

कुमार बहादुर ने उत्तर दिया—"ठीक है, मस्तक मुण्डन कराऊँगा आप नाई बुलवाइए।"

चम्पटी ने कुछ आगे बढ़ने पर देखा कि अभय नाई आ रहा है। नाई को साथ लेकर कुमार के पास आने पर कुमार ने पूछा—"नाई आ गया है चम्पटी महाशय ?" "यही तो है" चम्पटी ने अभय को दिखाकर कहा—ये भी प्रभु के भक्त हैं।"

कुमार कमीज उतार कर नाई के सामने बैठ गये। शरीर उज्ज्वल गौरवर्ण—स्वस्थ अति सुन्दर—कृष्णवर्ण केश प्रसाधन से सुगंधित थे। इतने सुन्दर केश वह मुण्डन करायेंगे या हँसी कर रहे हैं ! अभय अवाक् रह गया। कुमार ने अभय से कहा—"निःसंकोच होकर मेरा मस्तक मुण्डन करदो।" कुमार को देरी करने की इच्छा नहीं थी। उनको विश्वास था कि मस्तक का मुण्डन करने पर प्रभु दर्शन देंगे।

कुमार के आधा मस्तक मुण्डन होने पर प्रभु ने ताली बजाकर चम्पटी को बुलाया चम्पटी के निकट आने पर प्रभु ने उससे गम्भीर शब्दों में आदेश दिया—"इसी क्षण उसे लेकर कलकत्ता चले जाओ एक साथ न बैठना और कलकत्ता पहुँचने के पहले वार्तालाप न करना" प्रभु के कठोर आदेश ने मानों चम्पटी को बिजली मार दी। इतने सुन्दर यत्न रक्षित केशों को भी जिसने प्रभु की दर्शन लालिमा से विसर्जन कर दिया उसके लिए इतना कठोर आदेश ! चम्पटी विमर्ष होकर कुमार बहादुर के पास नत मस्तक हो आ खड़े हुए। तब तक मस्तक पूर्ण मुण्डन हो गया था। चम्पटी अच्छी तरह से जानता था कि प्रभु का आदेश बंधन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। चम्पटी को नीरव देखकर उत्सुक कुमार ने पूछा—"प्रभु ने क्या कहा ? अब तो दर्शन मिलेगा ! नहा कर आ जायँ !" चम्पटी महाशय कोई उत्तर न दे रहे थे—उत्तर क्या देते ? वह तो गर्व के साथ कुमार को प्रभु के दर्शन कराने के लिए लाये थे किन्तु उनकी सब आशा निष्फल हो गयी। कुमार ने पुनः कहा—"चम्पटी महाशय आप निःसंकोच प्रभु का आदेश मुझ से कहिए—मैं वैसा ही करूँगा।" चम्पटी महाशय कुमार की बातों को सुनकर कुछ साहस संचय करके बोले—"प्रभु ने आदेश दिया है कि ऐसी अवस्था में मुझे और आपको कलकत्ता जाना होगा—रास्ते में कोई वार्तालाप नहीं कर सकेंगे, एक साथ नहीं बैठेंगे और तीसरे दर्जे में यात्रा करनी होगी। यही उनका आदेश है।

कुमार बहादुर कुछ देर मस्तक झुकाकर बैठे रहे फिर एक दीर्घ स्वांस छोड़कर बोले—"चलिए—ऐसा ही होगा", दोपहर की मेलट्रेन से कुमार बहादुर और चम्पटी कलकत्ते की तरफ रवाना हुए। तृतीय श्रेणी के एक प्रकोष्ठ में बैठकर कुमार बहादुर सोच विचार में डूब गये। आत्मचिन्तन में वे डूब गये। समस्त जीवन के अन्याय और कुकर्मों की प्रतिच्छाया उनकी दृष्टि के सामने आने लगी। कुमार अनुताप की अग्नि में दग्ध होने लगे—प्रभु ने उसे दग्ध करके पक्के सोने में रूपान्तरित कर दिया। कलकत्ता पहुँचकर कुमार ने चम्पटी से प्रश्न किया—महाशय क्या आप कह सकते है कि आपके प्रभु ने मुझ पर इतनी कृपा क्यों की ? चम्पटी ने कुमार के प्रश्न का तात्पर्य न समझकर उल्टा प्रश्न किया—"आपका क्या विचार है ?" कुमार हृदयावेग से कहने लगे—"मैं महापापी हूँ—अभी मेरा समय नहीं हुआ है। इस कारण प्रभु ने दर्शन नहीं दिया। किन्तु आपके प्रभु कितने उच्च हैं—आज मैं पूर्ण रूप से समझ गया। क्या कहूँ चम्पटी महाशय—मैं—राजा राधाकान्त देव बहादुर का पौत्र हूँ—मेरे घर में साधु सन्यासियों का आगमन हर समय ही होता रहता है। मेरे घर में गोस्वामी विजयकृष्ण, रामकृष्ण परमहंस देव आये हैं—लाटसाहब के साथ मेरी एक प्रकार से मित्रता ही है। साधु महापुरुषों के आश्रम में जाने पर मेरी अभ्यर्थना पूर्ण आदर के साथ होती है और मुझे आपके प्रभु ने मस्तक मुण्डन कराकर वहाँ से भगा दिया। उनके प्रभुत्व ने मुझे यह अच्छी तरह से समझा दिया है,

चम्पटी महाशय, आपके प्रभु मुझ जैसे महापापी को दर्शन क्यों देंगे ? मेरे घर में जो हौज है—क्या कहूँ महाशय—मैंने जितनी शराब पी है उससे वैसे तीन हौज भरे जा सकते हैं। इतने पाप मैंने अपने जीवन में किये हैं कि उन्हें प्रकाश करने के विचार मात्र से ही मैं घृणा और लज्जा से दबा जा रहा हूँ। प्रभु पतितपावन हैं—इस कारण मुझे इतना महापापी जानकर ही मुझ पर इतनी कृपा करते हैं। चम्पटी महाशय मुझ जैसे पापी को ध्यान में लाकर मेरे लिए प्रभु ने आपको जो आदेश दिया उसी से मैंने प्रभु के अन्तर में स्थान पा लिया है। मुझ जैसे व्यक्ति को मन में स्थान देकर, मुझे आदेश देकर प्रभु ने जो अपार करुणा का परिचय दिया वह अवर्णनीय है।" कुमार बहादुर अश्रुविसर्जन करने लगे। उसी अश्रु के साथ उनके जन्म जन्मान्तर की संचित कालिमा घुलकर साफ हो गयी। उनको नव जीवन प्राप्त हुआ। तब से प्रभु को अपने जीवन का ध्रुव मानकर वह अपना जीवन पवित्रता के साथ व्यतीत करने लगे। पतितपावन प्रभु की पतितपावन करुणा धारा और अभिनव कौशल देखकर चम्पटी महाशय अति आनन्दित होकर "हरि बोल जय जगद्बन्धु" कहकर ऊर्ध्व बाहु होकर नृत्य करने लगे।

---

(२७)

बाकचर श्री अंगन

फरीदपुर ज़िला के कावेरी नदी के तट पर बाकचर ग्राम अवस्थित है। गांव में हिन्दू समाज द्वारा नीच श्रेणी अभिहित अर्ध शिक्षित, अशिक्षित लोगों द्वारा ग्राम परिपूर्ण था—वे सहज सरल प्रकृति के थे। उनमें से अधिकांश ही पान का व्यवसाय करते थे। गोपाल मित्र धनमान में उस गांव के प्रधान माने जाते थे। वह सुन्दर कीर्तन किया करते थे और मृदंग भी अच्छी तरह से बजा लेते थे। बाकचर फरीदपुर नगर से प्राय: तीन कोश दूरी पर अवस्थित है किसी कार्य के उपलक्ष पर गोपाल मित्र एक दिन फरीदपुर शहर से लगे हुए बदरपुर गांव में एक रिश्तेदार के घर गये थे। वहाँ जाकर उसने सुना कि गांव के चौधरी बाबू के गृह में कीर्तन उत्सव होगा—तो वह भी अपने रिश्तेदार के कीर्तन दल के साथ वहाँ गये। वहीं एक घटना घट गयी—उसने देखा कि एक परम सुन्दर दीर्घाकृति युवक एक किनारे कीर्तन के आनन्द से रोमांचित विभोर होकर खड़े है गोपाल मित्र ने तो कभी मनुष्य में इतना रूप स्वप्न में भी नहीं देखा था। चौधरी बाबू के सादर कुर्सी देने पर भी दीर्घाकृति पुरुष उस पर न बैठकर निकट ही घास पर बैठ गये। उपस्थित जनों की दृष्टि सामने

रक्खी हुई विग्रह मूर्ति पर न होकर उसी युवक पर स्थिर थी। गोपाल अपनी दृष्टि तो उन पर से हटा ही न सका यहाँ तक कि उसका मन भी उस युवक पर आकर्षित होने लगा। उसी समय ज्ञानी गोपाल के मन प्राण हरण कर वह—रूपवान पुरुष हठात् अदृश्य हो गये। कीर्तन के अवसान होने पर गोपाल अपने कुटुम्ब के साथ घर पहुँचा—किन्तु सारी रात उसका हृदय उसका मन एक क्षण के लिए भी उस रूपवान मनुष्य की चिन्ता न छोड़ सका। परिचय पूछने पर उसे मालूम हुआ कि वह युवक ब्राह्मण कांदा के चक्रवर्ती परिवार के है—नाम जगद्बन्धु। शेष रात्रि में हठात् गोपाल के कान में मृदंग ध्वनि के साथ साथ सुमधुर कीर्तन के शब्द आये। वह वहाँ ठहरा था—कीर्तन दल उसी गृह के पास के रास्ते पर से जा रहा था।

गोपाल व्यस्त होकर दौड़ा और कीर्तन के सन्मुख जा कर उसने साष्टांग प्रणाम किया—अवाक् होकर उसने देखा कि वही रूपवान युवक अर्धावृत शरीर—मृदंग बजाते हुए कीर्तन के साथ जा रहे हैं। गोपाल भी साथ साथ चला। कुछ दूर जाकर ग्राम के श्री गोविन्द जी के मन्दिर की परिक्रमा कर कीर्तन समाप्त हुआ।

यही गोपाल मित्र के साथ प्रभु का प्रथम परिचय हुआ। प्रभु ने गोपाल मित्र को हरिनाम कीर्त्तन करने का उपदेश दिया और गोपाल ने प्रभु के रचित कुछ कीर्त्तन लिख लिये। अपने गांव में लौटकर गोपाल ने प्रभु के रूप, भाव आदि जो कुछ वह समझ सका, अनुभव किया और लोगों से सुना—

सब ग्रामवासियों में प्रचार किया और ग्रामवासियों को लेकर प्रभु के रचित कीर्तन गाने लगे। वैसे तो ग्रामवासियों के लिए कीर्तन कोई नवीन वस्तु न थी किन्तु प्रभु के रचित कीर्तन उन्हें और भी प्राणप्रिय लगने लगे, गायक और श्रोता दोनों ही कीर्तन सुनकर तन्मय हो जाते थे। सभी ग्राम वासी यह कामना करने लगे कि प्रभु एक बार उनके गांव में आवें; किन्तु प्रभु से अनुरोध करने का साहस किसी में न था इसलिये मन की कामना मन में ही रह जाती थी। उनकी कामना के आकर्षण ने प्राणों के प्राण प्रभु को अस्थिर कर दिया। एक दिन भक्त निवारन साधु को साथ लेकर प्रभु वस्त्रावृत अवस्था में शाम को बाकचर ग्राम में उपस्थित हुए, ग्राम में उपस्थित होकर प्रभु ने गोपाल मित्र के गृह के सामने काली माई के मन्दिर में प्रवेश किया। ग्राम में यह शोर हुआ कि किसी व्यक्ति ने एक परम सुन्दरी स्त्री को कहीं से लाकर काली माई के मन्दिर में छुपा कर रक्खा है और ग्राम के कई व्यक्ति इस मामले के साक्षी हैं।

वह दिन ग्राम के साप्ताहिक बाजार का था। गोपाल मित्र भी बाजार गया था, वहीं उसने भी इस घटना को सुना और कुछ जल्दी वापस लौटा। अपने घर के निकट आने पर उसने देखा कि प्रभु का भक्त निवारन साधु काली माई के मन्दिर के सामने खड़ा है। निवारन गोपाल को देखते ही परम आनन्द के साथ बोले—"प्रभु आये हैं।"

"प्रभु ! कहां प्रभु !! किधर हैं !!!" आनन्द से आत्म विभोर गोपाल को धैर्य रखना असम्भव प्रतीत होने

लगा। निवारन ने मन्दिर की ओर इशारा कर दिया। गोपाल ने मन्दिर के दरवाजे से झांक कर देखा कि वस्त्रावृत अवस्था में प्रभु मन्दिर में खड़े हैं। अपने गृह में प्रभु के आगमन का सम्वाद देकर गोपाल ने ग्रामवासियों को भी संवाद दिया और वे मृदंग और मजीरा लेकर वहाँ कीर्तन करते हुए आ उपस्थित हुए और कीर्तन करते करते प्रभु को अपने गृह में ले आये। गृह के एक शुद्ध पवित्र कमरे में प्रभु का आसन लगाया गया। प्रभु गोपाल के बड़े लड़के निताई को दादा, गोपाल को ताऊ और गोपाल को गृहिणी को ताई कहकर सम्बोधन करते थे। मानो प्रभु ने गोकुल के ग्वालों के गाँव में प्रवेश किया है। अभिन्न श्रीकृष्ण प्रभु गांव के आबाल वृद्ध बनिता के साथ कोई कोई सम्बन्ध लगाकर उन्हें सम्बोधित करने लगे। ग्रामवासी भी बृजवासियों की तरह ही प्रभु में तल्लीन हो गये। त्रिकाल-सन्ध्या टहल कीर्तन और नगर कीर्तन होने लगा। थोड़े ही दिन में नदी के किनारे प्रभु का श्री अंगन (मन्दिर) भी प्रस्तुत हो गया।

इच्छामय प्रभु जगद्बन्धु अपनी इच्छानुसार कभी बाकचर मन्दिर में कभी ब्राह्मण कांदा मन्दिर में कभी और स्थानों में भ्रमण करते थे—स्थायी रूप में कहीं भी नहीं रहते थे।

---

(२८)

मदन साहा को बृज प्राप्ति

प्रत्येक वर्ष कावेरी नदी के किनारे चैत्र कृष्णा त्रयोदशी तिथि में वारुणी स्नान का मेला होता था ऐसे ही एक मेले के दिन प्रभु बाकचर के प्रिय भक्त महिमदास के गृह में अवस्थान कर रहे थे। महिम ने प्रभु के लिये अपने घर के निकट एक श्री अंगन (मन्दिर) बनाया था। वहाँ प्रभु के लिये शयन-मन्दिर भोजन-मन्दिर तुलसी कानन और फूलों का बगीचा बनाया गया था। बाकचर में प्रभु वही ठहरते थे। उस दिन श्री अंगन में कीर्तन हो रहा था—उधर कावेरी तीर में मेला के उपलक्ष पर अनेक नर-नारियों का आना जाना हो रहा था।

मदन साहा नामक एक व्यक्ति प्रभु के परम भक्त थे। मेले के उपलक्ष में उसने भी मेले में एक बतासे की दूकान लगायी थी। बतासा खूब बिक रहा था लेकिन मदन का ध्यान उधर नहीं था—उसका ध्यान तो प्रभु और प्रभु के श्री अंगन के कीर्तन में था मेले के शोर गुल भेद करते हुए मदन के कानों में कीर्तन के पद आ रहे थे—

"कबे राधार दया हबे—जाब बृन्दावन रे"

(कब राधाजी के कृपा से मुझे बृन्दावन जाने का सौभाग्य होगा)

मदन का मन अस्थिर हो उठा। वह रह रह कर आनन्द से आत्महारा हो उठा। आहा क्या मधुर कीर्तन—अहा कितना सुन्दर है—कह उठता था। किन्तु और ज्यादा देर तक वह स्थिर न रह सका—सर पर बतासों की डलिया लेकर वह चल पड़ा—दूसरे दूकानदार यह देखकर अवाक् हो गये कि भरपूर मेले के समय ही मदन दुकान उठा कर चला जा रहा है। क्यों नहीं जायगा ? मदन के मन से धन जन का आकर्षण तो पहले ही मिट चुका था—उसने तो मदन मोहन बन्धु हरि को आत्म समर्पण कर दिया था।

मदन कीर्तन की धुन पर नृत्य करते करते श्री अंगन की तरफ चला। श्री अंगन पहुँचकर दूकान की डलियां एक कोने में रखकर वह "कबे राधार दया हबे जाब बृन्दावन रे" गाते हुए दो हाथ उठाकर नृत्य करने लगा—दोनों नयनों से प्रेमाश्रु बिगलित धारा में प्रवाहित हो रहा था। भावावेश से कंठ रुद्ध हो रहा था—पद पूरा नहीं गा पा रहा था। केवल "कबे राधार—" इतना कहते कहते आकुल होकर क्रन्दन कर रहा था। पहले वह नृत्य कर रहा था—धीरे धीरे नृत्य बन्द होकर भाव के साथ उसका शरीर आन्दोलित होने लगा—कीर्तन के शब्द भी उसके मुँह से क्षीण होने लगे। क्रमश: उसके लिए खड़ा रहना भी मुश्किल हो गया और छिन्नमूल वृक्ष की तरह वह कांपते कांपते धरा शायी हो गया। भक्त उसे घेर कर कीर्तन करने लगे। मदन के शरीर पर सात्त्विक भाव का प्रकाश होने लगा। वह स्थिर, अलस, अभंग भाव

से कीर्तन-रस में पड़े रहे। इसी समय श्री श्री प्रभु हठात् मन्दिर के बाहर आकर भाग्यवान मदन के माथे पर श्री चरण को स्पर्श कराकर विद्युत वेग से मन्दिर में पुनः प्रवेश कर गये। मदन चिल्ला उठा "मैंने चरण कमलों का दर्शन किया—मैंने चरण कमलों का दर्शन किया" और कहते कहते वह चुप हो गया उसका शरीर सम्पूर्ण रूप से निष्पन्दित हो गया।

महिमदास परम उत्साह के साथ नृत्य करते हुए मृदंग बजा रहे थे—वह भी भावावेश से पृथ्वी पर गिरने लगे, कुछ भक्तों ने उन्हें थाम लिया और धीरे धीरे उसे प्रभु के पास लेजाकर भूमि पर लिटा दिया। कुछ समय के पश्चात् जब महिम को ज्ञान लौटा—उसने देखा कि श्री श्री प्रभु उसे अपने हाथों से पंखा झल रहे हैं। महिम ने उनके हाथों से पंखा लेने की चेष्टा की तो प्रभु ने कहा—तुम तो आधे रास्ते से ही लौट आये—किन्तु मदन जो गया सो नहीं लौटा" उस समय मदन ने प्रेमाभिषिक्त अवस्था में प्रभु जी का जो रूप देखा उसका अंकन करना असाध्य है। महिम ने पूछा—"प्रभु मदन कहाँ गया ?" प्रभु ने उत्तर दिया—"मदन बृज का था—बृज में लौट गया।" मदन को घेर कर सारो रात कीर्तन होने लगा किन्तु मदन नहीं उठा—उठेगा कैसे ? वह तो मदन मोहन में विलीन हो गया था।

प्रभु ने आदेश किया—मदन के शरीर को पुष्प माला और चन्दन से भूषित कर श्रीमती "(राधा) की जय ध्वनि देकर

उसका शेष कृत्य सम्पन्न करो" पुण्य सलिला कावेरी के तट पर प्रभु के आदेशानुसार कार्य किया गया। सब के मुंह पर एक ही बात थी—"मृत्यु तो सभी की होती है किन्तु ऐसी मृत्यु किसने कब कहाँ देखी है या सुनी है? प्रभु के चरणों के नीचे कीर्तन और नृत्य करते हुए मृत्यु क्या कभी किसी की हुई है? धन्य हो प्रभु, धन्य तुम मदन—धन्य है बाकचर लीलाधाम।"

—— ——

(२९)

निज जन महिमदास

बन्धु हरि के प्रिय महिम बन्धु और बन्धु भक्तों के साथ बड़े आनन्द से समय व्यतीत कर रहे थे। आर्थिक अवस्था अच्छी थी—किसी प्रकार का अभाव आदि नहीं था। उनके एक मात्र पुत्र—दस वर्ष का था। जन्म से ही वह अद्भुत था—जो कहता था वही होता था—वह बाक् सिद्ध था। अगर वह आम का पेड़ दिखाकर कहता कि कटहर का पेड़ है तो लोग भी वैसा ही देखते थे। लोगों का कहना था कि वह कोई योग भ्रष्ट देवता ही होगा नहीं तो ऐसा क्योंकर होता है। एक दिन अपने पुत्र को लेकर महिमदास प्रभु के पास गये। उसे देखते ही प्रभु बोले—"अरे क्या तू मेरे पहले ही प्रकाशित होना चाहता है? नहीं तुझे घूमकर आना होगा।"

घर लौटते ही लड़का बीमार हुआ—कुछ ही दिनों में उसमें शय्या छोड़ने तक की शक्ति न रही। पुत्र ने बाप से कहा—"पिता जी मेरा रास्ते के किनारे वाले कमरे के बरामदे में बिस्तरा लगा दो—मुझे मनुष्यों को देखना अच्छा लगता है—भगवान् की श्रेष्ठ सृष्टि मनुष्य है। दूसरे दिन महिम से वह

बोला—"पिता जी तुम शुक्रबार की सन्ध्या को कहीं मत जाना—घर में तुम्हारा प्रयोजन होगा। इस वार्तालाप के अनुसार महिम उस दिन घर छोड़कर कहीं नहीं गया और उसी दिन लड़के ने अपना शरीर त्याग दिया।

इसके पश्चात महिम की स्त्री ने भी देह त्याग किया—किन्तु बन्धु गत प्राण महिम फिर भी दुर्बल नहीं हुआ। मन में उसने संकल्प किया कि दुबारा विवाह नहीं करेंगे। महिम के आचार व्यवहार को कुछ दिन तक परीक्षा करने के पश्चात महिम के पिता भी समझ गये कि महिम विवाह नहीं करेगा। महिम संसार में रहकर भी संसारी नहीं है—सर्वदा कीर्तन और सत्संग ही उसकी दिन चर्य्या के उपाय हैं। महिम के पिता भी भक्त थे, इस कारण उन्होंने भी आपत्ति नहीं की।

एक दिन प्रभु महिम को बुलाकर बोले—"महिम तुम्हें पुनः विवाह करना होगा"। महिम अवाक् हो गया "यह क्यों प्रभु!" महिम बोला—"आप ही ने तो कितनों को विवाह करने को मना किया है। विवाहित को भी अविवाहित की तरह रहने को कहते हैं—फिर मुझे क्यों पुनः विवाह के लिए आदेश दे रहे हैं?" प्रभु ने उत्तर दिया—"प्रयोजन है।"

प्रभु का आदेश महिम टाल नहीं सका—प्रभु की इच्छा ही उसकी इच्छा है—प्रभु के सुख से वह भी सुखी है—भला बुरा प्रभु ही अच्छी तरह से जानते हैं।

ये सब बातें महिम के पिता के कानों में भी गयीं और वे बहुत ही सुखी हुए। पुत्र पुनः विवाह करेगा यह जानकर पिता

लड़की की खोज में निकले। लड़की पसन्द करके शुभ दिन का निश्चय करके तब वह वापस लौटेंगे। एक बहू के अभाव से ही गृहस्थी विशृंखल है—यह वृद्ध अच्छी तरह जानता है। घर की लक्ष्मी चली गई है—उसे फिर से लाना है।

कुछ कोस दूर एक गांव जिनमें महिम के स्वजातियों के लोगों का वास अधिक था। उसी गांव में जाकर वृद्ध को एक लड़की का पता मिला—पसन्द भी आई—लक्षण भी अच्छे हैं—साक्षात् लक्ष्मी की तरह सुन्दरी। सब कुछ तो ठीक था किन्तु एक अड़चन थी। लड़की वाले बहुत ही गरीब थे। महिम का बाप जमींदार था—गरीब के घर लड़के का विवाह से मान सम्मान की हानि होगी। "युक्ति परामर्श के बाद उत्तर भेजेंगे" कहकर बूढ़ा आगे बढ़ा।

उस गांव से दूर एक गांव में एक अवस्था शाली के घर एक लड़की को देखा। यह लड़की पूर्ववर्त्ती लड़की की तरह सुन्दरी तो नहीं थी किन्तु फिर लड़की वाले की अवस्था अच्छी था और मान सम्मान भी रहेगा विवेचना कर वहीं विवाह पक्का कर लिया—विवाह का दिन भी निर्धारित हो गया। लड़की वाले भी जमींदार थे। महिम के पिता घर वापस आकर विवाह की तैयारियाँ करने लगे।

प्रभु बन्धु उस समय बाकचर के श्री अंगन में अवस्थान कर रहे थे—एक दिन महिम को बुलाकर बोले—"महिम तुम्हारे पिता जिस लड़की के साथ तुम्हारा विवाह तय किए हैं उसके साथ विवाह होने पर तुम्हारी अकाल मृत्यु अवश्यम्भावी है।

तुम अपने पिता जी से कह कर यह विवाह खण्डन कर दो– लड़की वाले को पत्र भेज दो कि यह विवाह नहीं होगा। जिस लड़की को उन्होंने पहले देखा था उसके साथ विवाह शुभ होगा।" महिम से यह सम्बाद सुनते ही वृद्ध आश्चर्यान्वित होकर कहने लगे—"महिम, प्रभु अन्तर्यामी हैं निश्चय ही अन्तर्यामी हैं–नहीं तो इन सब सब बातों को कैसे जान लिया ? वृद्ध ने सम्बन्ध तोड़ कर पहले देखी हुई लड़की के साथ सम्बन्ध निश्चय किया।

जब महिम ने यह सम्बन्ध का सम्वाद प्रभु को दिया तो प्रभु ने कहा—"महिम मैं तुम सब से प्रेम करता हूँ इस कारण देवता लोग तुम से ईर्ष्या करते हैं। जब बरात लेकर जाओगे तो नाव से मत जाना स्टीमर से जाना, आना भी स्टीमर से।

महिम और महिम के पिता प्रभु का आदेश शिरोधार्य कर यात्रा के दिन बारात लेकर स्टीमर से रवाना हुए। विवाह हो गया। लौटने के दिन महिम के ससुरालय के कुटुम्बों ने स्टीमर से जाना व्यर्थ समझा कारण स्टीमर से जाने आने में खर्च अधिक होता था। इसलिये बाध्य होकर महिम के पिता ने नाव से लौटना स्थिर किया। नवविवाहिता पत्नी के साथ और संगी साथियों के साथ महिम नाव से रवाना हुये। रास्ते में पद्मा नदी पड़ती थी–पद्मा नदी में नाव आते ही भीषण तूफान आ गया। भयंकर तूफान ने देखते ही देखते दो नावों को डुबो दिया। महिम की नाव भी टलमल करने लगी। माझियों के आप्राण चेष्टा करने पर भी नाव का बचना असम्भव दीखने लगा।

मृत्यु भय से आरोहियों ने रोना आरम्भ किया। पद्मा नदी की पहाड़ के समान ऊँची ऊँची लहरें नौका को डुबाने की चेष्टा करने लगीं–महिम आकुल होकर "प्रभु रक्षा करो, प्रभु रक्षा करो" कह कर प्रभु के चरणों में वन्दना करने लगा। नाव डूबते डूबते भी किसी तरह किनारे पर आ लगी। आरोहियों के मृत्यु भय से मलिन मुख पुनरुज्जीवित साउल्लासित हो उठा। महिम को दयालु प्रभु के दया की उपलब्धि हुई। महिम के गृह से मांगलिक उपचार के साथ बाजा आदि घाट पर आया था–वर-वधु को वरण कर घर ले जाने के लिए किन्तु महिम ने कहा–"प्रभु के चरणों को दर्शन कर तब घर जाऊँगा," सभा में इसका विरोध किया कि यह मंगलाचरण के विरुद्ध होगा किन्तु महिम अडिग था–उसने कहा–"मंगल मंगल मत करो–सब मंगल तो अभी पद्मा में डूब रहा था– भूल गये ?" महिम की जिद्द को कोई भी नहीं तोड़ सका– अतः महिम "जै जगद्बन्धु–जै महा उद्धरण प्रभु" गाते हुए प्रभु के श्री अंगन के तरफ रवाना हुआ।

प्रभु बन्धु गृहाभ्यन्तर से गृह के पीछे पांव की आवाज सुनकर बोले–"कौन है ? महिम तुम आ गये ?" महिम ने उत्तर दिया–"हाँ प्रभु मैं ही हूँ", प्रभु ने कहा–आ जाओ– महिम–तुम लोगों की जिद्द क्या कभी नहीं जायगी ? महिम ने प्रभु के सामने जाकर उनके अभय चरण कमलों को स्पर्श किया। प्रभु वक्षाभ्यन्तर से अपने हाथ निकाल कर महिम को दिखाया—महिम ने देखा कि कलाई पर खून जम गया

है। महिम ने पूछा—"प्रभु यह कैसे हो गया ?" प्रभु ने उत्तर दिया—"तुम लोगों की नाव पद्मा नदी में डूब रही थी—किसी तरह उसे किनारे पर खींच लाया।" महिम क्रन्दन कर उठा। प्रभु महिम को "निज जन" (स्वजन) कहा है। निज जन के प्रति प्रभु के अपरिसीम दया का परिचय पाकर महिम अवाक् रह गया। इसके बाद प्रभु के आदेश से महिम घर वापस गया।

---

(३०)

आविर्भाव धाम डाहापाडा में प्रभु का आगमन

केवल डेढ वर्ष की आयु में मातृवियोग के कारण प्यारी आविर्भावस्थली डाहापाडा छोड़कर प्रभु चले गये थे। किन्तु उनके छोड़ने से क्या होता है ? श्रीधाम ने तो उन्हें नहीं छोड़ा। वह श्रीधामेश्वर की शैशव की लीलाओं की पुनीत स्मृति हृदय में धारण कर उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

पिछले सोलह बरसों में डाहापाडा में अनेकों परिवर्तन हो चुके हैं। न्यायरत्न महाशय की आवासभूमि पर एक भी घर नहीं रह गया है। सब टूट फूट कर नष्ट हो चुका है। नाना प्रकार के जंगली पेड़ पौधे वहाँ निकल आये हैं। श्रीराधा-गोविन्द का सेवाकुञ्ज भी जंगल में परिणत हो चुका है। जिस स्थान में प्रभु का आविर्भाव हुआ था वहाँ देवी क्षमामयी के द्वारा आरोपित अनार का वृक्ष अवश्य अपनी टहनियों को फैलाकर किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। जिस विल्व वृक्ष के नीचे बैठकर न्यायरत्न महाशय सन्ध्या आदि नित्य कर्म किया करते थे, प्रभु खेला करते थे, वह योगिराज की तरह ध्यान मग्न है। जंगल के बीच बीच जहाँ तहाँ मकान दिखाई देते हैं। वहाँ प्रशान्त मुख वृद्ध एवं वृद्धायें भी हैं जिनके स्मृति-पटल पर आज भी न्याय रत्न के बालक की छबि अंकित है। वामा सुन्दरी के पुत्र की कामना से क्षमामयी शिवजी के मस्तक पर विल्व पत्र चढ़ाती रही। उस माता ने कुछ दिनों

तक जगद्बन्धु की देखभाल की थी। डाहापाडा निवासी आबालवृद्ध के मुखमण्डल पर एक दिव्य सरलता और पवित्र भक्तिभाव की झांकी अब भी विद्यमान है। यह विशेषता सभी को आकृष्ट करती है। इससे प्रतीत होता है कि श्री धाम के नायक श्रीधाम में ही विराजमान हैं।

श्रीधाम के आराध्य देवता धामेश्वर प्रभु सुदीर्घ काल के बाद अकस्मात् धाम में आये। नवल किशोर नटवर बन्धु विल्व वृक्ष के तल देश में खड़े हैं। बनदेवी मानो अपने सौन्दर्य माधुर्य द्वारा लीलानायक बन्धु हरि का आदर सत्कार कर रही है।

धीरे धीरे शुभ वस्त्राच्छादित बन्धु अपने जन्मस्थान पर जाकर बैठ गये। क्रमशः धामवासी आकर वहाँ एकत्रित हुए। सभी आश्चर्य चकित होकर सोच रहे थे कि यह अपूर्व अभिनव मधुरमूर्ति कौन हैं? कहाँ से आये हैं? और कहीं न जाकर इस खण्डहर में आकर क्यों बैठे हैं? वे आपस में तरह तरह की कल्पना कर रहे थे किन्तु आगन्तुक की मर्यादा हानि के भय से उनसे कुछ प्रश्न करने का साहस नहीं पा रहे थे। इसी मध्य प्रभु हठात् उठ खड़े हुए और इधर उधर देखकर स्वेच्छापूर्वक सदर रास्ते की ओर चलने लगे। उपस्थित लोगों ने विचार किया कि यह स्थान तो पहिले न्यायरत्न का गृह था। न्यायरत्न का पुत्र अपूर्व रूप कान्तिमान था। मातृवियोग होने पर इसे फरीदपुर ले जाया गया। क्या यह वही तो नहीं हैं?

---

(३१)

श्री श्री मस्तक मुण्डन लीला

बन्धु हरि अपने अपरूप रूपराशि से चारों ओर उज्ज्वल करते हुए गंगा जी के तटवर्ती गांव की ओर चले। वहाँ जाकर आप भक्त प्राणचन्द्र नाई के घर के सन्मुख जाकर खड़े हो गये। वीणाविनादित स्वर से प्रभु ने पुकारा—"चन्द्र! ओ चन्द्र!" इतनी मधुर कण्ठ ध्वनि—इतनी मधुर आवाज किसी ने नहीं सुनी थी। चन्द्र घर के भीतर था। स्वर कानों में आते ही आकुल होकर उसी क्षण बाहर आया। देखा कि उसके घर के सामने मुनीन्द्र योगेन्द्र वाञ्छित खड़े हैं। चन्द्र ने उसको पहिचाना नहीं और किसी ने भी उनको कहाँ पहिचाना था? रूप माधुरी को देखकर चन्द्र मुग्ध हो गया था।

प्रभु ने कहा—'चन्द्र! मेरे केश मुण्डन कर दो।' इस मधुर ध्वनि ने चन्द्र के हृदय में एक आलोडन उपस्थित कर दिया। उसमें बातें करने की शक्ति लोप हो गई। वह यन्त्रचालित की तरह अपने क्षौर कर्म का बक्सा ले आया।

प्रभु के कुञ्चित केशों को सुन्दरता को देखकर चन्द्र के हाथ कांपने लगे। शरीर में रक्त का आवेग बढ़ गया कि वह किस प्रकार इतने सुन्दर केशों का मुण्डन करे। प्रभु के दिव्य-देश गंध और रूप माधुरी से चन्द्र मुग्ध हो गया था। उसने प्रभु के चरण कमलों का स्पर्श किया और पदरज मस्तक पर लगाई। तत्काल उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उसकी आँखें प्रेमाश्रु से परिपूर्ण होगईं।

चन्द्र के सौभाग्य की सीमा नहीं थी। देवादिदेव वाञ्छित उसके सामने थे। मानो साधन के बिना ही उसे चिन्तामणि मिल गया हो। उसने प्रभु का मस्तक गंगाजल से सिक्त किया और मुण्डन किया। प्रभु के प्रात:कालीन सूर्य के समान उज्ज्वल नखों को काट दिया। अपना कार्य समाप्त कर चन्द्र ने देखा कि प्रभु का मुण्डित मस्तक अत्युज्ज्वल सुवर्ण गोलक के समान चमक रहा है। चन्द्र नहीं समझ पारहा था कि क्या हो रहा है? कोई नहीं समझ पाया कि डाहापाडा में गंगाजी के तट पर मस्तक मुण्डन लीला क्यों हुई? प्रतीत होता है कि गौराङ्ग लीला का मधु नाई इस बार चन्द्र नाई बनकर आया है और श्रीगौराङ्ग के संन्यास ग्रहण करने का अभिनय उस दिन डाहापाडा में फिर से हुआ। क्षौर कर्म के समाप्त होने पर चन्द्र ने अपने सामने एक रौप्य मुद्रा पड़ी देखी। उसको उठाकर, उसने सामने देखा इतने में वह मधुर मूर्ति अदृश्य हो चुकी थी। चन्द्र रो पड़ा। रोते रोते वह खोजने लगा उस मधुर मूर्ति को। उसने तो नाम धाम भी नहीं पूछा था। कहाँ गई वह मधुर मूर्ति, चन्द्र सोचने लगा। "वह तो मेरा मन और प्राण भी ले गये। मैंने उनको पकड़ कर क्यों नहीं बिठा लिया। क्या अब फिर उनका दर्शन मुझे मिलेगा। क्या उनका परिचय मुझे मिलेगा।" उसने पड़ोसियों से तथा पास वालों से पूछा। किसी से कोई पता नहीं मिला। चन्द्र ने दर-दर पूछा किन्तु कहीं भी कोई पता नहीं चल सका।

---

(३२)
भागीरथी की वाञ्छापूर्ण

इधर चन्द्र पागल की तरह प्रभु को खोज रहा था उधर प्रभु भागीरथी में स्नान करने के लिये जा रहे थे। प्रभु का आविर्भाव भागीरथी के तट पर ही हुआ था। किन्तु डेढ वर्ष की आयु में डाहापाडा छोड़कर चले जाने के कारण भागीरथी में स्नान करने का अवसर ही न मिला था।

प्रभु जल में चले गये। कण्ठ तक जल में डुबो कर खड़े हो गये। आप धीरे धीरे कीर्तन कर रहे थे। भागीरथी की मानों इच्छा पूर्ण कर रहे हों। आनन्दमयी उत्ताल तरंगों द्वारा भागीरथी अपने मन का भाव प्रकट कर रही थीं। आस पास जो नर नारी स्नान कर रहे थे, वे स्नान करना भूल गये। वे प्रभु को देखने लगे। ऐसा लग रहा था मानों एक शुभ्र कमल पानी में बह रहा हो।

स्नान समाप्त कर प्रभु ने शुष्क वस्त्र परिधान किया। उनके अपरूप रूप ने सब के नेत्रों को सार्थक कर दिया। डाहापाडा के निवासी अपने को धन्य मानने लगे।

(३३)

माता क्षमामयी पर कृपा

स्नान समाप्त कर बन्धु हरि पुनः न्यायरत्न के पुराने घर आ पहुँचे। वे वहाँ उसी विल्व वृक्ष के नीचे खड़े हो गये। वहाँ अनेकानेक मनुष्य थे। उनके अपरूप रूप ज्योति को और खड़े होने की सुन्दर भंगिमा को देखकर सभी मुग्ध थे और परिचय प्राप्त करने के लिये उत्सुक थे। परिचय प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं दिखाई दे रहा था। वे अनुमान करने लगे कि हो न हो यह न्यायरत्न के पुत्र ही होंगे। वृद्धों ने बताया कि उनके चेहरे से न्यायरत्न का चेहरा मिलता जुलता है। वृद्धायें कहने लगीं कि वामादेवी के शरीर का रंग कुछ कुछ ऐसा ही था। क्रमशः यह बात भट्टाचार्य परिवार की क्षमामयी देवी तक पहुँची। संवाद सुनते ही क्षमामयी का हृदय ममता और स्नेह से बिगलित उठा। उन्होंने सोचा कि सम्भवतः हमारा बन्धु गोपाल आया हो।

क्षमामयी दौड़ पड़ी। आकर उसने देखा कि एक किशोर कुमार भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहा है। देखते ही देवी ने पहिचान लिया। प्रभु जी भी उनको देखकर प्रणाम करने के लिये आगे बढ़े। किन्तु क्षमामयी ने उनको प्रणाम नहीं

करने दिया। परम पुरुष जानकर वह पीछे हट गई। माता का हृदय एक बार सन्तान वात्सल्य से भर उठता है फिर महापुरुष बोध से हृदय में श्रद्धा आ जाती है। प्रभु माता को करुणापूर्ण नेत्रों से देख रहे हैं और माता के नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बह रही है। क्षमामयी को किरीटेश्वरी के साधु की भविष्यवाणी स्मरण हो आई। "यह बालक राजा होगा, यह राजा होगा, भोग का नहीं योग का"।

दोनों ही दोनों को अवाक् देख रहे थे। दोनों के हृदय भाव से परिपूर्ण थे। बातें इतनी थी कि प्रकाश करना असम्भव था। युवक बन्धु जी की माधुर्यमयी तिरछी चितवन और वात्सल्यमयी मां की सरल दृष्टि। इसी प्रकार खड़े खड़े कितना समय बीत गया। नहीं मालूम ऐसा लग रहा था कि काल भी मूर्त रूप धारण कर मिलन का आस्वादन कर रहा है।

फिर प्रभु ने अपने कण्ठ में पड़े सुवर्ण सूत्र से ग्रथित रुद्राक्ष की माला को देखा और अपने गले से माला को उतार कर क्षमामयी की तरफ बढ़ा दिया। क्षमामयी ने माला प्रभु के हाथों से लेकर श्रद्धा के साथ अपने गले में पहिन ली। प्रभु ने माला के साथ अपने को भी माता के हाथों में समर्पण कर दिया।

इन घटनाओं से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रभु बन्धु ने भारत तथा भारत से बाहर अनेकों देशों का भ्रमण किया था। वह जगत के बन्धु हैं। इसलिये जगत का कोई स्थान उनकी कृपादृष्टि से वञ्चित नहीं रह सकता। मलोन, पतित, दुर्मति, पाखण्डो कोई भो उनके उद्धार कार्य से वञ्चित नहीं रह सकता। त्रिविधि तापों की यन्त्रणा से लोगों को मुक्त करने के लिये ही उनका आगमन हुआ। उन्होंने अपने श्री मुख से कहा था कि महापातक भी हो जाने पर तुम मुझे बताकर छूट सकते हो। सुअर का मांस खाने वाला तक यदि हरिनाम का जप करता है तो मैं उसका भी उद्धार करूँगा। क्या आपने दयावतार को कभी सुना है?

---

(३४)

मधुरगुप्त लीला

इन कौतुकी चिरचञ्चल पुरुष ने अध्ययन की लीला से अपनी किशोरावस्था में कहाँ कहाँ भ्रमण किया यह उनको छोड़ और कौन जान सकता है?

निताई भावाविष्ट पागल हरनाथ ने एक बार अपने शिष्यों को बताया था कि मैंने प्रभु जगद्बन्धु का साक्षात्कार राजस्थान में किया था।

इंगलिशमैन (English man) पत्रिका के सम्पादक ने चम्पटि महाशय के पास प्रभु के चित्र को देखकर कहा था कि चित्र में निर्दिष्ट बालक को उन्होंने पैरिस के एक विराट सभास्थल में देखा था। उन्होंने यह भी बताया कि बालक के वार्तालाप और रूप ने बहुत लोगों को आकृष्ट तथा मुग्ध किया था। चित्र का बालक और सभा का बालक एक ही है इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रभु ने एकबार वार्तालाप में लन्दन (London) के एक महल का पूर्ण एवं अविकल वर्णन दिया और यह भी कहा था कि वहाँ महाराणी विक्टोरिया के साथ उनका साक्षात् हुआ था।

(३५)

व्रजभूमि के पथ पर

प्रभु के देश पर्यटन करने के दो कारण थे एक तो पदरज से विभिन्न स्थानों को पवित्र करना और दूसरे लोगों को अपने भावों के द्वारा शिक्षा देना। सुमहान सुकठिन आत्म-समर्पण के पथ को यदि वे न सिखाते तो सर्व साधारण को उसका ज्ञान कैसे होता ? भगवद्भाव और भक्तभाव दोनों का एक अखण्ड सम्मिलित विग्रह। प्रभु जगद्बन्धु व्रजधाम की यात्रा पर चल पड़े। प्रेम भावना से ओतप्रोत नेत्रों से अविरल अश्रुधारा उनके वक्षःस्थल को भिगो रही थी।

वृन्दावन में प्रवेश करने के पूर्व प्रभु गोविन्द देव के दर्शन की इच्छा से जयपुर पहुँचे। वहाँ बन्धु हरि गोविन्द के विग्रह का दर्शन करने के लिये भक्तिगद्गद चित्त से मन्दिर द्वार पर उपस्थित हुए। वे एकटक प्रभु की श्रीमूर्ति का दर्शन कर रहे थे। उनकी छटा से चारों दिशायें आलोकित हो उठी थीं। उनके दिव्य दर्शन से मन्दिर के पुजारी आश्चर्य चकित रह गये थे और दर्शकों का हृदय आनन्द से मग्न हो गया था। सब को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि प्रभु गोविन्द जी का दर्शन कर रहे हैं और गोविन्द जी प्रभु का दर्शन कर रहे हैं।

इसी समय एक अलौकिक घटना घटी। गोविन्द जी के कण्ठदेश से मालती की माला खिसकी। पुजारी ने माला उठाली। माला लेकर वे प्रभु के सामने आखड़े हुए। पुजारी की इच्छा को जान कर प्रभु ने अपना मस्तक झुका दिया। पुजारी ने प्रभु के गले में माला पहिना दी। प्रभु का स्वभावोज्ज्वल गात्रवर्ण माला पहिनने के बाद और भी ज्यादह चमक उठा। जयपुर नरेश भी बन्धु हरि के अनिन्द्य सुन्दर रूप और भावावेश से प्रभावित होकर उनके चरण कमलों में गिर पड़े। उनके अनुरोध पर प्रभु राजभवन के सुपवित्र प्रकोष्ठ में एक रात्रि ठहरे। यह स्थान धूप की सुगन्धि से सुगन्धित और तुलसी के गमलों से सुज्जित था। प्रभु जी ने राजा को श्री युगल किशोर के भजन के विषय में उपदेश देकर कृतार्थ किया। अगले दिन श्री गोपीनाथ जी के दर्शन कर आप जयपुर से रवाना हुए।

प्रेमविह्वल बन्धु हरि ने वृन्दावन में प्रवेश किया। वृषभानुपुर, नन्दग्राम आदि के दर्शन कर तथा व्रजवासियों के कुञ्जों में माधुकरी (मधुकर वृत्ति) भिक्षा मांग कर उन्होंने अपने कर्तव्य का सम्पादन किया। उन्होंने व्रजधाम की चौरासी कोस की परिक्रमा की। उस समय व्रजवासियों की मानसिक अवस्था पर विचार करने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों व्रजेन्द्रनन्दन व्रजधाम को मिल गये हों। प्रभु ने ललिता कुण्ड और श्याम कुण्ड में स्नान किया। राधाकुण्ड पहुँचने पर आप भावविह्वल होकर भूमि पर गिर पड़े। उनके प्रत्येक

रोमकूप से रक्त निकलने लगा। श्रीराधा के भावावेश से विह्वल प्रभु की इस अवस्था को कौन समझ सकता है ?

इस समय प्रभु के एकान्त भक्त राजर्षि वनमालि मिश्र श्री वृन्दावन धाम में निवास कर रहे थे। उन्हें जब पता चला कि बन्धु हरि श्री वृन्दावनधाम में आये हैं तो वे तत्काल प्रभु के चरणों में उपस्थित हुए। आकर उन्होंने प्रभु जी को साष्टांग प्रणाम किया। प्रभु के सम्भाषण से वह तन्मय हो उठे। उनका भाव उस समय विरहव्यथा से आकुल होने का था। प्राण-बन्धु के दर्शन से विरह यन्त्रणा का उपशम हुआ। इसके पहिले राजर्षि के बार बार अनुरोध और प्रार्थना करने पर भी प्रभु उनके साथ वृन्दावन नहीं आये थे। अब उन्होंने अकेले ही वृन्दावन में आकर सम्पूर्ण व्रजधाम के दर्शन किये और इसके पश्चात् राजर्षि को दर्शन दिये थे। राजर्षि को यह समझने में देर न लगी कि बन्धु स्वतन्त्र ईश्वर हैं और उनका भ्रमण जीवों के शिक्षण के लिये है।

इस समय राजर्षि को बन्धु हरि में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ा। बनवारी नगर में देखा हुआ हास्य कौतुकमय सुन्दर मुख श्री परिवर्तित होकर गम्भीर परम प्रशान्त भावसिन्धु में निमग्न मुखमण्डल लक्षित हुआ। ऐसा दिखाई पड़ रहा था कि मानो तीव्र विरह से कातर होकर वे अपने परमनिधि के अनुसन्धान कार्य में रत होकर इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं। राजर्षि में वह दृष्टि थी जो भीतर और बाहर समान रूप से देख सकती थी। उनकी दृष्टि में बन्धु हरि एक भावरस की

की प्रतिमा से दिखाई देते थे। वे समझ गये कि बन्धु हरि का भ्रमण व्रज के अनुकूल वातारण में हुआ।

बन्धु हरि श्री राधा भावावेश में राधाकुण्ड के किनारे बैठे रहते थे। वे इस प्रकार बैठे रहते थे कि देखने वाले समझते थे कि वे किसी की प्रतीक्षा करते हुए ध्यान मग्न हैं। राजर्षि वनमाली तथा गोस्वामी रघुनन्दन जी दूर से प्रभु जी का यह भावावेश निरीक्षण करते हुए आनन्द लेते थे। एक दिन गोस्वामी जी ने अवसर पाकर प्रभु जी से प्रश्न किया—"प्रभु ! आपका गुरु कौन है।" प्रभु ने उत्तर दिया—वृषभानुनन्दिनी ने मुझे दीक्षा दी है। इसके उत्तर से गोस्वामी जी ने प्रभु के तत्त्व का विशेष भाव अनुभव किया।

---

(३६)

अतुल समागम

कुछ दिन वृन्दावन में रहने के पश्चात् बन्धु हरि बंगाल को रवाना हुए। बीच में आरा स्टेशन पर उतर गये और परिचित की तरह रास्ता चलकर एक गृह के सन्मुख उपस्थित होकर आपने आवाज लगाई—"हरे कृष्ण !" उस घर में प्रभु के बहनोई श्री अतुल चम्पटि अपनी स्त्री के साथ रहते थे। श्री चम्पटि आरा जिला स्कूल के हेडमास्टर थे। प्रभु को अकस्मात् पाकर पति-पत्नी दोनों ही अत्यन्त आनन्दित हुए। इसके कुछ दिन पूर्व प्रभु की बहिन क्षीरोदा देवी की सरयू नाम्नी एक कन्या का देहान्त हो गया था। भाई को पाकर बहिन क्षीरोदा को अपनी स्वर्गीय कन्या का स्मरण हो आया और वे रोने लगीं।

बन्धु हरि बोले—"क्षीरोदा ! सरयू के लिये शोक न करो। वह शापभ्रष्टा सरयू नदी की अधिष्ठातृ देवी थी। गर्भवास से उसके शाप नष्ट हो गये। अब वह अपने स्थान को लौट गई। मैं जब सरयू में स्नान कर रहा था तो तुम्हारी सरयू अपनी छोटी छोटी बाहों को मेरी ओर बढ़ाती हुई मेरे पास आई। मैंने उसका सम्मान किया तो फिर वह जल में अदृश्य हो गई।

तुम सरयू के लिये शोक न करो।" प्रभु की बातों से क्षीरोदा का शोक दूर हो गया। प्रभु ने क्षीरोदा के मस्तक पर व्रजरज देकर आशीर्वाद दिया—"तुम्हें कृष्णभक्ति का लाभ हो।"

आरा में दो दिन श्री कृष्णकथाप्रसंग की चर्चा कर प्रभु ने बंगाल रवाना होने के पहिले अतुल को अपने पास बुलाकर कहा—"अतुल ! यह माया का संसार दुःखमय है। कृष्णभजन ही एकमात्र सार है। आप माया में बधे न रहें। आपसे मुझे अनेक कार्य कराना है। तब से अतुल शयन स्वप्न जागरण सर्वदा यहीं सोचते थे इस दुःखमय संसार में कृष्ण भजन ही सार है। इसी भावना से अतुल का समय बीत रहा था।

इसके कुछ दिन पश्चात् प्रभु पुनः श्रीवृन्दावन जाते समय आरा स्टेशन पर उतर कर ब्राह्ममुहूर्त में अतुल के गृहद्वार पर पहुँचे। प्रभु जी ने द्वार खटखटाया। अतुल इस समय अकेले ही रहते थे। अतुल ने उठकर द्वार खोले और शुभ-मुहूर्त में प्रभु के दर्शन किये। देखा तो उन्होंने कई बार था किन्तु उस दिन का सा अपूर्व दर्शन कभी नहीं हुआ था। तत्काल अतुल में एक परिवर्तन हुआ। उनमें एक भावान्तर परिलक्षित हुआ। वे वार्तालाप करने की स्थिति में नहीं थे। पूछने पर मुँह पर अगुली रखकर वे मौन संकेत करते। गम्भीर भाव उनके मुखमण्डल पर दिखाई पड़ रहा था। व्यवहार से ऐसा लगता था कि उनको अपूर्व हर्ष है। आनन्द के कारण वे आत्मविभोर हो उठे थे। उनके नेत्र प्रेमाश्रु से

परिपूर्ण हो गये थे। प्रधान शिक्षक होने के कारण वे सभी के श्रद्धा के पात्र थे किन्तु उस दिन उनकी गम्भीरता में एक अति चंचलभाव भी सम्मिश्रित था। इससे पूर्व अतुल ने प्रभु के बारे में बहुतों से वार्तालाप किया था। उस दिन उनके व्यवहार से लोगों ने अनुमान किया कि हो न हो प्रभु ही आये हैं। कारण अतुल जब बाहर जाते थे तो दरवाजा बन्द कर देते थे और कभी भीतर जाकर निम्न स्वर से वार्तालाप करते थे। सभी अत्यन्त कौतूहल से देख रहे थे किन्तु प्रश्न करने का साहस किसी में न था। यद्यपि प्रभु अतुल से आयु में कम थे किन्तु उनके गाम्भीर्य, उनके व्यक्तित्व, उनके भावाविष्ट मुखमंडल सब मिलकर अतुल के व्यक्तित्व में छोटेपन का अनुभव करा रहे थे।

उस दिन अतुल ने स्कूल से छुट्टी लेने का विचार किया और प्रभु के स्नानाहार की व्यवस्था में लगे—उसी समय कमरे से धीरे ताली बजाने के शब्द के साथ मधुर कण्ठ स्वर सुनाई पड़ा "हरेकृष्ण—आप एकबार इधर आइए।"

प्रभु बन्धु के मधुर शब्द कानों में आते ही अतुल प्रभु के निकट जा पहुंचे। प्रभु ने कहा—"आपका स्कूल जाने का समय तो हो गया है आप जाइए, मुझे आतप चावल (अड़वा चावल) घी थोड़ी सी तरकारी और एक छोटा सा पात्र रसोई में दे जाइए—मैं स्वपाक भोजन करूँगा। मेरे लिये सोच विचार करने का प्रयोजन नहीं है।

उस दिन अतुल को स्कूल जाने की इच्छा नहीं थी किन्तु प्रभु की इच्छा को अन्यथा करने की शक्ति भी न थी। वह

अस्वीकार नहीं कर सके। प्रभु से जब वह कहने गये कि और सब सामान कहाँ है तो प्रभु ने कहा—"मैं सब कुछ ठीक करलूँगा—आप चिन्ता न करें। रवाना हो जाइये आपको देरी हो रही है।"

अतुल स्कूल गये किन्तु उनका प्राण प्रभु के पास रह गया। स्कूल में वह कोई काम न सके। किसी प्रकार समय बिताकर वह तीन बजे घर लौटे। द्वार खोलकर जो कुछ देखा उससे उनका प्राण उड़ गया। प्रभु नहीं हैं। अदृश्य हो गये हैं। उनका मन अवसन्न हो गया। दुश्चिन्ता दुर्भावना से वह स्थिर न रह सके। अस्थिर होकर वह अपने शय्या पर गिर पड़े। कुछ देर बाद तन्द्रावस्था में उसने स्वप्न देखा कि सहास्यमुख ज्योतिर्मय शरीर प्रभु जगद्बन्धु उसके सामने खड़े हैं और अपने हाथ पसार कर उन्हें कुछ दे रहे हैं। उस मनमोहक रूप को अतुल अनिमिष नेत्रों से देखने लगे। प्रभु जी बोले—"अतुल चले आओ। तुमसे मेरे अनेक कर्म हैं। तुम तो आजन्म संन्यासी हो। तुम क्यों घर में बन्द हो?" अतुल चमत्कृत हो उठ बैठे। उनकी तन्द्रा टूट गयी। वह शीघ्र ही द्वार खोल कर बाहर आये···मन ने प्रश्न किया—"क्या यह स्वप्न था?"

सोचते सोचते रात हो गई। मन ने कहा कि अब जगद्बन्धु सुन्दर नहीं आवेंगे। अतुल फफक फफक कर रोने लगे।

अचानक द्वार पर कुछ खटका सुनाई पड़ा। अतुल ने दौड़ कर दरवाजा खोल कर सामने एक श्वेत वस्त्रावृत मूर्ति को खड़ा देखा—और देखा कि वस्त्रों को भेदकर एक नीलाभ ज्योति

प्रकाश पा रही है। कपट चूड़ामणि गृह में प्रवेश करके बोले—"मैं आज रात की गाड़ी से पश्चिम रवाना हो रहा हूँ। आपके लिए प्रसाद रक्खा हुआ है। ग्रहण कीजिएगा। मैं एक बार आप को देखने के लिए ही आया हूँ।" प्रभु चले जाने का उपक्रम कर रहे हैं यह देखकर अतुल प्रभु के चरणों पर गिर पड़े। प्रभु अतुल को सस्नेह उठाकर बोले—"आप विचलित न होइये, गोविन्द के इच्छा होने पर कलकत्ते में जल्द ही साक्षात् होगा।" प्रभु चले गये। अतुल पहले तो भूमि पर लोट लोटकर बालक की तरह रोदन करने लगे। किन्तु प्रभु के आदेश स्मरण कर बाद में चुप गये। उसके बाद केले के पत्ते में रक्खा हुआ प्रसाद मस्तक पर स्पर्श कर ग्रहण किया और परम आश्चर्य की बात यह है कि प्रसाद ग्रहण मात्र से अतुल के हृदय में पूर्ण वैराग्य भाव जागरित हुआ। स्वत: उनके मुँह से हरि ध्वनि का स्फुरण होने लगा। संसार के क्षण भंगुरता और श्री कृष्ण भजन के आवश्यकता का उन्होंने निश्चित रूप से अनुभव किया। मन में निश्चय कर लिया, उन्हें उसी रात को ही गृह त्याग करना होगा। बंग भंग आन्दोलन के समय (Partition of Bengal in 1905) जनता में जागरण लाने के लिए अतुल ने गैरिक वस्त्र और बिगुल संग्रह किए थे—उसी को पहनकर और बिगुल साथ में लेकर अतुल परिव्राजक बन गये और हरि ध्वनि करते करते पागल की तरह स्टेशन की तरफ चल पड़े। अतुल का मन उस समय पिंजड़े से मुक्तपक्षी के तरह था। संसार बंधन मुक्त अतुल के नयनों से आनन्दाश्रु बिगलित हो रहा था।

टिकट लेकर कलकत्ते की गाड़ी में बैठ गये। यद्यपि अतुल का घर कलकत्ते में था किन्तु अतुल घर नहीं जा रहे थे। वह जा रहे थे अनजान को जानने के लिये दुर्ज्ञेय पथ पर—भूमा के पथ पर। प्रभु जी के बाणी है—"त्याग ही सुख और वैराग्य ही भाग्य है।

अतुल के नयनों से अश्रु निर्गलित हो रहा था—बीच बीच में वह दीर्घस्वांस छोड़ रहे थे। मन में एक आशा थी—प्रभु ने कहा है—"गोविन्द की इच्छा से शीघ्र ही कलकत्ते में साक्षात होगा"—गाड़ी हावड़ा में पहुंची। ध्यानस्थ अतुल के मुँह से गम्भीर हरि बोल की ध्वनि निकली। गाड़ी से उतर कर पुल को पार किया और एक निर्जन घाट में जाकर गंगा स्नान कर लिया। उनके मुख की हरि बोल की ध्वनि का विराम नहीं था। स्नान कर वह इच्छानुसार चलने लगे—गन्तव्य का ठिकाना नहीं था। आहार निद्रा सब कुछ त्याग दिया। यहाँ तक कि क्षुधा बोध या विश्राम बोध भी नहीं था—उनके मुख की भक्ति भावना को देखकर कभी कोई भक्त अगर कुछ खिला देते तो खा लेते थे। किन्तु रुकते नहीं थे। खाना समाप्त होते ही फिर चल पड़ते थे। कभी कभी रो पड़ते थे। जहाँ तहाँ खाना पार्क में या रास्ते पर सोना और गोविन्द की इच्छा का प्रतीक्षा करना ही उनका ध्येय था। प्रभु ने कहा था—"गोविन्द की इच्छा होने पर कलकत्ते में शीघ्र ही साक्षात् होगा।" मन में आकुल आग्रह लेकर अतुल गोविन्द के इच्छा के प्रतीक्षा में कलकत्ते के रास्ते रास्ते में भ्रमण करने लगे।

कलकत्ते में अतुल के परिचित अनेक थे—उनको विश्वास हो गया था कि अतुल पागल हो गया है। अतुल का शरीर मलिन हो गया था, वस्त्र मैले थे किन्तु उसका प्राण मलिन नहीं था। उसके पास आहार निद्रा का समय नहीं था। किन्तु "हा कृष्ण हा कृष्ण" कह कर रोने में विराम नहीं था। इस तरह अतुल के दिन बीतने लगे।

अचानक एक दिन अतुल के मन में सूर्योदय के साथ साथ एक अभूत पूर्व आनन्द का संचार हुआ। चारों तरफ उसे मधुमय आनन्दमय दीख रहा था। अतुल का मन कह रहा था कि प्राणाराम जगद्बन्धु सुन्दर निश्चय ही कलकत्ते में आये हैं। उद्वेग और उत्कण्ठा के साथ वह चारों तरफ देख रहा था। गंगा स्नान समापन कर अतुल रास्ते में खड़े थे। मुँह से अनवरत हरिनाम ध्वनि निकल रही थी। नयन विरहाश्रु वर्षण कर रहा था। वेश पागलों का सा था। इसी समय एक घोड़े की गाड़ी, जो चारों तरफ से बन्द थी, अतुल के पास आकर रुक गयी। अतुल गाड़ी को देखने लगे गाड़ी की एक खिड़की खुल गई। उसमें श्री प्रभु के वस्त्रावृत श्री मुख की झलक दिखाई पड़ी। रंगमय प्रभु जी ताली बजाकर मुँह से बोले—'हरे कृष्ण—इधर आओ" प्रभु के मधुर स्वर कानों में पड़ते ही अतुल रोमांचित हो उठे। खिड़की में से प्रभु के नयनों से अतुल की दृष्टि मिली। अतुल का आनन्द सीमा पार कर गया। प्रभु ने अतुल को गाड़ी में चढ़ने को कहा किन्तु अतुल अपने मलिन वस्त्र लेकर गाड़ी में चढ़ने को राजी न हुए। अतएव वह गाड़ीवान के पास बाहर ही बैठे और आनन्द मग्न हो प्राण रोककर दोनों बाहुओं को उठा हरि ध्वनि करने लगे। अतुल की हरि ध्वनि सार्थक हुई और जिसके नाम हैं वह भी विमुग्ध हुए।

कुछ देर में गाड़ी एक भक्त के गृह के सामने उपस्थित हुई। प्रभु उतरकर भीतर चले गये। अतुल बाहर के बरामदे पर बैठ गये। उसका मन शान्त था। उनका हृदयाग्नि निर्वापित हो चुका था। क्योंकि अपने साधना के धन को वह सम्मुख पा गये थे। धीरे धीरे भक्त समागम होने लगा। प्रभू जी उन्हें ब्रह्मचर्य और हरि नाम का उपदेश दे रहे थे। अतुल पास ही बैठकर प्रभु के मुखकमल का दर्शन कर रहे थे। दोपहर में प्रभु के आहार के बाद अतुल ने भी प्रसाद पाया। प्रभु ने अतुल को गैरिक वस्त्र त्याग करने को कहा और अतुल के हाथ दो रुपया देकर एक धोती, एक चादर और एक जोड़ा मजीरा खरीद लाने के लिये बोले। जब सब वस्तु आ गयी तो प्रभु ने अतुल से कहा—"कल प्रात: काल जगन्नाथ घाट जाकर केवल एक डुबकी लगाकर गैरिक वस्त्र त्याग दीजिए और इस नवीन वस्त्र और चादर को ग्रहण कीजिएगा फिर मजीरा बजाकर "कृष्ण गोपाल गोविन्द श्याम" गा गा कर भ्रमण कीजिएगा। जगन्नाथ घाट से सीधे काली घाट जाइएगा और वहाँ की गंगाजी में केवल एक डुबकी लगाकर फिर जगन्नाथ घाट में लौटकर एक डुबकी फिर लगाना। इसी तरह बराबर दिन रात एक डुबकी जगन्नाथ घाट और फिर

एक डुबकी कालीघाट में जितनी बार हो सके बराबर वही नाम कीर्तन करते करते करना। खाना पीना गोविन्द की इच्छा पर निर्भर होगा। फिर मैं आपको महापुरुष का दर्शन कराऊँगा।" प्रभु जी ने फिर कहा—"इतने दिन तुम्हारी दृष्टि महापुरुषों के दर्शन करने के योग्य नहीं हुई थी।"

प्रभु के आदेश को सुनकर आनन्दित होकर उनके चरणों में प्रणत हुए। प्रभु गम्भीर कुछ बोले नहीं।

थियेटर हाल में प्रभु—इसके बाद प्रभु बाहर चले। अतुल ने अनुगमन किया परछाईं की तरह वे प्रभु के साथ रहे। कई रास्ते घूमकर प्रभु बिडन स्ट्रीट पर आये। उसी रास्ते पर ग्रैंड नैशनल थियेटर हाल था और उसमें उस दिन विल्वमंगल (सूरदास) का नाटक हो रहा था बन्धु सुन्दर हाल (Hall) में प्रवेश कर सन्मुख के एक आसन पर बैठ गये। अतुल ने भी प्रभु के बगल के आसन पर अधिकार किया। दोनों में कोई वार्तालाप नहीं हुआ।

अभिनय आरम्भ हुआ। विल्वमंगल तैर कर वारांगना चिन्तामणि के घर पहुँचता है। चिन्तामणि विल्वमंगल की अवस्था देखकर उसे भर्त्सना करती है। उसके उपदेश पूर्ण तीव्र भर्त्सना से विल्वमंगल के हृदय में तीव्र वैराग्य का उदय होता है। वह कहते हैं:—

"यही नर देह—पानी में बह जाता है
या शृगाल कुकुर फाड़-फाड़कर खाते हैं
अथवा—चिता पर भस्म हो जाता है
और पवन उसे उड़ाता है ... ...

इस सुन्दर नारी देह का भी यह परिणाम है तो फिर मैंने इस नश्वर संसार में इस क्षण भंगुर देह के पीछे क्यों मर रहा हूँ! इस असार संसार के सार मेरा वह स्वजन कौन है—कहाँ है?"

यही सब कहकर विल्वमंगल विलाप कर रहा है। उसी समय न जाने क्यों इच्छामय बन्धु सुन्दर उठ खड़े हुए। उनके वस्त्रावृत श्री देह से इतनी तीव्र ज्योति निर्गत होने लगी कि स्टेज का प्रकाश भी निष्प्रभ मालूम होने लगा। समागत दर्शक बृन्द के तरफ एक बार मुड़कर देखा। दर्शक बृन्द भी उस समय खड़े हो गये। उसी क्षण बन्धु सुन्दर बाहर निकल आये। परम आश्चर्य यह है कि दर्शक बृन्द भी उनके पीछे-पीछे बाहर निकल पड़े। बन्धु सुन्दर अपने ज्योति को संवरण कर एक किनारे खड़े होकर मृदु मृदु हंस रहे थे और दर्शक बृन्द आपस में "यह क्या देखा" "कहाँ गया" इत्यादि आलोचना करने लगे और इधर उधर देखने लगे। अतुल प्रभु के पास ही खड़े थे। कुछ अभिनेता भी बाहर आगये और कारण का अनुसन्धान करने लगे। अतुल को अपने ऐश्वर्य का एक खेल दिखाकर प्रभु अपने पूर्वोक्त भक्त के घर लौट आये। अतुल भी साथ आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल अतुल शय्या त्याग करते ही प्रभु ने 'हरे कृष्ण' कह कर उन्हें यात्रा करने का इंगित किया।

अतुल का व्रत आरम्भ हुआ। जगन्नाथ घाट से कालोघाट और कालीघाट से जगन्नाथघाट। कितनों ने रोकने की चेष्टा की। किन्तु वीर भक्त का यह व्रत पूर्ण एक वर्ष तक चला। प्रचण्ड ठण्ड, भयंकर ग्रीष्म और भीषण वर्षा कुछ भी अतुल के व्रत भंग करने समर्थ न हुआ। धन्य हो प्रभु ! धन्य तुम्हारे भक्त !!

इसके कुछ दिनों पश्चात् प्रभु ने अतुल को पवना ले जाकर पागल संत हारान के हाथ में समर्पण किया। प्रभु को देखकर पागल आनन्द से आत्महारा होकर बोले—"आ गये जगा ? अच्छा हुआ। साथ कौन है ? ओ अतुल आओ मैं तुम्हें ही सोच रहा था।" अतुल समझ गये कि यह महापुरुष हैं जिनके सम्बन्ध में प्रभु ने चर्चा की थी।

प्रभु बोले—"शिव जी (प्रभु पगले को इसी नाम से सम्बोधन करते थे) इसे तुम ग्रहण करो" शिव (पगले) ने भी उन्हें ग्रहण किया और अतुल को चण्डाल का जूठा भात खाकर आने को कहा। अतुल ने वैसा ही किया।

इस दीक्षा के बाद अतुल ने अपने जीवन के शेष दिन तक कलकत्ते के प्रति मार्ग में और विभिन्न स्थानों में हरिनाम प्रचार कर न जाने कितने पापी-तापिओं को उद्धार किया। वह कुल मान विद्या धन इत्यादियों के अधिकारी थे फिर भी अपनों को तृणादपि क्षुद्र बनकर अपने और दूसरों के उद्धार साधन में अपने जीवन को धन्य किया।

---

(३७)
सुरत कुमारी का कृपा लाभ

कलकत्ता का रामबागान वारांगना (वेश्या) वास स्थान था। सुरत कुमारी नाम की एक वारांगना वहाँ रहती थी। सुरत कुमार बहुत ही रूपवती गुणवती थी। अत्यन्त शुद्ध अंग्रेजी में वह वार्तालाप कर सकती थी। किसी समय वह कोई एक महाराज कुमार के प्रेमपात्री रह चुकी थी और राजकुमार के साथ विलायत भी भ्रमण कर चुकी थी।

इस वारांगना के एक कन्या थी जिसे वह अपने प्राणों से भी ज्यादा चाहती थी। अचानक उस कन्या की अकाल मृत्यु हो गयी। इस दुखद घटना से सुरतकुमारी के हृदय में इतना धक्का पहुँचा कि संसार के भोग विलास में उसको कोई आकर्षण नहीं रहा। वह पागल की तरह शान्ति पाने के लिए इधर उधर साधु संतों के पास जाने लगी।

कलकत्ते के गंगातीर पर सुन्दर जगन्नाथ मन्दिर के वृद्ध महन्त महाराज के उपदेशों से उसे शान्ति मिलती थी अतः वह रोज ही वहाँ जाया करती थी। एक दिन महाराज ने सुरतकुमारी से कहा—"माता जी आप अगले रथयात्रा पर पुरी धाम में जाइए—वहाँ जगन्नाथ प्रभु के दर्शन से आपको

शान्ति मिलेगी । उस उपलक्ष पर पुरी में अनेक साधु संतों का भी आगमन होता है । उनके दर्शन से भी आपके मन की अशान्ति दूर हो जायगी ।" महन्त जी के आदेशानुसार सुरतकुमारी पुरी गई और रथ के ऊपर जगन्नाथ जी के दर्शन से उसके अशान्त मन में विचित्र आनन्द का उदय हुआ । वह किसी पण्डे के घर में एक कमरे को किराये पर लेकर रहने लगी और उसका अधिकांश समय साधु संतों के दर्शन में बीतने लगा । पुरी धाम में 'सिद्ध बकुल' नाम का स्थान बहुत ही प्रसिद्ध है । इस स्थान पर ठाकुर श्री हरिदास भजन साधन करते थे । श्री गौरांग महाप्रभु की लीला की स्मृति से युक्त होकर वह स्थान भक्तों के लिए महातीर्थ बना हुआ है ।

एक दिन श्रीधाम नवद्वीप के बड़े बाबा जी श्रीमद् राधारमण चरण दास जी अनेक भक्तों के साथ 'सिद्ध बकुल' के नीचे भक्ति तत्त्व का उपदेश कर रहे थे । सुरतकुमारी भी थोड़ी ही दूर पर बैठकर मधुर हरिनाम श्रवण कर रही थी । बात ही बात में बाबा जी महाशय बोले—"श्री गौरांग महाप्रभु का पुनराविर्भाव अपनी लीला संगियों के साथ हुआ है । इस बार उन्होंने अपना नाम प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर लिया है । किन्तु बहुत ही गोपनीयता के साथ विराज रहे हैं ।" इस बात को सुनते ही सुरतकुमारी के हृदय में परमानन्द की अनुभूति हुई और इस विषय में अधिक अच्छी तरह जानने की इच्छा प्रबल हुई । भक्तों की भीड़ कुछ कम होने पर उसने बाबा जी के पास जाकर प्रश्न किया—"बाबा जी महाशय ! आप अभी

कह रहे थे कि श्रीगौरांग महाप्रभु प्रभु जगद्बन्धु के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । तो यह कौन जगद्बन्धु हैं ? कलकत्ते के अतुल चम्पटी और नवद्वीपदास जी जिन जगद्बन्धु के भक्त हैं क्या यह जगद्बन्धु वही हैं ?" बाबा जी महाशय ने अपने स्वभाव सिद्ध मधुर वाणी में उत्तर दिया—"हाँ माता जी वही हैं ।"

इस अभिनव वार्त्ता को सुनकर सुरतकुमारी न जाने क्या क्या सोचने लगी । कितने ही विचारों की लहर उसके मन में आने लगी । वह उन दिनों को स्मरण करने लगी—"जिस दिन प्रभु जगद्बन्धु रामबागान के हरि सभा में कीर्तन महोत्सव करने आये थे । वह मेरे गृह द्वार के सामने से गये थे किन्तु मैंने दरवाजा खोलकर एक बार देखा तक नहीं । गम्भीर रात्रि में अतुल हरिनाम से आकाश एवं वायु मण्डल को गुंजरित कर गृह द्वार के सन्मुख से गये किसी दिन भी मैंने नहीं देखा । डोम बस्ती के कीर्तन के महारोल को मैं शोरगुल समझती थी । हाय-हाय आज मैं कहाँ जाकर प्रभु का दर्शन करूं । कौन मुझे रास्ता दिखायेगा ?"

सुरतकुमारी ने पहले स्थिर किया था कि अपना शेष जीवन वह पुरीधाम में बितायेगी किन्तु सिद्ध बकुल के स्थान पर बाबा जी के दिये हुए संवाद ने उसके सिद्धान्त को परिवर्तित कर दिया । वह कलकत्ता वापस आई ।

कलकत्ते में निज गृह में आकर सुरतकुमारी ने रामबागान में अनुसन्धान करके यह पता लगाया कि प्रभु जी श्री वृन्दावन

में हैं। प्रभु जी की सेवादि के लिए कुछ द्रव्य सामग्रियाँ लेकर वह वृन्दावन पहुँची वहाँ पता लगा कि प्रभु जी फरीदपुर वापस चले गये हैं। सुरतकुमारी ने वृन्दावन के श्री गोविन्द जी के सामने प्रणाम कर यह प्रार्थना की कि प्रभु जगद्बन्धु के दर्शनों का लाभ हो। श्री वृन्दावन से कलकत्ता लौटते ही वह फरीदपुर गई। वहाँ पता लगा कि प्रभु पुनर्वार श्री वृन्दावन गये हैं। इसी तरह जब इधर उधर प्रभु की खोज करते हुए भी प्रभु के दर्शन न पा सकी तो वह हताश हो गई। प्रभु इस अधम पतिता को दर्शन नहीं देंगे", यही चिन्ता उसे पागल करने लगी। वह हताश हृदय से कलकत्ते में रह गई। किसी तरह समय व्यतीत होने लगा। अनुसन्धान करते समय अनेक भक्तों के साथ वह परिचित भी हो गई। उनसे प्रभु जी के लीलाओं को श्रवण करने पर दर्शन आकांक्षा और भी वृद्धि पाने लगी किन्तु वह निरुपाय थी। अपने अदृष्ट को धिक्कारती हुई वह कलकत्ते में पड़ी रही। इसके सिवाय और उपाय ही क्या था ?

अचानक एक दिन एक भक्त ने आकर सम्वाद दिया—"माता जी—यदि प्रभु के दर्शन करना चाहती हो तो चलो श्री वृन्दावन, प्रभु वहीं हैं।" सुरतकुमारी बोली—"क्या करने जाऊँगी भाई ? प्रभु मुझ जैसे पापिन को दर्शन नहीं देंगे। मैं नहीं जाऊँगी", भक्त चला गया। उसके जाने के बाद सुरतकुमारी सोचने लगी—"मुझे जाना चाहिये। चेष्टा करने में हर्ज ही क्या है ?" यह सोचकर वह वृन्दावन जा पहुँची और

पगली की तरह वह प्रभु को अनुसन्धान करती हुई इधर उधर दौड़ धूप करने लगी। एक व्रजवासी ने कहा—"प्रभु केशीघाट पर लक्ष्मी रानी के कुंज में अवस्थान कर रहे हैं। सुनते ही सुरतकुमारी प्रेम पागलिनी के तरह लक्ष्मी रानी के कुंज के तरफ दौड़ पड़ी, कुंज में जाकर क्या सुनती है कि प्रभु एक घंटा पहले रघुनन्दन गोस्वामी के राधा माधव कुंज में गये हैं ढूंढते ढूंढते जब वह राधा माधव कुंज में पहुँची तो वहाँ सुनाई पड़ा कि प्रभु वहाँ से कहीं गये हैं। कहाँ गये हैं यह किसी को भी ठीक पता नहीं है। कोई कहता है राधाकुंज, कोई कहता है गोवर्धन में हैं तो कोई कहता है गोविन्द कुण्ड में आ गये हैं।

तीन दिन लगातार सुरतकुमारी ने उन्मादिनी के समान अविराम प्रभु के लिये अनुसन्धान किया किन्तु प्रभु से उसका साक्षात नहीं हुआ। पूरा वृन्दावन उसने छान डाला। किन्तु जहाँ भी जाती है। सुनती है कि प्रभु कुछ ही देर पहले वहाँ से चले गये हैं। सुरतकुमारी आहार निद्रा त्याग कर प्रभु का अनुसन्धान करने लगी। लोगों ने कहना आरम्भ किया कि वह पागल हो गई है।

इसी तरह तीन दिन बीत ही गये। सर्वदा अश्रु जल से वक्षःस्थल भीगा रहता। दीर्घ श्वांस के साथ मुँह से एक ही शब्द निकलता था "हा प्रभु ! हा प्रभु !"

चौथे दिन किसी से पता लगा कि प्रभु केशीघाट पर लक्ष्मी रानी के कुंज में ठहरे हुए हैं। किन्तु हृदय पूर्ण हताश हो चुका था। वह सोचने लगी—"मैं पतिता हूँ। पापिन

हूँ नितान्त भाग्यहीन हूँ। मैं प्रभु के दर्शन के योग्य नहीं हूँ। प्रभु मुझे दर्शन नहीं देना चाहते हैं तभी इस तरह घूम रहे हैं। मेरे अनुसन्धान करने के कारण उन्हें कष्ट हो रहा है।"

सेवा भाग्य—सुरतकुमारी मन ही मन सोचने लगी—"मैं महापापिन हूँ, मैं अब प्रभु को और कष्ट न दूँगी, दर्शन लालसा से प्रभु के निकट नहीं जाऊँगी। अगर मुझ पर उनकी कृपा होगी तो वह आप ही मुझे दर्शन देंगे। नहीं तो मेरे भाग्य में दर्शन नहीं हैं। अब दूर रहकर उनकी सेवा करने का सौभाग्य पाने की चेष्टा करूँगी। यदि वह मेरी सेवा ग्रहण करते हैं तो मैं अपने को धन्य मानूँगी। यह सब सोच कर उसने अपने प्रभु के दर्शन करने की चेष्टा छोड़ दी और अनुसन्धान करने लगी कि प्रभु की सेवा करने के लिए कोई है या नहीं। पता लगा कि नवद्वीपदास जी साथ हैं। सुरत ने नवद्वीप दास के साथ साक्षात कर प्रभु की सेवा के लिये लाया हुआ द्रव्यादि उसके पास दे दिया। नवद्वीप दास से उसे यह भी पता लगा कि प्रभु की नित्य सेवा में क्या क्या द्रव्य लगता है। प्रभु क्या क्या पसन्द करते हैं और वह रोज ही उन द्रव्यों को देने लगी। पतित पावन प्रभु भी सुरत कुमारी की प्रेम-भक्ति से दिया हुआ द्रव्यों को सादर ग्रहण करने लगे और ग्रहण न करते तो क्या करते। भगवान ने अर्जुन से आप ही कहा है :—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः॥

(पत्र पुष्प फल और जल जो भी द्रव्य मुझे भक्ति के साथ दिया जाता है मैं उन भक्ति मिश्रित उपहारों को ग्रहण करता हूँ)।

सुरत कुमारी के प्रेम भक्ति से प्रभु मुग्ध हो गये। भक्त के सेवा करने की लालसा भगवान को भी लोभी बना देती है। प्रभु नवद्वीप दास जी के माध्यम से सुरतकुमारी से नाना द्रव्य मांगने लगे। "प्रभु ने मुझ से मांगा है" यह जानकर सुरत-कुमारी आनन्द से आत्महारा हो जाती थी। कभी अपने हाथ से बनाकर, कभी बाजार से खरीद कर प्रभु की सेवा में भेजती थी। इधर प्रभु को दर्शन करने की लालसा भी वृद्धि पाने लगी और मन ही मन प्रभु को दर्शन देने के लिए प्रार्थना करने लगी। किन्तु इस भय से कि प्रभु स्थान त्याग न कर दें किसी से कुछ कहने का भी साहस न करती थी।

स्वप्न भाग्य—सुरत कुमारी स्वप्न में प्रभु के दर्शन करने लगी। एक दिन उसने स्वप्न देखा कि एक परम ज्योतिर्मय पुरुष जमुना के किसी घाट को अपने देह ज्योति से उज्ज्वल कर स्नान कर रहे हैं और सुरत जमुना जी में पानी भरने जाकर उस अपरूप रूप का दर्शन कर रही है। उस अपरूप रूप ने पूरे घाट को उद्भासित कर रक्खा है। सुरतकुमारी के नयनों से अविरल धारा में अश्रु वर्षण हो रहा है। स्वप्न टूटने पर वह देखती है कि नयनाश्रु से शय्या भीग गई है। स्वप्न भंग से वह दुःखित होकर रोने लगी।

दूसरे दिन उसने स्वप्न में देखा कि एक प्रशस्तपथ पर से एक विराट पुरुष चले आ रहे हैं। उस पुरुष के सर्वांग वस्त्र

से आच्छादित हैं। वक्ष की ओर से श्री मुख का कुछ अंश और वक्षःस्थल का कियदंश दिखाई पड़ रहा है। सुरतकुमारी देखकर कहने लगी—"वह प्रभु जा रहे हैं। वह प्रभु जा रहे हैं—वह प्रभु जा रहे हैं"। इतने में उसका स्वप्न टूट गया। किन्तु दो तीन दिन तक वह बराबर "वह प्रभु हैं, वह प्रभु हैं" रटती रही।

आज सुरु ने देख लिया—सुरतकुमारी परमसुन्दरी थी और स्वभाव से लज्जाशीला थी इसलिए वह किसी निर्जन घाट पर नहाने जाती थी। एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में वह नहा रही थी उसने देखा कि वाहकों के कन्धों पर एक पालकी आई और पालकी को पानी में आधा डुबोया गया।

इस तरह का स्नान सुरत ने अपने जीवन में कभी नहीं किया था। उसने सोचा कि शायद किसी बड़े घराने की पर्दा-नशीन औरत इसी तरह यमुना जी नहाने आई है। उस औरत के रूप और गहनों को देखने के लिए सुरत कुमारी उत्सुक हो उठी और पालकी के निकट गई।

पालकी का दरवाजा खुलने पर सुरत देखती है कि एक अपूर्व ज्योतिर्मय पुरुष दोनों हाथों से जमुना जल उठाकर अपने सिर पर डाल रहे हैं। उस पुरुष के रूप की प्रभा ने सुरतकुमारी के मन को स्निग्ध और शीतल कर दिया। कुछ ही समय बाद पालकी चली गई किन्तु साथ ही साथ सुरत-कुमारी के मन प्राण भी लेती गई।

सुरत शीघ्र ही स्नान समापन कर घर लौट आई और प्रभु की सेवा की सामग्रियां बनाने में तन्मय हो गई। उसके मन में आनन्द की धारा बहने लगी।

इधर श्री श्रीबन्धु सुन्दर स्नान समापन कर कुञ्ज में वापस आये और नवद्वीप दास से बोले—"अरे नवा, आज सुरत ने मुझे देख लिया है।" नवद्वीप दास प्रभु को सेवा की सामग्रियाँ लाने के लिये सुरतकुमारी के गृह पर गये और उससे बोले—"दीदी, आज प्रातःकाल तुमने प्रभु जी को देख लिया है?" नहीं तो! "सुरत आश्चर्य चकित हो गई—"यह आपसे किसने कहा?"

नवद्वीप हंस कर बोले—"हाँ, जी हाँ, प्रभु जी पालकी पर जमुना गये थे। लौट कर मुझ से बोले—'आज सुरु ने मुझे देख लिया है," सुरतकुमारी को समझने में देर न लगी कि पालकी के अपूर्व रूपवान ज्योतिर्मय पुरुष ही प्रभु जी थे। वह मन ही मन पश्चात्ताप करने लगी कि अच्छी तरह क्यों नहीं देखा।

"हाय इतने पास पाकर भी मैंने अच्छी तरह से प्रभु जी को क्यों नहीं देखा?" वह दुखित मन से सोचने लगी—मैंने उन्हे आत्मनिवेदन क्यों नहीं किया? हाय! हाय!! क्या वह सौभाग्य फिर होगा"। वह अपना सिर पीट पीट कर रोने लगी।

आज भी देखा है:—सुरतकुमारी अपने को भूल गई। खाने पीने का वेश भूषा का कोई ठीक न था। किसी समय

वह विख्यात विलासिनी थी किन्तु इस समय उसकी अवस्था दूसरी ही थी, व्रज के पथ पर वह पगली की तरह घूमती थी। अस्त व्यस्त पोशाक, तैलहीन केश, पूर्ण भिखारिन जैसी लगती थी।

जिन रास्तों में अधिक जनता रहती थी वह उस रास्ते को छोड़कर गलियों से चलती फिरती थी। अपने ही मन से नाचती थी, गाती थी, हँसती थी, रोती थी, जय प्रभु जय प्रभु रटा करती थी। उसे दर्शन देने के भय से प्रभु चले जायेंगे यह सोचकर वह प्रभु के दर्शन करने की चेष्टामात्र भी नहीं करती थी। उस दिन वह एक गन्दी तंग गली से जा रही थी। वह गली इतनी गन्दी थी कि कोई भी उस से नहीं जाता था। हठात् सामने एक अभावनीय दृश्य, स्वप्न में भी नहीं, [illegible] देवता का दर्शन ! एक सुदीर्घनयन मनोहारी [illegible] पट्टवस्त्र से आवृत, परिधान में भी पट्टवस्त्र, केवल [illegible] चम्पककलि सदृश अंगुलियाँ दृष्टिगोचर हो रही [illegible] वाम श्रीहस्त की भी अंगुलियाँ दिखाई दे रही थीं। [illegible] हाथ में कमण्डलु। इस कारण दाहिना श्रीहस्त कलाई तक दृष्टि गोचर हो रहा था। आकर्ण विस्तृत चक्षुओं को छोड़ सारा श्रीमुखमण्डल वस्त्रावृत।

सुरतकुमारी ने केवल आकर्ण विस्तृत कमललोचनों को और रक्त कमल सदृश श्री कर और श्री चरणों को देखा। श्री अंग की ज्योति वस्त्र को भेद कर प्रकाशित हो रही थी। उन कमललोचनों से सुरतकुमारी की आँखें मिलने पर

सुरतकुमारी ससंकोच एक तरफ हट गई। पुरुषसुन्दर भी खञ्जन की तरह चले गये। यद्यपि सुरत यह न समझ सकी कि उसने किसे देखा किन्तु अपूर्व पुलक से उसका शरीर रोमांचित होगया और आँखें भर आईं।

सुरत अपने वासस्थान पर लौटकर हतचेतन हो पड़ रही। नवद्वीपदास बाबाजी रोज की तरह उस दिन भी आये। वह "सुरु दीदी, सुरु दीदी" कहकर बुलाने लगे। उनकी आवाज से सुरतकुमारी की संज्ञा लौट आई। नवद्वीप ने कहा—"सुरु दीदी, प्रभु ने मुझसे आज कहा—सुरु ने आज भी मुझे देखा है।"

उस समय सुरत समझ गई कि गली पथ पर जिनका दर्शन हुआ था वह प्रभु ही थे। प्राण के प्राण, बन्धु सुन्दर। वह रोने लगी, रोते रोते बोली—"हाय, हाय कितनी मन्द-भागिनी हूँ। मैं प्रभु जी के दर्शन पाकर भी न जान सकी। उनके श्रीचरणों को हृदय में धारण न कर सकी। उनके रूपसुधा का आस्वादन भी न कर सकी। मैं नितान्त ही हतभागिनी हूँ इसलिये कि रत्न पाकर भी मैं न रख सकी।"

प्रभु मेरे श्री गौरांग हैं:—एक दिन सुरतकुमारी प्रभु के वासगृह के सन्मुख के बरामदे को साफ कर रही थी। इतने में प्रभु की खिड़की में से एक टुकड़ा कागज उसके पास आ-गिरा। उठाकर देखती है कि उसमें 'तुम रोज सेवा का जल लाना' लिखा है। पढ़कर सुरत के आनन्द की सीमा न रही। प्रभु ने स्वयं सेवा माँगी है इससे अधिक जीवन की सार्थकता

और क्या चाहिए। बरामदे में से बटोरी हुई पदधूलि को उठाकर सुरत ने अपने मस्तक और हृदय पर धारण कर लिया। इससे उसके हृदय की तीव्र दर्शनलालसा और सन्ताप कुछ कम प्रतीत होने लगे।

वह पानी भरा हुआ घड़ा उठाकर वहन करने में अनभ्यस्त थी किन्तु सेवा करने की आकांक्षा से उसे शक्ति मिली और वह रोज पानी पहुँचाने लगी। प्रभु की आज्ञा पालन करना ही उसने अपने जीवन का व्रत बना लिया।

एक दिन सुरत जमुना जी से पानी लाकर प्रभु के कमरे के सामने आई और घड़े को उतारने लगी कि प्रभु का दरवाजा खुल गया। सुरत समझी कि प्रभु ने कमरे के भीतर घड़ा रखने को इंगित किया है। उसने भीतर जाने की इच्छा से आँखें उठाईं। किन्तु आँखें उठाते ही जो कुछ उसके दृष्टिगोचर हुआ उससे वह चकित होकर दो कदम पीछे हट गई।

उसने देखा कि सामने बन्धु सुन्दर खड़े हैं। दरवाजे से भी ज्यादा ऊँचा, दरवाजे से भी अधिक प्रशस्त ऊपर की चौखट से श्री मुख का कुछ अंश आवृत, वक्षःस्थल का कियदंश दिखाई पड़ रहा है। उससे चांद की चाँदनी की तरह स्निग्ध ज्योति प्रकाशित हो रही है। सुरत सर्वांग पुलकित हो उठी। आनन्द के आधिक्य के कारण वह कांपने लगी। आँखों से जो कुछ दिखाई पड़ा उसने अपने हृदयपट पर अंकित कर लिया। पुनः पुनः मुँह से कहने लगी। "गौरांग! गौरांग! सोने का गौरांग!

धीरे धीरे दरवाजा बन्द हो गया। अपने को प्रकृतिस्थ कर घर लौटने में सुरत को देरी हो गई। शरीर मन पर विद्युत क्रिया का प्रभाव अनुभव करने लगी। उसकी सारी चेष्टाओं का अन्त हो गया। जिसको पाने से समस्त आकांक्षाओं से निवृत्ति होती है सुरत को वही मिल गया। विरहाग्नि से तप्त मरु हृदय में भक्ति यमुना के प्लावन ने आकर उसे स्निग्ध शीतल कर दिया। परम प्राप्ति से आकांक्षा की निवृत्ति होकर मन को निश्चेष्ट कर दिया।

इसके कुछ दिन पश्चात बन्धु सुन्दर बंगाल को लौट गये। सुरत कुमारी भी कलकत्ता लौट आई।

बन्धु सुन्दर के प्रत्यावर्त्तन की वार्ता सुनकर भक्तों ने उनके रहने की विशेष व्यवस्था की। प्रभु जी के विधान के अनुसार गोमय और गंगाजल द्वारा घर परिशुद्ध किया गया। किन्तु लीलामय बन्धु सुन्दर उस स्थान पर न जाकर गये सुरत कुमारी के दूसरे मकान में जिसे किराये पर दिया जाता था। एक भक्त द्वारा प्राप्त संवाद पर पहले तो सुरत ने विश्वास नहीं किया। कारण वह जानती थी कि प्रभु जहाँ तहाँ नहीं ठहरते हैं और प्रभु जी के विशिष्ट भक्तों ने एक उत्तम वासस्थान की व्यवस्था कर रक्खी है। दूसरे क्षण ही उसने सोचा कि हो भी सकता है क्योंकि लीलामय प्रभु जी की स्वतन्त्र इच्छा से सभी कुछ सम्भव है। वह उस मकान की तरफ दौड़ पड़ी। रास्ते में उसके शरीर पर की रेशमी चादर गिर गई किन्तु वह इतनी तन्मय थी कि जान भी न

सकी। मकान में प्रवेश करते ही प्रभु जी के अंगगंध से वह समझ गई कि प्रभु जी कमरे में है। किन्तु कमरे का ताला बन्द था। वह कुछ समझ न सकी। प्रभु जी का आदेश था कि यद्यदि वह भीतर से बन्द करलें तथापि बाहर से ताला बन्द होगा। भक्त बाहर से ताला बन्द करके किसी काम से कहीं गये हैं। सुरत के मन में हठात विचार आया कि प्रभु जी को भूख लगी होगी। वह तत्क्षण बाजार दौड़ी और उसने नई थाली खरीद कर तरह तरह के फल मिठाइयाँ और शरबत बनाने के लिए सामग्रियाँ लाकर, जल्दी जल्दी शरबत बनाकर और खाद्य द्रव्यों के साथ दरवाजे के एक अंश से खाद्यों की थाली और शर्बत के गिलास भीतर बढ़ा दिये। बाहर सुरत को शब्दों से मालूम हुआ कि प्रभु आहार्य ग्रहण कर रहे हैं। इसी तरह की स्वाभाविक सेवाबुद्धि सुरत कुमारी में थी।

भक्तों ने आकर जब दरवाजा खोला तो प्रभु के इंगित से बुलाई गई सुरतकुमारी ने आनन्दविह्वल होकर भीतर प्रवेश किया और साष्टांग प्रभु को प्रणाम करने लगी। प्रभु जी ने पादुका समेत श्रीचरणों का सुरत के मस्तक पर स्पर्श किया। सुरत बोली—प्रभु जी अगर आपने इतनी ही कृपा की है तो पादुका खोलकर चरणकमलों का स्पर्श दीजिए।" प्रभु ने उत्तर दिया—"इतने ही में तुम्हारी यमयातना नहीं रहेगी"। अपने जीवन के शेष दिन तक सुरत कुमारी ने इतने नियम निष्ठा के साथ और सदाचारी बनकर जीवन यापन किया कि

एकान्त निष्ठावान ब्राह्मण वैष्णव भी उसे स्पर्श करने का साहस नहीं करते थे। बन्धु हरि के भजन साधन ही उसके जीवन का एक मात्र कार्य था। प्रभु जी की सेवा के लिए वह अनातुर अर्थव्यय करती थी। अपना बहुमूल्य वासगृह भी प्रभु जी के आश्रम स्थापन करने के लिए उसने दे दिया।

वर्त्तमान "महाउद्धारण मठ" नाम के कलकत्ते के ५९ नं० माणिक तला मेन रोड के आश्रम में रह कर त्यागी भक्त मिलकर श्री श्री प्रभु के अभिप्रेत कार्य—श्री हरिनाम महानाम प्रचार, लीला ग्रन्थादि प्रकाशन और प्रचार और प्रभु की नित्य सेवा—इन सब कार्यों को करते हुए नियम निष्ठा के साथ श्री श्री प्रभु जी के भुवन मंगल कार्य कर रहे हैं।

जय जगद्बन्धु हरि! जय बन्धु भक्त! जै महानाम!

---

(३८)

श्रीधाम नवद्वीप में प्रभु बन्धु और श्री श्रीहरिसभा

बहुत दिन पहले नवद्वीप में एक घटना घटी। आजकल जहाँ पर नवद्वीप हरि सभा स्थापित है वहाँ पर पण्डित मथुरानाथ पदरत्न का सुविख्यात संस्कृत विद्यालय था। अब यह हरिसभा नवद्वीप में सुविख्यात है।

जिस समय यहाँ चतुष्पाठी था उस समय कहीं से एक पागल आकर उपस्थित हुआ और पाठशाला के सामने के एक विशाल वृक्ष के नीचे ठहरा। उसका पहनावा एक मैला चिथड़ा और कन्धे पर एक झोला। वार्त्तालाप असंलग्न। चालचलन भी अद्भुत था। रात बारह बजे के बाद वह चिल्लाना शुरू करता था। उसके चिल्लाने से चतुष्पाठी के छात्रों और पड़ोस के रहने वालों की निद्रा में विघ्न होता था।

पागल केवल एक ही बात कह कह कर चिल्लाता था। "मेरी ठाकुर जी की मूर्ति को किसने लिया? दो मूर्ति में से एक को किसने चुराया?" बार बार वह यही कहकर चिल्लाता था। प्रभात में फिर कहता—"जिसने लिया था वह दे गया है, लौटा गया है।" पगला रोज ही सन्ध्या के बाद आता है और प्रभात में चला जाता है। दिन में वह कहाँ रहता किसी को नहीं मालूम।

पड़ोस वाले चतुष्पाठी के छात्रों के ऊपर दोषारोप करते कि उन्हीं लोगों ने पगले का सामान चुराया होगा या किसी प्रकार से तंग किया होगा—नहीं तो पगला चिल्लाता क्यों है?" यह बात मथुरानाथ के कानों में भी पड़ी। मुहल्ले वालों ने उनसे प्रार्थना की कि वे अपने छात्रों से कह दें कि पगले को तंग न किया करें। मथुरानाथ ने भी अपने छात्रों को मनाकर दिया यद्यपि छात्रों ने कहा कि उन लोगों ने पगले का कुछ नहीं लिया है।

मथुरानाथ ने मन में ठान लिया कि इस बात का अनुसन्धान करना होगा और वह पाठशाला में ही रह गये। रात के बारह बजे पगला चिल्लाने लगा—"मेरे ठाकुर किसने चुराये?" मथुरानाथ शय्या त्याग कर पगले के पास गये और उससे पूछा—तुम कौन हो? पगले ने उत्तर दिया—"मैं पागल हूँ" मथुरानाथ ने प्रश्न किया—"तुम्हारा नाम क्या है?" मेरा नाम? पगले ने उत्तर दिया—"मेरा नाम निहालदास।"

'तुम चिल्ला क्यों रहे हो?"

"मेरा ठाकुर किस ने चुरा लिया है"

"कैसा ठाकुर है तुम्हारा?"

मथुरानाथ के इस प्रश्न पर पगले ने अपना झोला आगे बढ़ाया और बोला—"देखो" मथुरानाथ ने झोले के भीतर हाथ डाला तो पगले ने मना किया और बोला बाहर से दबा दबा

कर देखो—"मथुरानाथ ने अनुभव किया कि भीतर केवल एक मूर्त्ति है और कोई वस्तु नहीं है। मथुरानाथ ने प्रश्न किया—"क्या प्रमाण है कि तुम्हारे पास दो मूर्त्तियाँ थी?" "सुबह होने तक रहो" पगले ने हँसकर कहा—"तुम्हें प्रमाण मिल जायगा। तुम देखोगे कि चोर ठाकुर दे गया है।

मथुरानाथ बैठे रहे। पगले का हाव भाव, चाल चलन, बोलने का ढंग, आकृति प्रकृति उन्हें कुछ अद्भुत सा जान पड़ा। ब्राह्ममुहूर्त में पगले ने मथुरानाथ को झोला को बाहर से दिखाया। मथुरानाथ ने अनुभव किया कि भीतर दो मूर्तियाँ हैं। मथुरानाथ की समझ में कुछ नहीं आया। "चोर मेरे ठाकुर को दे गया है" कहते कहते पगला चला गया।

दिन में दो रात में एक—दूसरे दिन रात में भी मथुरानाथ चतुष्पाठी में रहे और पागल के पास जाकर बैठ गये। पगले ने मथुरानाथ को दिखाया कि झोले में दो मूर्त्तियाँ हैं। पगले ने कहा—"मथुरा, इन दो मूर्त्तियों में से एक हैं नन्दनन्दन और दूसरी वृषभानु राजा की बेटी। सारे दिन दोनों मिलकर खेलते रहते हैं—कभी रात्रि में दोनों विलासविवर्त्त में एक हो जाते हैं। इस नवद्वीप के शची दुलाल गौरांग महाप्रभु का रूप धारण कर लेते हैं। यह लोग दिन में दो, रात में एक।"

पगले के मुँह से ठाकुर की चोरी होने का रहस्य सुनकर मथुरानाथ परम आनन्दित हुए। सारी रात पगले के पास बैठकर अनेक सुगंभीर रहस्य पूर्ण तत्त्वपूर्ण उपदेशों

का श्रवण करते रहे और अन्त में वह पगले के पास गौर मन्त्र से दीक्षित हुए।

प्रभात में जाते समय पगले ने मथुरानाथ से कहा—"मथुरा" मैं तुम्हारे लिए यहाँ आया था। अब जा रहा हूँ। शीघ्र नहीं लौटूँगा। तुम्हारे घर में हरिसभा की स्थापना होगी। गौर हरि का आसन होगा। मैं बाद में आकर यह युगल मूर्त्ति तुम्हें दे जाऊँगा। तुम्हारे यहाँ नवयुग के नव गौरांग आवेंगे। उनका नाम होगा "जगद्बन्धु" हरिसभा उनकी लीलाभूमि होगी।"

इस घटना के बाद मथुरानाथ सम्पूर्ण परिवर्त्तित हो गये। कठोर न्यायशास्त्र के पण्डित अब गौर हरि के परमभक्त बन गये। उस दिन से अधिकांश समय भक्तसंग में कीर्त्तन करते करते बीतता है। चतुष्पाठी के छात्रों को पढ़ाने में उनका मन नहीं लगता है। मथुरानाथ के इस परिवर्त्तन का संवाद उनके पिता व्रजनाथ विद्यारत्न को मिला और वे अत्यन्त दुखित हुए।

व्रजनाथ पुत्र को उपदेश देने के लिए चतुष्पाठी में आये। वह क्या देखते हैं कि पुत्र श्री चैतन्य चरितामृत का तन्मयता के साथ अध्ययन कर रहा है और उसके नयनों से अश्रुवर्षण हो रहा है। अपने पुत्र की अवस्था देखकर वह अत्यन्त खिन्न हुए और कहने लगे—"बेटा, इतने दिन शास्त्र का अध्ययन कर तुम चतुष्पाठी के अध्यापक बने हो। आखिर तुम्हें ऐसी दुर्बुद्धि कैसे हो गई? तुम वैरागियों द्वारा सादा बंगला में लिखी हुई

वह पोथी पाठ कर रहे हो जिसे छूने मात्र से ही हाथ धोने की आवश्यकता पड़ती है ? संस्कृतसाहित्य के रत्नभण्डार में तुम्हें पढ़ने के लिए कोई ग्रन्थ ही न मिला ? तुम्हारे इस अधःपतन में लज्जा से गडा जा रहा हूँ। पण्डितसमाज में तुमने मेरी नाक कटवा दी है। तुम से मैं अनुरोध करता हूँ कि तुम यह कार्य त्याग दो। पितृपितामह के पवित्र शास्त्र के अध्ययन और अध्यापन में मनःसंयोग करो। फिर से पहले जैसे बनो।"

मथुरानाथ अत्यन्त पितृभक्त थे। वृद्ध पिता के तिरस्कार ने उसके हृदय में धक्का पहुँचाया—कातर होकर वह बोले—"पिताजी, मैं यथासाध्य आपका आदेश पालन करूँगा", किन्तु कहने में और करने में बहुत अन्तर है। वैष्णव बाबाजियों के अमृतमय संगति और पाठ-कीर्त्तन नहीं छोड़ सके ऐसा कौन है कि जो आध्यात्मिक खाद्य पाकर भी त्याग दे।

एक दिन अधिक रात्रि बीते व्रजनाथ गृह प्रत्यावर्त्तन कर रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक कीर्त्तन की टोली को देखा जो कीर्त्तन करती जा रही थी। व्रजनाथ को यह सब तो पसन्द था ही नहीं बल्कि वह घृणा करते थे। पुत्र मथुरानाथ उस टोली में है या नहीं देखने के लिये वह एक किनारे खड़े हो गये और टोली के प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी तरह से जांच करने लगे।

व्रजनाथ ने देखा कि टोली के बीच में एक अपूर्वदर्शन ज्योतिर्मय बालक बाहु उठाकर कीर्त्तन के साथ साथ नृत्य

कर रहा है। उसका नर्त्तन का ढंग भी अनन्य साधारण था। व्रजनाथ विस्फारित नेत्रों से देखने लगे। देखते देखते कीर्त्तन की टोली बहुत दूर चली गई। कीर्त्तन की ध्वनि व्रजनाथ के कानों में अमृत वर्षा कर रही थी। व्रजनाथ स्वप्न में भी कभी यह चिन्ता नहीं करते थे कि कीर्त्तन इतना मधुर हो सकता है। उसी दिन उन्होंने पहली बार इस बात का अनुभव किया।

व्रजनाथ वहीं खड़े खड़े सोचने लगे—"यह लोग कौन थे ? इनमें से किसी को भी तो मैंने नहीं पहचाना। रास्ते में इतना अंधकार है किन्तु इन लोगों के प्रत्येक के मुँह को मैंने साफ साफ कैसे देखा और कीर्त्तनमध्य में नर्त्तनशील उस बालक का अपूर्व रूपराशि तो अनुमान—कल्पना से भी अधिक है—मानो उसी के अंगच्छटा के प्रकाश से मुझे प्रत्येक व्यक्ति साफ साफ दिखाई पड़ा। यह बालक कौन है जिसके शरीर में इतना तेज, रूप मे इतना लावण्य, नृत्य में इतनी माधुरी ? यह बालक कौन है ?"

सोचते सोचते वह घर पहुँचे। नौकर महेश को देखकर प्रश्न किया—"महेश, यह कीर्त्तन टोली कहाँ की है ?" "कहाँ कीर्त्तन मालिक" महेश आश्चर्यान्वित हो गया। व्रजनाथ और कुछ न कह कर भीतर चले गये किन्तु चिन्ताभार मन में समान रूप में रहा—"तो क्या यह सब अलौकिक था ?" व्रजनाथ तन्मय होकर सोच रहे थे।

इतने में कीर्त्तन के मध्यस्थित परम रूपवान तेजोमय नर्त्तनशील बालक उसके सामने आगया और अपरूप-नृत्य ढंग

से खड़े होकर बोला—'व्रजनाथ मुझे देख लो—अच्छी तरह से देखो, मथुरानाथ की चतुष्पाठी में हरिसभा की स्थापना करो और मुझे वहाँ प्रतिष्ठित करो। बिहारी कुम्हार मेरी मूर्त्ति बना देगा। "मैं ही शचीनन्दन श्री गौरांग हूँ।" बालक चला गया। व्रजनाथ संज्ञाशून्य होकर भूमि पर गिर पड़े।

---

(३९)

कुम्भकार बिहारी और प्रभु बन्धु

दूसरे दिन प्रातःकाल व्रजनाथ बिहारी कुम्हार के घर पहुँचे और बिहारी से बोले—"बिहारी तुम्हें श्री गौरांग की एक मूर्ति बनानी होगी। मैं तुम्हें जिस प्रकार बताऊँगा उसी प्रकार की मूर्ति तुम्हें बनाना होगी।" बिहारी व्रजनाथ को प्रणाम करके बोला—"पण्डित जी मैं केवल मट्टी के बर्तन ही बनाता हूं मैंने तो कभी मूर्ति नहीं बनाई है।" "तुम्हें बनानी ही होगी, ऐसा ही आदेश हुआ है" कहकर व्रजनाथ चले गये।

बिहारी बहुत ही चिन्ता में पड़ गया। जो काम उसने कभी नहीं किया उसे वह कैसे कर सकेगा? पण्डित जी ने तो उससे कहा कि आदेश हुआ है किन्तु वह श्री गौरांग की मूर्ति किस रूप में बनाए? वह यह सब सोच ही रहा था कि एक अपरूप रूपवान गौरवर्ण बालक उसके सामने आया और उससे सम्बोधन करके कहने लगा—"बिहारी तुम्हारे पास व्रजनाथ पण्डित ने भेजा है। तुम्हें श्री गौरांग मूर्ति बनानी होगा। वह मूर्ति ठीक मेरी ही तरह होगी, मेरे ही नाप से। तुम सुतली लेकर मुझे नाप लो।" बिहारी मन्त्रमुग्ध की

तरह सुतली लाकर बालक के सर्व देह का नाप लेने लगा। बालक ने दोनों बाहुओं को ऊपर उठाकर और चरणों की एक विशिष्ट भंगिमा करके बोला—"देख लो बिहारी—इसी तरह उर्ध्वबाहु होगा—चरणों की भंगिमा भी इस तरह का होगी।" बिहारी मन:प्राण भर के उन अपरूप भंगिमाओं को देख रहा था।

"बिहारी मुझे बहुत भूख लगी है, तुम्हारे घर में लाई है?" "हां हां निश्चय ही है—मैं ला रहा हूँ" बिहारी घर के भीतर से लाई लेकर जब बाहर आया तो बालक अदृश्य था।" अरे कहाँ गया—कहाँ गया वह?" कहते कहते बिहारी उसी अवस्था में रोते रोते व्रजनाथ पण्डित के घर दौड़ा—वहाँ पहुंच कर व्रजनाथ पण्डित से प्रश्न किया—"पण्डित जी जिस बालक को आपने मेरे पास भेजा था वह कहां है?" मैंने तो किसी को तुम्हारे पास नहीं भेजा था। "पण्डित जी अवाक् हो गये, बात क्या है?" बिहारी ने रोते रोते सब बात कह दी। व्रजनाथ बिहारी को आलिंगन में बांध कर आप भी रोने लगे।

इसके कुछ पश्चात् बिहारी ने एक अति ही मनोरथ श्री गौरांग मूर्ति बना दी। मथुरानाथ के आनन्द की सीमा न थी। उसके गुरु निहाल पगले का बात सत्य हुई। शास्त्र विधि के अनुसार व्रजनाथ विद्यारत्न ने श्री गौरांग मूर्ति का अभिषेक कर उसकी स्थापना की—श्री हरिसभा की प्रतिष्ठा हुई। सारा दिन महोत्सव हुआ।

उपस्थित सभी व्यक्तियों को प्रसाद मिलने के पश्चात् व्रजनाथ के प्रसाद पाने का समय हुआ। कोई अतिथि भुभुक्त हैं कि नहीं यह देखने के लिए वह इधर उधर देखने लगे। इतने में उनकी दृष्टि एक वृक्ष के सहारे खड़े बिहारी पर पड़ी—"चलो बिहारी प्रसाद लेते चलो" कहकर ज्योंही उन्होंने बिहारी का हाथ पकड़ कर खींचा बिहारी का निष्प्राण देह भूमि पर लुढ़क गया। इस घटना ने सभी के मन में महाविस्मय का संचार किया।

इस रहस्य के समझने में असमर्थ व्रजनाथ ने बिहारी के और्ध्वदैहिक कार्य का सम्पादन किया। श्री गौरांग मूर्ति के निर्माता को महाप्रभु ने अपनी नित्यलीला में प्रविष्ट कर लिया।

सारे नवद्वीप के पण्डितसमाजों में व्रजनाथ और पुत्र मथुरानाथ की निन्दा होने लगी। श्री गौरांगबहिर्मुख पण्डितों ने कहना आरम्भ किया कि श्री गौरांग का पूजनसाधन शास्त्र के विरुद्ध है। शास्त्रों को जानकर भी व्रजनाथ ने इस कुकर्म को किया उसका परिणाम भी हाथों हाथ मिल गया। बिहारी कुम्हार तो उसी दिन चल बसा।

समाज ने सपुत्र व्रजनाथ से अपना सम्बन्धविच्छेद कर लिया किन्तु इसके लिए वह ज़रा भी चिन्तित न हुए। उन्होंने श्रीगौरांग की कृपाशक्ति से अनेक शास्त्रीय प्रमाणों को उद्धृत करके और सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार और युक्ति द्वारा श्री गौरसुन्दर के भगवत्त्व को प्रमाणित कर 'श्री चैतन्यचन्द्रोदय' नामक

एक महाग्रन्थ की रचना की जिसने विरोधी पण्डितसमाज को स्तब्ध कर दिया ।

हरिसभा में नव गौराङ्गः—श्री श्री हरिसभा की स्थापना के बहुत दिन बाद पागल निहाल आकर प्रिय शिष्य मथुरानाथ को वही रहस्यमय युगल विग्रह मूर्ति दे गये और कह गये "मथुरानाथ इस स्थान पर नव गौरांग अपने पार्षदों को लेकर आवेंगे और नाना प्रकार की लीला होगी ।"

मथुरानाथ वृद्ध हो गये । पुत्र शितिकण्ठ के ऊपर गौर-सुन्दर की सेवा का भार था । शितिकण्ठ अनन्य प्रेम से सेवाकार्य करते । उस दिन मंगलारति हो गयी थी । प्रभातसूर्य की रंगीन किरणों का प्रकाश मन्दिर के ऊपर आया ही था कि ऐसे समय एक स्वर्णाभ पुरुष धीरे धीरे आया । उसका सर्वांग शुभ्र वस्त्रों से आवृत था । वह आते ही मन्दिर में प्रविष्ट हुआ और द्वार बन्द कर लिए ।

शितिकण्ठ बगीचे में फूल ले रहे थे । जभी उन्होंने देखा कि किसी ने मन्दिर में प्रवेश करके द्वार बन्द कर लिए हैं वह दौड़ कर आये, दरवाजा खटखटाकर कहने लगे—"मन्दिर में कौन है ? द्वार खोलो ।" बहुत देर तक अनुनय करने के पश्चात् भीतर से सुमधुर ध्वनि में सुनाई पड़ा—"मैं तुम्हारा बन्धु हूँ ।" श्रवणरसायन कण्ठध्वनि से शितिकण्ठ मुग्ध हो गये । परम अनुनय के साथ वह बोले—"आप जो भी हों द्वार खोलिये—कृपा कर द्वार खोलिये ।" अत्यन्त अनुनय के पश्चात् द्वार थोड़ा सा खुला और शितिकण्ठ को अन्दर आने के लिए

कहा । शितिकण्ठ भीतर गये । बहुत देर तक द्वार बन्द रहा । अन्तर्यामी और अन्तरंग भक्त में मिलकर क्या क्या बातें हुईं भक्त के क्या क्या तरंगें उठीं कौन जान सकता है ?

बहुत देर बाद शितिकण्ठ बाहर आये, मुखमण्डल गम्भीर, नयन स्थिर, हृदय उद्वेलित, जीवन धन्य ।

शितिकण्ठ ने पिता के पास जाकर संक्षेप में सम्पूर्ण संवाद दिया । कहते कहते ज्योंही कहा कि 'जो मन्दिर में आये हैं उनका नाम जगद्बन्धु" त्योंही मथुरानाथ चमक उठे, गुरु निहाल के अभ्रान्त वाक्य का स्मरण हुआ । "हा गौर—हा जगद्बन्धु" पिता ने पुत्र का आलिंगन किया । पिता पुत्र धन्य हो गये । उसके बाद प्रभु की लीलाओं की तरंगे उठने लगीं । भाग्यवानों ने लीला तरगों में डुबकी लगाकर अपने अपने जीवन को धन्य किया ।

वर्तमान हरिसभा में श्री गौरांग मूर्ति के बगल में श्री बन्धु की सुन्दर मूर्ति भी स्थापित है और एकनिष्ठ त्यागी भक्तगण वहाँ के सेवा कार्य का परिचालन कर रहे हैं ।

---

(४०)
आविर्भाव धाम में पदार्पण

बहरमपुर (मुर्शिदाबाद) निवासी श्री हरिचरणदास जी एक प्रवीण भक्त और कीर्त्तन के सुगायक थे। वह बन्धुहरि और अनेक भक्तों के साथ प्रभु जी के आविर्भाव धाम डाहापाड़ा में आते थे। उन्होंने अपने शब्दों में बन्धुहरि की लीला के विषय में जो कुछ कहा है वह निम्न प्रकार है:—

प्रभु बहरमपुर आये। पूर्ण स्वतन्त्र थे। बड़ी बड़ी दो नाव लेकर हम लोग ६०/७० जने मिलकर भागीरथी वक्ष पर कीर्त्तन करते हुए जा रहे थे। प्रभु जी की नाव में उनके साथ परम भक्त चम्पटी जी एवं और दो एक भक्त थे। दोपहर के २ बजे नाव डाहापाड़ा के बाधा घाट पर पहुँच गयी। नाव से उतर कर हम लोग कीर्त्तन करते करते डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के रास्ते से आविर्भाव धाम में उपस्थित हुए। प्रभु जी कीर्त्तन सम्प्रदाय के साथ अपने जन्मस्थान और अनार के पेड़ की चार बार परिक्रमा कर वस्त्रावृत अवस्था में एक स्थान पर खड़े हो गये। हम लोग उनके चारों तरफ घूम घूमकर कीर्त्तन करने लगे।

कीर्त्तन समाप्त होने पर हम लोगों ने प्रभु जी के आदेश के अनुसार एक पीतल के लोटे को रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी

एकन्नी, पैसा इत्यादि से भर कर उस अनार के पेड़ के तले गाड़ दिया। उसके बाद राज बुलाकर उस पर एक तुलसी मञ्च तैयार करवाया गया। उसमें तुलसीवृक्षरोपण किया गया। प्रभु जी अंगुली निर्देश से स्थान दिखाकर बोले—"यही मेरा जन्मस्थान है।"

तुलसी मंच की परिक्रमा कर कीर्त्तन हुआ। प्रभु जी के भोगराग और भक्तों को प्रसाद पाते पाते सन्ध्या हो गई। उस गांव के एक गृह में प्रभु जी विश्राम करने लगे। हम लोग एक दूसरे गृह में बन्धुलीलाचर्चा करने लगे। प्रभु जी के दर्शन के लिए मेरा मन व्याकुल हो उठा। प्रभु जी के दर्शन का उन्हें निषेध था। उनका निषेध अमान्य करना महा-पातक का काम होगा। किन्तु मेरा मन नहीं माना। सबके अनजाने मैंने चुपचाप प्रभुजी के अवस्थान गृह के पास जाकर देखा कि एक खिड़की का एक अंग टूटा हुआ है। उस टूटे अंग के भीतर से मैंने प्रभुजी के दर्शन किये। मैंने क्या देखा उसको प्रकट करने की भाषा नहीं है। उस रूप-सागर में शायद स्वयं सृष्टिकर्त्ता भी अपने को खो बैठता। मैंने देखा कि प्रभुजी आँखें बन्द करके पद्मासन लगाकर बैठे हैं। शरीर अनावृत है। उनकी अंगज्योति से बन्द गृह आलोकित हो रहा है। आकर्ण विस्तृत नयन, विशाल आजानु–लम्बित बाहु उस भुवनमुग्धकारी रूप का वर्णन असम्भव है। मैं केवल दो चार सेकेण्ड तक ही देख सका। उसके बाद मेरी आँखें बन्द हो गईं और देखने का सामर्थ्य न रहा। मैं उस समय

की अवस्था का वर्णन नहीं कर सकता। कुछ समय के लिए मेरी बहिर्जगत की स्मृति लोप हो गयी। अन्तर बाहर केवल उसी भुवनमुग्धकारी रूप ने मुझे आच्छन्न कर रक्खा था। केवल मन में यही सोच रहा था कि यह कौन है? मनुष्य में तो ऐसा रूप दुर्लभ है।

राघाघाट के निवासी जगदीश बाबू ने जब मुझसे पूछा कि मैंने क्या दर्शन किया तो मैं पर्याप्त समय तक उत्तर न दे सका। मेरे शरीर की सम्पूर्ण इन्द्रियों की बोधशक्ति लोप हो गई थी। कुछ समय के पश्चात् जब मैं इस योग्य हुआ कि बोल सकूँ तो मैंने कहा—"जाइए आप भी मेरी ही तरह चोरी चोरी दर्शन करके अपने जन्म को सफल कीजिए। इसमें कोई अपराध नहीं होगा। नयन मन सार्थक हो जायगा।"

मेरे कहने से जगदीश बाबू भी दर्शन कर आये और उन्हें भी मेरी तरह अवस्था प्राप्त हुई। इस दर्शन से वे इतने आनन्दित हुए कि उस रात के कीर्त्तन में वे मुझे ही उठाकर नृत्य करने लगे।

ग्रन्थादि के पाठ से और वैष्णव महाजनों के कीर्त्तनों को श्रवण करने से मैंने सुना था कि महाप्रभु श्री श्री गौरांग सुन्दर का देहवर्ण स्वर्ण समान था किन्तु इस विषय का अनुभव नहीं था, इसको कविकल्पना ही समझता था। किन्तु श्री श्री जगद्बन्धु सुन्दर की देहकान्ति का दर्शन करके मेरी भ्रान्ति चिरकाल के लिये दूर हो गयी। अगर स्थिर होकर कोई आधा घण्टा तक उनके दर्शन कर सका तो वही उस

रूप और कान्ति का वर्णन कर सकता है। दो चार सेकेण्ड के दर्शन का मैं क्या वर्णन करूँ !!!

चम्पटी महाशय की प्रार्थना से प्रभु जी वस्त्रावृत-होकर बरामदे में आकर बैठे और बोले—"सर्वदा हरिनाम कीर्तन करो और साधु संगत करो। इससे इहलोक और परलोक दोनों में ही मंगल होगा। संसारयात्रा निर्वाह करते समय यदि हरिभक्तसंग नहीं करते हो तो सर्वदा दुःखी रहोगे। बालक वृद्ध युवा नारी सभी के लिए हरिनामसंकीर्तन आवश्यक कर्त्तव्य है। उस नाम को कभी न भूलना।" प्रभुजी के सुमधुर शब्द जिस किसी ने भी एक बार सुने वह कभी भूल न सका। आज तक मेरे कानों में प्रभुजी के सुमधुर कण्ठस्वर और शब्द प्रतिध्वनित हो रहे हैं। वैष्णवकवि का अनुभव सत्य है—"कानेर भीतर दिया मरमे पशिलो गो आकुल करिलो मोर प्राण।" (कानों के द्वारा हृदय में पहुँच गया और मेरे प्राणों को आकुल कर दिया)।

---

(४१)

प्रभु बन्धु का झूला उत्सव

एक बार और प्रभु जी झूलन उत्सव के समय भक्त श्री किशोरी चक्रवर्त्ती को साथ लेकर आविर्भाव धाम डाहापाडा आये थे। प्रभु जी की डेढ़ वर्ष की आयु में उनकी माता का देहान्त हुआ था और शिशु प्रभु जी को फ़रीदपुर जाना पड़ा था। सात वर्ष की आयु के समय उनके पिता श्री दीनानाथ भी इस धराधाम का त्याग कर गये। डाहापाड़ा में उनका स्वजन कोई नहीं था। किन्तु फिर भी वह बार बार डाहा-पाड़ा में आते हैं। किन्तु क्यों ? यह चिन्ता का विषय है— अनुभव करने का विषय है।

जन्मस्थान पर उनका बहुत ही आकर्षण था। मानो सर्वदा वह जन्मस्थान को लक्ष्य कर रहे हैं। जिस प्रकार देह को छोड़कर देही नहीं रह सकता उसी प्रकार धाम को छोड़कर प्रभु भी नहीं रह सकते। परन्तु व्यवहार में प्रत्यक्ष जिस समय वह कहीं दूरस्थान में रहते हैं। उस समय भी उनकी आत्मिक उपस्थिति धाम में रहती है।

"वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति"

यह उनकी शक्ति का प्रभाव है।

परम भक्त किशोरी को साथ लेकर प्रभु श्री धाम में आये हैं। लीलामय की लीला कौन समझेगा ? जीवशिक्षा के लिए और प्रेम आस्वादन के लिए भगवान को लीला का प्रयोजन है। श्री धाम की शोभा अतुलनीय है प्राकृत सृष्टि में भी इस शोभा की तुलना नहीं है।

गोलोक पुरी के समग्र वैभव के द्वार श्री धाम की रचना करने के पश्चात् प्रभुजी अवतीर्ण हुए हैं। फिर शोभा क्यों नहीं होगी ? श्रावण का महीना—भागीरथी अपने दोनों कूलों को प्लावित कर प्रवाहित हो रही हैं। केली, कदम्ब, ताल, तमाल, बकुल, नीम, बिल्व, पीपल कितने ही प्रकार के वृक्ष अपनी हरियाली की शोभा का विस्तार कर रहे हैं।

भागीरथी के दोनों तीरवर्त्ती देव मन्दिरों में शंख, घंटा, कांसर, मृदंग, मजीरा इत्यादि बज रहे हैं। श्री राधाकृष्ण का हिन्दोल उत्सव है।

किशोरी ने प्रभुजी की तरफ देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रभुजी में किसी नवीन भाव का उदय हुआ है। भाव के ठाकुर प्रभुजी इधर उधर देख रहे हैं मानो किसी वस्तु की खोज कर रहे हैं। न जाने आज कौन सी लीला का अभिनय होगा। चारों तरफ लीला-उद्दीपन-कारी अनुकूल भाव। हिन्दोल उत्सव की मधुर वाद्य ध्वनि ने प्रभु को अपनी पूर्व लीला के भाव से आकुल कर दिया है। प्रभुजी के लिए स्थिर रहना असम्भव हो गया था।

किशोरी का परम भाग्य उपस्थित हुआ। आज किशोरी को अभिनव लीला के रसास्वादन करने का सौभाग्य मिला है।

किशोरी को प्रभु दिखायेंगे कि प्रभुजी ही अभिन्न राधाकृष्ण तत्त्व हैं। आज प्रभु के भगवद्भाव का खेल है। आज प्रभु झूलन लीला करेंगे। प्रभु की कृपा से किशोरी के हृदय में भी उसी भाव का स्फुरण हुआ। किशोरी प्रभु जी के मन की इच्छा को स्पष्ट समझ गये। शीघ्र ही उन्होंने सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी। निकटवर्त्ती ग्राम के वृक्ष की शाखा से यथायथ झूला रचना की गई। प्रभु बन्धु अपने अपरूप रूपच्छटा का विकिरण करते हुए झूला झूलने लगे।

किशोरी आत्म विस्मृत हो गये। लीला रस के आस्वादन से वह उन्मत्त हो गये। उन्हें बन्धु किशोर में किशोर-किशोरी के दर्शन हुए। प्रभु हेमदण्डतुल्य बाहुयुगल द्वारा दोनों तरफ की रस्सियों को पकड़कर बैठे हैं। उनकी अंगज्योति ने चारों तरफ के वृक्ष व लताओं को एक स्निग्ध स्वर्णिम रंग में रंगीन कर दिया है, बन्धु के मुखचन्द्रमा की शोभा अपूर्व दीख रही है।

प्रभुजी अपने आप भूल रहे हैं या किशोरी भुला रहे हैं। आत्मविस्मृत किशोरी को अनुभव नहीं था। इस अपूर्व लीला का दर्शन केवल भक्तवर किशोरी और वृक्ष लताओं ने किया।

प्रभुजी ने स्वीय धाम, भगवत्ता और धाममाधुर्य का प्रकाश करने के हेतु ही धाम में आकर इस माधुर्य लीला का अभिनय किया। इस बार प्रभु श्री धाम में जितने दिन ठहरे बालक की तरह आहारादि किया और चले फिरे।

धन्य भगवान–धन्य भक्त !

---

(४२)

ढाका नगरी में प्रभुजी की विचित्र लीला

"ढाका धाम–ढाका हरिनाम की राजधानी है"

बन्धु वाणी

प्रभु जी ने अपने स्वरचित त्रिकाल ग्रन्थ में ढाका को ढाका धाम और हरिनाम की राजधानी के नामों से अभिहित किया है। लीलामय का लीलारहस्य समझना सहज नहीं है। देवताओं को भी असाध्य है तो मनुष्यों का क्या कहना ! धाम शब्द का अर्थ है पुण्यक्षेत्र या प्रेमभक्ति का स्थान और वह स्थान श्री भगवान के लीलाक्षेत्र को कहा जाता है। हरिनाम की राजधानी का अर्थ–(राजधानी अर्थात् राज्य का केन्द्र) जिस स्थान को केन्द्र करके हरिनाम का प्रचार होगा।

वर्तमान ढाका पूर्वी पाकिस्तान की राजधानी है। कोई भी नाम प्रभु के किसी ग्रन्थ में भी पाकिस्तान या हिन्दुस्तान के नाम से आलोचित नहीं हुआ है। प्रभु जी ने भारतवर्ष की स्वाधीनता के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ में लिखा है कि रक्तपात के विना भारत स्वाधीन होगा। इस बात से सम्पूर्ण भारतवर्ष

को ही समझा जाता है। खण्डित भारतवर्ष नहीं। वर्तमान भारत खण्डित भारत है। किन्तु कौन कह सकता है कि ऐसा ही रह जायगा। जिस प्रभु ने यह कहा है—"हरिनाम प्रेम से पृथ्वी टलमल करेगी। चार महादेशों में समान रूप से धर्म सस्थापन होगा", उसी प्रभु ने जब कहा है कि "ढाका हरिनाम की राजधानी होगी" तो निश्चय ही वहाँ प्रेम भक्ति का पूर्ण आसन होगा और उस स्थान को केन्द्र करके हरिनाम प्रचार होगा। जिस भारतवर्ष को अदूर भविष्य में धर्म कर्म इत्यादि में पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ आसन लेना होगा—सब देशों का आदर्श बन कर पूर्ण मर्यादा प्राप्त करनी होगी—वही भारतवर्ष खण्डित होकर हिंसा द्वेष का वास नहीं रह सकता। जो भी हो—क्या होगा या नहीं होगा उसका प्रमाण भविष्य ही देगा। जगत शुद्धि के प्रयोजन से, प्रेम राज्य संस्थापन के लिए, हिंसा या संकीर्णता का ध्वंस करने के लिए, साम्य भाव की सृष्टि करने के लिए प्रभुजी की इस अवस्था के उद्भव का प्रयोजन हुआ है। आंधी के पश्चात् वातावरण निस्तब्ध हो जाता है या शान्ति आ जाती है, बादल हट जाने के पश्चात् ही चांद दिखाई देता है। केवल सुसमय की अपेक्षा है—समय आने पर ऐसा कोई उपाय निकलेगा ही जिसके द्वारा यह हिंसा-द्वेष को भावना मनुष्यों के हृदय से नष्ट की जा सकेगी। भारतवर्ष श्री श्री प्रभु की आविर्भाव भूमि—अहिंसा, प्रेम, मैत्री का देश है। इस देश में हिंसा को कोई स्थान नहीं है—हिंसा की सामयिक भावनायें वर्जित होंगी ही।

नवाब साहब की स्पेशल ट्रेन में प्रभु जी का ढाका गमन

श्री श्री प्रभुजी फरीदपुर से अपने प्रिय भक्त रमेशचन्द्र चक्रवर्ती के साथ ढाका जा रहे थे। फरीदपुर शहर के उप-कण्ठ में पद्मा नदी के किनारे 'टेपाखोला' स्टीमर स्टेशन। उस दिन ढाका के नवाब बहादुर जनाब सलीमुल्ला साहब अपने साथ बेगमों और पार्षदों को लेकर उपस्थित थे—नवाब बहादुर के यूरोपियन मैनेजर मिस्टर जी० एल० गर्थ भी साथ थे। स्टीमर की प्रथम और द्वितीय श्रेणी नवाब साहब के लिए 'रिजर्व' थी। प्रभुजी अपने भक्त के साथ स्टीमर में उठकर आव-रण में छिपे रहे। जब तक वह स्वयं अपने को प्रकाशित नहीं करते है तब तक उन्हें कौन देख सकता है या समझ सकता है?

स्टीमर नारायणगंज घाट पर पहुंच गई। नवाब बहादुर की स्पेशल ट्रेन खड़ी थी। नवाब बहादुर अपनी बेगमों के साथ ट्रेन पर सवार होंगे। इसकी व्यवस्था होने लगी। ट्रेन में गलीचा बिछाया गया। दोनों तरफ पर्दों को लगाया गया साधारण यात्रियों की तरह वे नहीं थे। उन्हें तो समय लगेगा ही। इसी समय प्रभुजी अपने भक्त के साथ स्पेशल ट्रेन में नवाब साहब के स्पेशल कमरे में जाकर बैठ गये। इच्छामय स्वतन्त्र ईश्वर को कौन निषेध करेगा? बाधा कौन देगा?

नवाब बहादुर की दृष्टि जब स्पेशल ट्रेन पर पड़ी तो उन्होंने देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष गाड़ी में बैठा है। रूप देखकर नवाब साहब की आँखें मानों चौंधिया गयीं। ससम्भ्रम

होकर नवाब साहब ने व्यवस्था की कि स्पेशल ट्रेन स्पेशल आरोही लेकर ढाका जायगी। नवाब बहादुर परवर्ती लोकल ट्रेन से ढाका जायेंगे। स्पेशल ट्रेन प्रभु बन्धु को लेकर रवाना हो गई। उधर फुलवाड़ी स्टेशन सुसज्जित किया गया था। स्टेशन कर्मचारी सन्त्रस्त थे। नवाब बहादुर आ रहे हैं। स्टेशन के बाहर नवाब साहब की खास घोड़ागाड़ी खड़ी थी नवाब साहब की प्रतीक्षा में। सब की दृष्टि बचाकर प्रभुजी अपने भक्त के साथ गाड़ी से उतरे और नवाब साहब की घोड़ा गाड़ी में बैठ गये। प्रभुजी के बैठते ही घोड़ा चल पड़ा। कोचवान भूताविष्ट की तरह बैठे रह गये। गाड़ी टिकाटुली के राम साहू की बगान बाड़ी के सामने रुक गई।

राम साहू ने अपनी बगान बाड़ी में श्री राधामाधव जी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने के लिए एक बहुत हो सुन्दर मन्दिर बनवाया था। प्रभुबन्धु ने अपने भक्त के साथ मन्दिर में प्रवेश किया। भाग्यवान राम साहू बन्धु हरि की कृपा से प्रभुजी में राधामाधव जी के प्रकाश का अनुभव करके उनकी सेवा में तत्पर हुए और प्रभु जी के भक्त बन गये। उसी समय से जभी प्रभुजी ढाका जाते थे तो उसी मन्दिर में अवस्थान करते थे।

उस मन्दिर के सामने जब दो मोर आकर नृत्य करने लगते तो देखा गया कि नृत्य आरम्भ होने के दो तीन दिन बाद प्रभु पहुंचते ही थे। अतः मोर का आना और नृत्य करना वहाँ की जनता प्रभु के आगमन का इंगित समझती थी।

इसका एक रहस्य और है कि ढाका में मोर नहीं था। न जाने कहाँ से दो मोर आ जाते थे। उस बगान बाड़ी में प्रभुजी के रहते समय वे नित्य रात्रिकाल मन्दिर के सन्मुख तालाब के चारों ओर भ्रमण करते थे। उनके श्री मुखमण्डल से विकीर्ण ज्योति आसपास के लोगों के मन में चांद का भ्रम उपस्थित कर देती थी और वे कहते थे प्रभु जगद्‌बन्धु के आने से तालाब के चारों ओर चांद घूमता रहता है।

---

(४३)

डा० उषारञ्जन मजुमदार को कृपा लाभ

डा० मजुमदार (Gold medalist) Dacca Mitford Medical School के Anatomy के demonstrator थे। ढाका शहर में डाक्टर के रूप में उनका बड़ा सुनाम था। उन दिनों में M.B. और specialist बहुत ही इनेगिने थे। एक L.M.F. डाक्टर की भी अच्छी practice होती थी।

डा० उषारञ्जन के परिवार में कई पुरुष पहले से ही ब्राह्म धर्म में दीक्षित थे। अवतारवाद या हरिनाम प्रेम धर्म में उनको आस्था नहीं थी। उस समय के ब्राह्मतावलम्बी वैष्णव धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। परम दुख का विषय यह है कि आज भी इस देश में दूसरे के धर्म को सहन करने की भावना नहीं है। केवल उचित अधिकारी साधु सन्यासियों पर यह बात लागू नहीं है।

उस समय सुधन्व सरकार नाम के एक युवक मिटफोर्ड स्कूल में पढ़ते थे। यह युवक प्रभु बन्धु के अत्यन्त कृपापात्र थे। प्रभु के नाम प्रेम से वह इतने मुग्ध थे कि स्कूल की पढ़ाई में भी मन नहीं लगा सकते थे। Anatomy के डिसेक्शन में

डा० मजुमदार उनको प्रायः ही डांटते थे। कोई प्रश्न पूछने पर सुधन्व कहता था—"कि मैं आज पढ़ नहीं सका।" रोज वही एक बात। डा० मजुमदार को किसी प्रकार से यह मालूम हो गया था कि सुधन्व पढ़ना लिखना छोड़कर "जय जगद्बन्धु हरिबोल" कीर्तन में तन्मय रहते हैं और इस कारण डा० मजुमदार उसे Stupid, nonsense इत्यादि विशेषणों से विभूषित करते रहते थे और कहते थे—जगद्बन्धु तुम्हें परीक्षा में पास करा देगा ?" किन्तु छुट्टी के बाद सुधन्व फिर कीर्तन में पहुँच जाते थे।

एक दिन, ढाका में अवस्थान करते समय, प्रभु जी सम्पूर्ण नग्नदेह होकर मन्दिर के बरामदे पर आये और एड़ी के सहारे बैठकर बोले—"शीघ्र डाक्टर लाओ; मेरा शरीर साठ हजार व्याधि युक्त है।" और वह इस तरह से छटपटाने लगे जैसे कि उनसे रोगयन्त्रणा बरदाश्त नहीं हो रही है। सुधन्व मेडिकल स्कूल के छात्र थे इस कारण वही डाक्टर बुलाने गये।

ढाका शहर में डाक्टरों की कोई कमी नहीं थी किन्तु उस दिन सुधन्व जिस डाक्टर के पास गये वे किसी न किसी कारण से नहीं आ सके। अतः सुधन्व डा० मजुमदार के घर की तरफ चले। उनके पास जाने की कोई इच्छा नहीं थी क्योंकि डाक्टर साहब नित्य पढ़ाई के कारण सुधन्व को डांटते थे, फटकारते थे। किन्तु प्रभुजी अस्वस्थ थे इस समय उनको अपना अपमान तुच्छ सा लगा। डाक्टर साहब के पास पहुँचते ही डाक्टर साहब ने पूछा—"अरे सुधन्व क्या बात है ?"

सुधन्व बोला—"Sir, प्रभुजी बीमार हैं। आपको एकबार जाना होगा।" डाक्टर साहब प्रभुजी के नाम से परिचित थे क्योंकि प्रभुजी के ढाका जाने से शहर में हलचल मच जाती थी। वैसे तो बहुत कुछ सुनते रहते थे लेकित वह ब्राह्ममतावलम्बी होने के कारण प्रभुजी के बारे में अनुसन्धान करने का प्रयोजन नहीं समझते थे। वह उपहास करते हुए बोले—"जाओ उनके कानों के निकट 'जय जगद्बन्धु बोल, हरि बोल' का नारा लगाओ, वह अच्छे हो जायेंगे।" किन्तु सुधन्व रोते रोते कहने लगा—"Sir मैं आपके पावों पड़ रहा हूँ, आप एक बार चलें" डाक्टर साहब राजी हो गये और अपने डाक्टरी के सामान को लेकर सुधन्व की लाई हुई गाड़ी पर चढ़कर रवाना हो गये।

गाड़ी राम साहू के बगान बाड़ी के फाटक के सामने जाकर रुक गई। डाक्टर साहब उतरकर प्रभुजी के पास चले। प्रभुजी बरामदे में नंगे शरीर बैठे थे। डाक्टर साहब को देखते ही बोले—'डाक्टर साहब मेरे शरीर में साठ हजार व्याधियों ने आश्रय लिया है Diarrhoea, Dysentry, Pox कालाज्वर Pneumonia और न जाने कितने हैं शीघ्र कोई दवा दीजिए।" डाक्टर साहब ने प्रभुजी की नब्ज देखी तो कोई स्पन्दन नहीं मिला। स्टेथिस्कोप लगाकर हृदय के स्पन्दन को देखा तो हृदय स्पन्दनरहित !! इधर प्रभुजी पुनः पुनः कह रहे है कि उनको बहुत कष्ट हो रहा है। कोई अच्छी दवाई का बन्दोवस्त होना चाहिए !!! डाक्टर साहब स्तम्भित थे कि जिस मरीज की नब्ज नहीं मिल रही है, हृदयस्पन्दन नहीं है वह बोल कैसे रहे हैं। डाक्टर साहब बोले—"सुधन्व बहुत ही आश्चर्य की बात है कि 'पल्स नहीं है', 'हार्ट बीट' नहीं है और मरीज बोल रहा है !!! चिकित्साशास्त्र में ऐसा न कभी पढ़ा, न सुना न देखा है।"

प्रभुजी के श्री अंग के स्पर्श और बुलवाने के साथ साथ ही डाक्टर साहब का मन और बुद्धि न जाने कैसी हो गयी। बाहर आकर सुधन्व से बोले—"सुधन्व यह बीमार नहीं। वह इच्छा से ऐसा कर रहे हैं तो मैं दवा क्या दूँ? तुम एक बोतल 'सिरप' लाकर रक्खो। कभी कभी दवा के तौर उसे ही पिला देना।"

डाक्टर साहब प्रभु जी को प्रणाम करके चले गये किन्तु उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उनका मन प्रभुजी के पास ही रह गया। सर्वदा उनके मन में एक ही चिन्ता रहने लगी "मैंने क्या देखा! किसी मनुष्य से तो कभी इस तरह बोलते नहीं सुना। शरीर स्पर्श करते हो मेरा शरीर पता नहीं कैसा हो गया। क्यों?"

सुधन्व के साथ भी डाक्टर साहब का व्यवहार बदल गया और बहुत ही सद्व्यवहार करने लगे। अवतारवाद और भक्तिधर्म के ऊपर भी उनको विश्वास आने लगा।

इसी तरह कुछ दिन बीते। एक दिन डाक्टर साहब सुधन्व को बुलाकर बोले—"सुधन्व! मेरे वृद्ध चाचा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है उनकी अवस्था से प्रतीत होता है कि वह

अब ज्यादा दिन इस पृथ्वी पर नहीं रहेंगे। तुम उन्हें किसी दिन कीर्तन सुना दो।" सुधन्व बहुत ही खुश हुआ दो चार साथी लेकर रोगी को श्री श्री प्रभुजी के रचित कीर्तन सुनाने लगा। रोगी को भी इससे बहुत ही आनन्द मिला। वह भी साथ साथ बोलने लगे–'बोलो निताई गौर–बोलो निताई गौर", यह सुनकर डाक्टर साहब के परिवार के सब लोग कहने लगे–"तुम लोग कीर्तन बन्द करो नहीं तो निताई गौर, कहते कहते रोगी का हार्ट फेल हो जायगा।" कीर्तन करने वाले क्या करते–फिर उनके मास्टर साहब का घर है–रसभंग होने पर भी उन्होंने कीर्तन बन्द कर दिया। कीर्तन तो रुक गया किन्तु रोगी और जोर से चिल्लाने लगा–"बोलो निताई गौर बोलो निताई गौर" इससे परिवार वाले और भी घबड़ा गये और कीर्तन वालों से बोले–"तुम लोग फिर से कीर्तन आरम्भ करो–कीर्तन के समय तो यह धीरे धीरे बोल रहे थे किन्तु अब तो चिल्ला रहे हैं।" सुधन्व तो कीर्तन समाप्त कर अपना दल लेकर चला गया और रोगी ने "निताई गौर" कहते कहते प्राण त्याग दिए। इससे डाक्टर के हृदय में दुःख के साथ एक अद्भुत आनन्द भी हुआ। चाचाजी ने श्री नाम कहते कहते देह त्याग किया है–उनकी सद्गति तो सुनिश्चित है।

डाक्टर ने ब्राह्मउपासनामन्दिर में जाना बन्द कर दिया। वह प्रभुजी का नामकीर्तन करने लगे–कभी कभी प्रभुजी के मन्दिर में भी जाते भक्तों की संगत करने के लिए।

हिन्दू धर्म जैसा मृतक आत्मा की शान्ति के लिए श्राद्ध आदि करने का विधान ब्राह्मसमाज में नहीं है किन्तु आत्मा के शान्तिविधान के लिए प्रार्थना निवेदन किया जाता है, और आचार्यों की उपस्थिति में यह कार्य होता है। निर्दिष्ट दिन के दो दिन पहले डाक्टर साहब सुधन्व को बुलाकर बोले–"सुधन्व! तुम दो चार भक्त संगी लेकर उस दिन (निर्दिष्ट दिन) मेरे घर आकर कीर्तन करना और तुम भोजन भी घर करना।

सुधन्व का आनन्द सीमा पार गया। वह पहले दिन से भी ज्यादा भक्त लेकर डाक्टर साहब के घर पहुँचा अपने साथ श्री श्री प्रभुजी की एक श्री मूर्ति भी लेता गया। मकान की बैठक में प्रभुजी के सामने आसन लगाकर परमानन्द के साथ प्रभुजी के नाम का कीर्तन करने लगे।

ब्राह्म गृह के उत्सव में स्वभावतः उसी मत के आदमी निमन्त्रित थे। सब आ रहे थे किन्तु गृहप्रवेश के साथ साथ कीर्तन की आवाज से वे नाराज होने लगे और आपस में कहने लगे–"यह सब क्या है। हमारे धर्म मत के विरुद्ध यह सब क्यों हो रहा है?" वे नाक भौं सिकोड़ कर, कानों पर हाथ रखकर किसी तरह भीतर गये किन्तु डाक्टर मजुमदार के प्रखर व्यक्तित्व के सामने वे कुछ बोलने का साहस न कर सके।

मृदंग मजीरा बजाकर प्रबल उत्साह के साथ कीर्तन हो रहा था उसी समय ब्राह्मधर्म के तीन आचार्य पधारे। उन्होंने कानों पर तो हाथ नहीं दिए किन्तु पास रक्खी हुई कुर्सियों पर

बैठकर देखने लगे कि माजरा क्या है। नाम प्रभाव से वे भी मस्त हो गये और कीर्तन करते हुए नाचने लगे। जो लोग नाक भौं सिकोड़ कर चले गये थे उन्होंने अचम्भे के साथ यह सब देखा और उनमें से भी कोई कोई कीर्तनानन्द में मिल गये।

बहुत देर बाद कीर्तन समाप्त हुआ। आचार्यों ने कुछ देर सुस्ताने के बाद पूछा -आप लोग "जय जगद्बन्धु हरिबोल" कहकर कीर्तन कर रहे थे—यह जगद्बन्धु कौन हैं ?

सुधन्व ने उत्तर दिया—"फरीदपुर के प्रभु जगद्बन्धु"। आचार्यों में से प्रवीण भुवनमोहनसेन महाशय बोले—"जगत को मैंने नहीं पहिचाना। मैं जब फरीदपुर जिला स्कूल का हेड मास्टर था उस समय एक घटना घट गई थी। जगद्बन्धु उसी स्कूल में छात्र था उसकी स्वतन्त्रता को मैंने देखा था। कभी कभी वह किसी तरफ एक दृष्टि से देखता रहता था। किसी के साथ बातें तक नहीं करता था। एक दिन परीक्षा के 'हाल' में वह एक तरफ देख रहा था। हम लोगों ने परीक्षा केन्द्र से निकाल दिया था। वह चुपचाप बाहर चला गया। फिर उसका कोई पता नहीं मिला। उस स्कूल में उसने पढ़ना ही छोड़ दिया।"

डाक्टर के घर में कीर्तन के बाद डाक्टर साहब को प्रभुजी के विशिष्ट भक्तों में आसन मिला। उनकी निद्रा जागरण सर्वावस्था में उनके हृदय में प्रभुजी के आसन अटूट बना रहा। और एक बार एक विशेष घटना घटी। प्रभुजी ढाका के राम-साहू के बगान बाड़ी में अवस्थान कर रहे थे। एक दिन प्रिय

भक्त रमेशचन्द्र से बोले—"रमेश, एक बार डाक्टर को बुला ले आओ। बोलना कि आने पर दो एक बातें होंगी। तुम जाकर देखोगे कि वह खाने बैठे हैं।"

वहाँ से डाक्टर साहब का घर तीन मील बंशल में था। भक्त रमेश डाक्टर साहब के घर जाकर देखा कि डाक्टर खाने बैठे हैं। प्रभुजी के आदेश सुनते ही डाक्टर रमेश के साथ रवाना हो गये।

डाक्टर के आने का संबाद पाते ही प्रभुजी ने दरवाजा खोल दिया और कहा—"डाक्टर बाबू एक बार मुझे देखिये—मेरा 'लीवर' डेढ़ मन का हो गया है—Spleen (तिल्ली) प्लीहा एक मन का हो गया है।" डाक्टर ने प्रभुजी का 'हार्ट' 'पल्स' जांचकर देखा कि कोई स्पन्दन नहीं है। तो बोले—"प्रभुजी आपको अच्छी तरह से जांच करना होगा। समस्त अंग प्रत्यंग देखना होगा।"

प्रभुजी अपने वस्त्र खोलकर सम्पूर्ण नग्नदेह होकर लेट गये। डाक्टर साहब ने जांचना आरम्भ किया। Heart और Spleen का कोई पता नहीं मिला। Liver का heapatic sound नहीं मिला। Intestine आंत का tympanic sound नहीं मालूम पड़ता है कि प्रभुजी ने कभी भोजन नहीं किया है। Organ of generation तीन महीने के बच्चे की तरह है। सुडौल शरीर—अपूर्व अंग कान्ति—डाक्टर साहब के लिए देखना मुश्किल हो गया। तब प्रभुजी बोले—"डाक्टर बाबू देख रहे हैं ? यह शरीर 'एमिवा'—का है। Spleen एक

मन का और 'लीवर' डेढ़ मन का हो गया था। अब अच्छा हो गया है। डाक्टर बाबू ! पृथ्वी में धर्म नहीं है। पार्थिव सभी वस्तु को धर्म का आस्वादन कराना होगा। मेरा आना (अवतार होना) उसी लिए ही है। 'केल्ट' मुझे बाधा दे रहा है। यह देखिए मेरे दांत के ऊपर पहाड़ गिरा दिया था। मेरा दांत टूट गया है।

जब प्रभुजी की जांच करके डाक्टर साहब चले जारहे थे उस समय प्रभुजी बोले—"मैं आपको धर्म लिख देता हूँ" प्रभुजी ने एक टुकड़ा कागज में कुछ लिखकर डाक्टर बाबू को दे दिया। परवर्त्ती काल में डाक्टर बाबू ने कहा था—"न जाने प्रभुजो ने क्या लिखा था न तो रमेश बाबू ही समझे, न मैं ही समझा।"

डाक्टर बाबू को सम्पूर्ण आत्म परिचय देना ही प्रभुजी का उद्देश्य था। इसी कारण प्रभुजी ने इस व्याधि लीला का अवतारण किया।

कुछ दिन तक डाक्टर बाबू के घर से प्रभुजी को भोग भेजा जाता था। एक दिन डाक्टर बाबू की स्त्री जब प्रभुजी के लिये भोग बना रही थी उस समय उनकी शिशु कन्या वहाँ उपस्थित हो गई। भोग बनाते समय कन्या की उपस्थित कर्म में बाधा डालने लगी। क्रोधित होकर वह बोली—यह लड़की मरती भी नहीं। देखती नहीं कि मैं प्रभुजी के लिए भोग बना रही हूँ जो बाधा दे रही है?" डाक्टर साहब ने कहा है कि प्रभुजी उस दिन भोग ग्रहण नहीं किये थे।

एक दिन डाक्टर बाबू के मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि वह प्रभुजी को एक जोड़ा 'रबर' के पादुका देगें। उसने सारा शहर छान डाला किन्तु प्रभुजी के चरणों के परिमाप अनुसार कोई पादुका नहीं मिली तो अन्दाजिया साइज के एक जोड़ा पादुका खरीदकर प्रभुजी के पास चले।

प्रभुजी के पास जाते ही प्रभुजी ने उनके हाथ से पादुका लेकर पहन लिए और आश्चर्ययुक्त होकर डाक्टर साहब ने देखा कि पादुका प्रभुजी के चरणों पर ठीक थी। डाक्टर साहब प्रभुजी के सेवाइत रमेशचन्द्र से बोले—"रमेश बाबू यह पादुका तो कुछ छोटी ही होना चाहिए थी किन्तु ठीक कैसे हो गयी?" रमेशचन्द्र ने उत्तर दिया—"प्रभुजी के चरणों में छोटी पादुका और बड़ी पादुका में कोई अन्तर नहीं है। छोटी भी लगती है बड़ी भी। प्रभुजी इच्छा मय हैं—सर्वशक्तिमान असम्भव भी सम्भव कर सकते हैं।"

डाक्टर साहब सर्वदा प्रभुजी के ध्यान में तन्मय रहते। संसार में रहकर भी वह संसारी नहीं थे। उनकी सदाशयता और भक्तिभाव की तुलना कितनी कठिन है।

---

(४४)

महामौन अवस्था में श्री मन्दिर में अवस्थान और भावदशा या त्रयोदश दशा का आस्वादन

प्रभु बन्धु अपने ३० साल कीउम्र तक स्वेच्छा से विभिन्न स्थानों में मधुर लीला प्रगट करके १९०३ ई० में फरीदपुर गोआलचामठ श्री अंगन के श्री मन्दिर में प्रवेश किया। प्रवेश करने के पहले श्री हरिकथा, श्री चन्द्रपात और श्रीमती संकीर्तन, श्री नाम संकीर्तन, श्री त्रिकाल ग्रन्थ इत्यादि लीला और तत्त्व पूर्ण रचना सम्पूर्ण हो गई थी श्री मन्दिर में प्रवेश के कुछ दिन पहले ही कलकत्ता रहते समय प्रभुजी ने मौनव्रत धारण किया था। उस समय वह अपने कमरे से बहुत कम बाहर होते थे। अगर कमरे से बाहर निकलने के लिए कहा जाता था तो कहते थे–'तुम लोगों ने न तो मेरी बात ही सुनी न हरिनाम लिया। मैं किसके पास बाहर आऊं? कोई मुझे नहीं चाहता है। मैं निर्जन वास करूँगा–कमरे के बाहर नहीं जाऊंगा–समय बहुत ही खराब आ रहा है।"

महा मौन अवस्था में एक अन्धेरी कोठरी में, जिसमें एक भी खिड़की नहीं थी, प्राय: १७ साल बिताये। प्रथम ५ या ६ साल अपने जरूरत के सामानों के लिए और उपदेशादिकों को

कागज में लिखकर कमरे से बाहर फेंक देते थे। उसके बाद ऐसा करना भी उन्होंने बन्द कर दिया। उस समय सेवकों ने श्री अंगन में सम्पूर्ण नीरवता की रक्षा की। अगर किसी को कुछ बोलने की आवश्यकता पड़ती तो धीरे धीरे कानों में कहते थे।

इस सुदीर्घकाल में मौन व्रत पालन का क्या उद्देश्य था, यह तो प्रभु ही जानते थे। किन्तु पूर्ववर्त्ती श्रीमन् महाप्रभु गौरांग देव के पुरी धाम में द्वादश वर्ष गम्भीर लीला भाव के अनुभव करने पर यही ज्ञात होता है कि यह व्रत जगत जीव के कल्याण के लिए ही किया गया। व्रजलीला और गौरांगलीला रूप आस्वादन के भाव तरंगों की सृष्टि कर जीव हृदय के भावों को अंकुरित कर जीव को कल्याण पथ पर अग्रसर कराना ही इसका उद्देश्य है।

प्रभुजी मौनव्रत धारण किये हैं–मन्दिर से बाहर नहीं आते हैं। उनके दर्शन करने का कोई सुयोग या सुविधा नहीं है। किन्तु उस समय देखा गया है कि कितने महाप्राण महाशय व्यक्ति श्री अंगन का रजस्पर्श करने के लिए आते थे।

प्रेमानन्द भारती

भारत विख्यात प्रेमानन्द महाशय जिन्होंने अमेरिका में वैष्णव धर्म का प्रचार किया था, इस श्री अंगन में आये थे। प्रेमानन्द भारती महाशय ने ही प्रभुजी को पत्र लिखे थे:—

"प्राण कानाइया, से तो तुइ रे
तबे मिलन बंचित काहे मुई रे
तुइ गोलोक अवतार
नीच नरक मुइ छार
तोबू तोरे प्रेमे केनो आलिंगिते चाई रे
व्रजेर से कालाचांद
नदीयार गोराचांद
संशय तो नाइ इथे संशय तो नाइ रे ॥"

अर्थात् तुम्हीं तो मेरे प्राण कन्हैया हो तो फिर क्यों मुझे तुम मिलन सुख से बंचित कर रक्खे हो ! तुम गोलोक के अवतार हो और मैं अति नीच और नरक का कीट हूँ। फिर भी मेरे हृदय में तुम्हें आलिंगन करने की इच्छा क्यों होती है ? तुम्हीं व्रज के कृष्ण प्यारे हो—तुम्हीं नदिया के गौरांग सुन्दर हो—इसमें कोई संशय या सन्देह नहीं है।"

सच्चिदानन्द परमहंस

बालकृष्ण सच्चिदानन्द परमहंस उस समय कभी कभी श्री अंगन जाकर अंगन के पवित्र रज में लोट कर आते थे। वह मन ही मन सोचते थे—"मैंने श्री श्री विजय कृष्ण गोस्वामी जी के शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त किया है—तो फिर प्रभु जगद्बन्धु मेरा आकर्षण क्यों कर रहे हैं ? तो फिर क्या मुझे गुरु त्यागी होना पड़ेगा ? एक दिन रात में उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मानो प्रभुजी कह रहे हैं—"मेरे पास आने पर गुरु

त्यागी नहीं होना पड़ता है। जो जहाँ जैसी भी पूजा करे वह पूजा मुझे वैसी ही मिलती है।"

काठिया बाबा

इसी समय श्री श्री रामदास काठिया बाबा प्रभुजी के दर्शन के लिये आये। उन्होंने फरीदपुर शहर के भक्त दुखीराम घोष से कहा—"चलो चलें देखें प्रभुजी दर्शन देते हैं कि नहीं" "दुखीराम ने कहा—"प्रभुजी किसी को भी दर्शन नहीं देते हैं।"काठिया बाबा दुखीराम को लेकर चल पड़े। रास्ते में उन्होंने दुखीराम से कुछ सफेद फूल लाने के लिये कहा मगर दुखीराम ने कहा कि इस समय सफेद फूल मिलना असम्भव है। काठिया बाबा अपनी शक्ति के प्रभाव से एक मकान दिखाकर दुखीराम से बोले—"जाओ उस मकान के पीछे सफेद फूल मिलेगा; ले आओ।" दुखीराम ने जाकर देखा कि सचमुच सफेद फूल खिले हुए हैं। वह फूल ले आया। लाकर फूल उसने काठिया बाबा को दे दिये। काठिया बाबा प्रभुजी के मन्दिर के दरवाजे पर हाथ जोड़कर खड़े हो गये और प्रभुजी भी दरवाजा खोलकर सामने खड़े हो गये। काठिया बाबा के उनके चरणों पर फूल देते ही प्रभुजी ने दरवाजा फिर से बन्द कर लिया।

राधारमण सरस्वती

परमभक्त राधारमण सरस्वती भी एक दिन दरवाजे के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और उनके कातर अनुरोध पर प्रभुजी ने दरवाजा खोलकर उन्हें भी दर्शन दान दिया था।

इस तरह न जाने कितने साधु संन्यासी और भक्त प्राण व्यक्ति श्री अंगन में जाते थे।

बहिरागमन

इस तरह प्राय: १७ साल मौन व्रत पालन करने के बाद १६१६ ई० में प्रभु जी बन्द कमरे से बाहर आये। उनका भाव उस समय शिशु सा था। उनका रूप भी नया था। उनका पुराना रूप लावण्य नहीं था। उनका वीणा विनिन्दित कण्ठ स्वर भी नहीं था। कभी कभी एक आध बात कह देते थे। ऐसा लगता था कि किसी नये देश की नई भाषा है। उनके चलने की शक्ति भी घट गई थी—गठिया के मरीज से चलते थे। जो लोग प्रभु जी को नहीं चाहते थे, धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे—वे गठिया ही कहते थे। कोई कहता था कि प्राणायाम की साधना में भूल होने पर ऐसा हो गया है। क्यों नहीं कहेगा? जिसकी जैसी भावना वह वैसे ही बोलेगा। किन्तु प्रभुजी के भक्तों का कहना है कि यह महाभाव की एक अवस्था है—क्योंकि वे भावराज्य का संवाद रखते हैं। इस समय प्रभुजी के लिये एक विशेष प्रकार की आराम कुर्सी easy chair बनवायी गयी और प्रभुजी को बैठाकर भाग्यवान भक्त समुदाय उसे वहन करते थे।

एक दिन फरीदपुर शहर में एक चमत्कारि घटना घट गयी। प्रभुजो easy chair पर बैठे हैं और भक्तगण कन्धे पर easy chair लेकर जा रहे हैं साथ साथ कीर्तन भी हो रहा है। शान्ति को रखनेवाली पुलिस ने गड़बड़ी मचा दी।

उन्होंने कहा कि लाईसेन्स के बगैर इतने आदमियों का एक साथ जाना कानून तोड़ना है। पुलिस इन्सपेक्टर के हुक्म से कुछ पुलिसवाले प्रभुजी की easy chair को कन्धे पर लाद कर कोतवाली की तरफ चले मगर कीर्तन जारी रहा। प्रभुजी के हुक्म पर चलने वाले पुलिस के हुक्म को क्यों मानने लगे? उस समय के पुलिस के स्वरूप को प्रभुजी ने अपने त्रिकाल ग्रन्थ में लिखा है 'पुलिस लुण्ठन' अर्थात् पुलिस लूटने के लिए। मगर हमारे स्वाधीन भारत की पुलिस देश की सेवक है।

प्रभुजी की easy chair कोतवाली के आंगन में रक्खी गई। सब कोई जानते थे कि प्रभुजी चल नहीं सकते हैं मगर इस दिन उन्हों ने easy chair के हाथ रखने की जगह पर जोर से दो तीन थप्पड़ मार कर सीधे खड़े हो गये और पैदल कोतवाली के दरवाजे पर पहुंच गये। भक्तों ने जल्दी से easy chair में प्रभुजी को बैठाकर विजेता के गर्व से कीर्तन करते करते श्री अंगन में पहुँच गये। उस दिन प्रभुजी मन्दिर में पहुंच कर गरज उठे "यह स्टेट किसका है?"

प्रभुजी चलते समय हाथ के इशारे से रास्ता दिखाते थे और भक्तगण उसी रास्ते पर जाते थे। एक दिन एक और घटना घटी। फरीदपुर शहर के बीच से एक नहर जाती है। काफी गहरी है—इसमें बारह महीना नाव चलती है। उसके ऊपर एक स्थान पर एक अच्छा सा पुल बना है। उस नहर के पास आकर प्रभुजी ने हाथ के इशारे से नहर में उतर कर पार करने

के लिए कहा। भक्तों ने सोचा कि गहरे रानी में कैसे चला जाय। प्रभुजी भीग जायेंगे। वे रुक गये और सोचने लगे कि क्या किया जाय किन्तु प्रभुजी बराबर इशारा करने लगे पानी में उतरने के लिये। भक्तों ने आदेश अमान्य करना नहीं सीखा। वे प्रभु जी का नाम लेकर पानी में उतर पड़े। आश्चर्य की बात यह है कि उनके कपड़े तक नहीं भीगे—पानी बहुत कम था।

जब जिधर इच्छा हुई प्रभु उधर जाते थे। उस समय एक छोटा सा फिटन गाड़ी सा रिक्सा प्रभुजी के लिए बनवाया गया। अब प्रभुजी रिक्सा पर चलने लगे और भक्तगण उस रिक्सा को खींचते थे। कभी गाड़ी इतनी भारी हो जाती थी कि भक्तों के लिये खींचना मुश्किल हो जाता था और कभी इतनी हल्की कि एक भक्त सहज ही उसे खींच सकता था। प्रभुजी की इच्छा के बाहर किसी को कुछ करने का साहस नहीं था। जब तक वह लौटना नहीं चाहेंगे रिक्शा चलाना पड़ेगा। फल मिठाई इत्यादि साथ ही रहता था। कभी कभी देने से बच्चे की तरह खाते थे। थोड़ा खाकर फैला देते थे। भाग्यवान भक्तगण महाप्रसाद पाते थे। कभी कभी रास्ते के किनारे पर के रहने वाले प्रभुजी को तरह तरह के भोग देतें थे। प्रभुजी लेते भी थे। वह रिक्शा आज तक सुरक्षित है।

प्रभुजी की एक अच्छी सी नाव थी। वह आज भी रक्खी है। उस पर कभी कभी घूमने निकलते थे। नाव में भ्रमण करने

में प्रभुजी परम आनन्दित होते थे। भक्तगण नाव चलाते थे। नाव में कीर्तन होता था। प्रभुजी का भोग होता था। नदी किनारे रहनेवाली भक्त रमणियां नाव को किनारे बुलाकर प्रभुजी की आरती उतारती थीं भोग चढ़ाती थीं। इससे प्रभुजी परम आनन्दित होते थे। एक दिन प्रभुजी भक्तों से बच्चे की तरह कहने लगे नाव पर घूमेंगे। आकाश में बादल घिरे हुए थे। पानी बरसने वाला था। भक्तों ने कहा कि आकाश में बादल घिरे हैं पानी बरसेगा। मगर प्रभुजी जाने के लिए जिद करने लगे। भक्तगण आनाकानी करने लगे तो प्रभुजी बोले—अगर चाहो तो पानी रुकवा दूँ। प्रभुजी को नाव पर चढ़ाया गया किन्तु आश्चर्य ! चारों तरफ पानी बरस रहा था किन्तु नाव पर एक बूँद न गिरी।

धीरे धीरे प्रभुजी की भाव अवस्था बढ़ने लगी। एक दम बच्चों जैसे हो गये। आहार प्रायः बन्द हो गया। प्रभु बन्धु के शरीर पर नाना प्रकार की व्याधियों के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। प्रभुजी ने एक बार कहा था—"मेरे शरीर पर जो विष्णु लक्षण है उसे देखने की शक्ति किसी में नहीं है समय आने पर मैं कठिन से कठिन व्याधियों द्वारा मिटाकर साधारण मनुष्य बनकर सर्व साधारण के साथ मिल जाऊँगा।"

पूर्वी बंगाल के पावना के रहने वाले अवकाश प्राप्त इक्सीक्यूटिव इञ्जीनियर श्री नील लाहिड़ी आजकल लखनऊ में रहते हैं। उनका कथन है—'बचपन में मैं और जगद्बन्धु एक साथ

रहते थे उस समय जगद्बन्धु सोलह वर्ष के थे। मगर वे जिसे जो कुछ कहते वह उसे करना पड़ता था। उनके शरीर की कांति इतनी उज्ज्वल थी कि उनकी तरफ देखना मुश्किल था। मुझसे एक दिन एक आदमी को बुलाने को कहा तो मैंने उत्तर दिया—"मैं तो बुला दूँ मगर वह तो तुम्हारी तरफ देख भी न सकेगा।"

लाहिड़ी बाबू के परिवार की गोलोक मणि देवी ने प्रभुजी के हृदय पर भृगुपद चिन्ह और बनमाला देखी थी। लाहिड़ी बाबू ने कहा—"मैंने भी देखा है। सुना जाता है कि कई आदमी प्रभुजी के अंग को देखकर बेहोश हो जाते थे। साधारण मनुष्य की आंखों के लिए प्रभुजी का रूपदर्शन करना असम्भव था।

उस बार फरीदपुर शहर में चेचक महामारी के रूप में दिखाई दिया। उस रोग ने सैकड़ों प्राण ले लिये। श्री अंगन के एक भक्त भी उसी व्याधि से पीड़ित हो गये अचानक प्रभुजी के शरीर पर भी व्याधि के भीषण लक्षण प्रगट हुए। प्रभुजी ने कहा—"मेरा कोई नहीं है—मुझे भी इतना दुःख केवल जीव के लिए भोगना पड़ रहा है।"

श्री मन्दिर से प्रभुजी व्याधिग्रस्त अवस्था में बाहर आये और बाहर आकर न जाने कितनी व्याधियों को अपने श्री अंग में धारण किया। १९२१ ई० तक प्रायः दो साल तक हजारों दर्शक भक्तों को दर्शनसौभाग्यप्रदान किया। असंख्य व्यक्तियों का स्पर्श और सेवा का भाग्यदान किया।

त्रयोदशदशा

इसके बाद ही १७–९–१९२१ में लीलामय प्रभु ने महाप्रलय को अपने अंग में धारण करके त्रयोदश दशा या महामृत्यु अवस्था को ग्रहण कर लिया। इस अवस्था के घटने के तीन दिन पहले वह श्री अंगन अचल में अवस्था में पड़े थे। उस समय फरीदपुर गवर्नमेन्ट स्कूल के शिक्षक दक्षिणा रंजन नाग महाशय की प्रभुगतप्राणा पत्नी को सन्ध्या के समय उज्ज्वल नग्न मूर्ति में दर्शन देकर बोले—"मैं अंग्रेजों के देश में उन्हें बताने जारहा हूँ कि उन लोगों का ईशु हूँ और श्रीक्षेत्र में (पुरीधाम) जा रहा हूँ उन लोगों को कहना है कि मैं ही जगन्नाथ हूँ। मक्कामदीना में जाकर कहूँगा कि मैं उन लोगों का मोहम्मद हूँ। मेरे भक्तों से कहना कि मेरे शरीर को घेरकर नाम कीर्तन करें।" उक्त महिला बोली—"प्रभु मैं औरत हूँ मेरी बात कौन सुनेगा?" प्रभुजी बोले—"अगर न सुने तो मेरा ग्रन्थ पढ़ने को कहना।"

प्रभुजी की वाणी है—"हजारों साल मेरी लीला पृथ्वी पर चलेगी" प्रभुजी ने एक भक्त से कहा था—"केवल मेरा ही आना जाना नहीं है—तुम लोगों को भी मेरी लीला में कईबार आनाजाना होगा।

प्रभु की वाणी—"हरि नामे देह हय"—"हरि शब्द उच्चारण" "उद्धारण जीमन" "उद्धरण आगमन"।

प्रभुजी की वाणी—श्रीमती राधिका की दशम दशा हुई थी। श्रीमन् महा प्रभु की द्वादश हुई थी। अब मेरी त्रयोदश दशा देख पाओगे।

श्रीमती राधिका की दशम दशा थी :—

चिन्तात्र जागरोद्वेगौ तानवं मलिनाङ्गता ।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युदशा दश ॥

श्रीकृष्ण जी के विरह से श्रीमती राधिका की दश दशायें हुई थीं। यथा–चिन्ता जागरण, उद्वेग, तनुता (देह शीर्ण हो जाना) मलिनांगता प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह–मृत्यु आखिरी दशा मृत्युदशा है। श्रीमती राधा की इस अवस्था को उनकी अन्तरंग सखियाँ भी समझ न सकीं। सखियाँ हताश होकर श्रीमती को घेरकर श्रीकृष्ण के नाम सुनाने लगीं–श्रीमती की संज्ञा लौट आई। वे सखियों को कृष्णकथा सुनाने लगी।

श्रीमान महाप्रभु के पुरीधाम के गम्भीर मन्दिर में अवस्थान काल में श्रीमती राधा के भाव से आविष्ट होने पर दस के ऊपर और दो दशा दिखाई पड़ी थीं। एक दीर्घाकृति दूसरी कूर्माकृति यथा:—

"हस्त पद सन्धि गत वितस्ति प्रमाने
सन्धि छारि भिन्न हय चर्म रहे स्थाने
एक एक हस्त दीर्घ तीन तीन हाथ
अस्थि सन्धि छुटियाछे चर्म आछे सात

(दीर्घाकृति लक्षण)

हस्त पद शिर सब शरीर भीतरे
प्रविष्ट हय कूर्मरूप देखिये प्रभु रे

(कूर्माकृति लक्षण)

श्रीमान् महाप्रभु गौरांग सुन्दर के देहास्थि महाभाव प्रभाव से एक एक विस्ता प्रमाण जोड़ (Joint) से अलग हो जाता था। उनके शरीर के जोड़ सब खुलकर शरीर सात हाथ लम्बा हो जाता था। केवल चमड़े का जोड़ रह जाता था। यही दीर्घाकृति अवस्था है। हाथ पैर और सिर अपने शरीर में चले जाकर शरीर कूर्म अर्थात् कछुआ सा या मांस पिण्ड सा हो जाता था। यही भाव कूमाकृति है। यह भाव राय रामानन्द स्वरूप, दामोदर प्रभृति अन्तरंग भक्त भी समझ नहीं सकते थे। वे सोचते कि प्रभु उन लोगों को छोड़कर चले गये हैं और वे हताश होकर कृष्णनाम, हरिनाम और श्रीमद् भागवतादि के श्लोक सुनाने लगे। काफी देर तक नाम सुनकर महाप्रभु के शरीर में चेतना लौटी। प्रभु "हरिबोल, हरिबोल" करके अपना स्वाभाविक शरीर लेकर उठ खड़े हुए।

यह सब महाभाव की अवस्था साधारण की समझ के बाहर है अधिकारी भक्त इसका सामान्य मात्र अंश अनुभव कर सकते हैं। श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर ने कहा है–"अब तुम लोग मेरी त्रयोदश दशा देख पाओगे।" प्रभु बन्धु त्रयोदश दशा में है। प्रभु की इस अवस्था से पूर्ण जागरण या महाप्रकाश होगा। यही प्रभुजी की वाणी है। भक्तों को उपदेश है कि वे शरीर को घेरकर नाम कीर्तन करें। प्रभु के इस अवस्था ग्रहण करने के बाद से ही भक्तगण हरिनाम महानाम अखण्ड रूप से करते आ रहे हैं। आज ४० वर्ष हुए लगातार ऐसा ही होता चला आ रहा है। प्रभुजी के जागरण कल्प से भक्तगण इस नाम गान को चलाते आ रहे हैं। उनको एकान्त विश्वास है कि प्रभु निश्चय हो जागेंगे।

मनुष्यत्त्व के विकास का पथ
और
प्रभु जगद्बन्धु

मनुष्यत्व के विकास का पथ और प्रभु जगद्बन्धु

प्रभुजी के उपदेशों के अनुशीलन करने से यह बात प्रकाशित होती है कि मनुष्यत्व अर्जन करने के लिये तीन वस्तुओं की विशेष आवश्यकता है :–(१) ब्रह्मचर्य पालन, (२) श्रीहरि की शरणागति, नामग्रहण सेवा और (३) जीव मात्र पर दया या प्रेम। मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिए पवित्रता अर्जन आवश्यक है उसके लिए यह तीनों वस्तु प्रयोजन है। यह तीन परस्पर के सहायक हैं। प्रभुजी ने कहा है पूर्ण पवित्रता (Full purity) एक मात्र मुझ में ही है।" देवता, मुनि, साधु सन्त, इस पृथ्वी के ज्ञानी विज्ञानी कोई भी पूर्ण पवित्रता का दावा नहीं कर सकते हैं। साधारण मनुष्यों में प्राधान्य अर्जन या कृतित्वलाभ करना एक है और प्रकृत मनुष्यत्व का अर्जन करना दूसरा है। प्रकृत मनुष्यत्व के अर्जन से जीवन को सार्थकता मिलती है, सन्तुष्टि आती है। इससे दैहिक मानसिक और आत्मिक इन तीनों शक्तियों का विकास होता है। जिसके जीवन में इन तीनों का जितना विकास प्राप्त हुआ हो उसे उसी परिमाण में मनुष्य कहा जा सकता है।

एक मनुष्य शास्त्रज्ञ हो सकता है, दूसरा राजनीतिज्ञ हो सकता है। कोई सफल वैज्ञानिक हो सकता है। कोई कवि हो सकता है या कोई योद्धा भी हो सकता है किन्तु इनमें से केवल एक गुणलाभ द्वारा कोई मनुष्यत्व का अधिकारी नहीं हो सकता। सामाजिक जीवन में इनमें से प्रत्येक का एक

निश्चित मूल्य है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि उस व्यक्ति को मनुष्यत्व लाभ हुआ है। इनमें से किसी पर भी विचार करने पर देखा जा सकता है कि इससे आत्मतृप्ति या आत्मसन्तुष्टि नहीं है और उन तीनों वस्तुओं का इनके साथ सम्बन्ध न रहने पर मिथ्या अभिमान या गर्व ही होता है। इसमें शान्ति या आनन्द नहीं है।

मनुष्यत्व के अर्जन के लिए जाति वर्ण की कोई बाधा नहीं है। कोई भी मनुष्य मनुष्यत्व अर्जन का अधिकारी हो सकता है। मनुष्यत्वअर्जन के लिए भिन्न भिन्न महापुरुषों ने भिन्न भिन्न रास्तों का सन्धान दिया है नाना प्रकार की युक्ति विचार भी दिखाए हैं किन्तु प्रभुजी ने तीनों ही (ब्रह्मचर्य, हरिनाम ग्रहण और सेवा, जीवों पर दया और प्रेम) आवश्यक बताए हैं। इन तीनों के मिलनक्षेत्र के गठित न होने के कारण समाजजीवन की प्रत्येक दिशा में अनाचार व्यभिचार आदि नाना प्रकार की दुर्बलता दिखाई पड़ रही है।

इन तीन गुणों का अर्जन करना मानवजीवन के प्रारम्भ में ही प्रयोजन है। भूमिष्ठ होने के पूर्व शिशु मातृजठर में मस्तक नीचे और पांव ऊपर किये हुए अवस्थान करता है। प्रभुजी ने कहा है—"हे मानव, मातृगर्भ में सप्तम महीने पर गर्भानल से दग्ध होकर ऊर्द्ध्व पद और मस्तक निम्न दशा में रख कर कर जोड़ कर तुमने प्रार्थना की है। हे दीनानाथ दीनबन्धु हरिभजन निश्चय ही करूँगा और सत्य धर्म को नहीं त्यागूँगा।"

किन्तु भूमिष्ठ होने के साथ साथ माया ने तुम्हारा ज्ञान हरण कर लिया और तुम्हारी प्रणवजठरस्मृति लोप कर दी है अर्थात् तुमने मातृजठर में जो प्रणवउपासना की थी वह स्मृति लोप पा गई है। विष्णु-माया के स्पर्श ने तुम्हें सब भुला दिया है और तुम ने शैशवकाल को साथियों के साथ खेल कूद में हो व्यर्थ बिता दिया। तुमने किशोर अवस्था को भगवत् सम्बन्ध हीन प्राकृत विद्यार्जन में बिताया किन्तु प्रकृत विद्या अर्थात् हरिनामविद्या का स्मरण नहीं किया, युवावस्था में षड्रिपु का दासत्व किया।

सांसारिक जीवन में स्त्री पुरुष दोनों को ही संयम नियम के पालन के साथ श्री श्री हरि में शरणागति, हरिनाम ग्रहण और संकीर्णता स्वार्थपरता त्याग कर जीवों पर दया भाव रखना होगा इससे उस परिवार की सन्तानों में उन गुणों का स्फुरण हो सकता है। यदि कोई शिशु उपरोक्त गुणावलीसम्पन्न किसी परिवार में पालित होता है तो वह परिवार भी व्यक्तियों के आचरण से शिक्षा को प्राप्त होता है।

शास्त्र वाक्य है—"धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः" अर्थात् धर्महीन व्यक्ति पशु के समान है। श्री श्री गौरांग महाप्रभु के आवेशावतार श्री ठाकुर नरोत्तम की भाषा में—"श्री हरि में अनुराग न होने पर यह समझो कि यह अलंकृत शरीर वस्त्रहीन है और उसका उपहास किया जा रहा है।" शरीर पर नाना प्रकार के आभूषण रहने पर भी अगर शरीर पर वस्त्र

न रहा तो शरीर अरुचिकर मालूम देता है। जिसमें हरि प्रेम नहीं है वह भी उसी प्रकार है अर्थात् सर्वगुण रहते हुए भी उसके गुणों का कोई मूल्य नहीं है।

पश्चिम बंगाल के साधक कवि रामप्रसाद की भाषा में—"माता बनना इतना सहज नहीं है। केवल जन्म देने से ही कोई स्त्री माँ नहीं हो सकती।" प्रकृत मातृत्व और पितृत्व के लिए उन तीन गुणों की एकान्त आवश्यकता है। उनके बिना उपयुक्त माता पिता नहीं बन सकते हैं। सन्तान में पिता माता के दोष गुणों का संचार निश्चय ही होगा।

प्राचीन भारत की प्रथा कि शिशु अवस्था में बालक को उपयुक्त गुरुगृह में मनुष्यत्वअर्जन के लिए प्रेरणा किया जाता था। वहाँ पर उसे धर्म, ब्रह्मचर्य, जीवों पर दया तथा प्रेम भक्ति की सम्पूर्ण शिक्षा मिलती थी। वह गुरु आजकल के दण्डधारी मिथ्या गुरु नहीं थे। उस समय के गुरुओं में वास्तविक मनुष्य बनाने की शक्ति थी। वे धर्म, ब्रह्मचर्य और विद्या इन तीन गुणों में पारंगत थे। छात्रों को उपयोगी वातावरण में शिक्षा दी जाती थी। उस समय के गुरु व्यवसायी नहीं थे। वे धर्म के सम्बन्ध में मूर्ख पुरोहित नहीं थे कि दो चार संस्कृत मन्त्रों को अशुद्ध उच्चारण करके अपने पेट भरने की चिन्ता में रहते हों। वे अपने भत्ते की वृद्धि के लिये सत्याग्रह नहीं करते थे। छात्रों के सामने शिक्षक का परिचय एक भयानक जन्तु के रूप में नहीं था।

उस समय ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास यही चार आश्रम थे। क्रमोन्नति करने के लिये मनुष्य इन्हीं चार आश्रमों के धर्मों का यथावत् पालन करते थे। जीवन के हर क्षेत्र में शान्ति विराजमान थी। आजकल की तरह अनीति का प्राधान्य नहीं था। वर्तमान युग में ब्रह्मचारी शब्द का अर्थ गृहत्यागी साधु संन्यासियों से समझा जाता है किन्तु यह भूल है।

गुरुगृह से लौटकर ब्रह्मचारी ससाराश्रम में प्रवेश करता था। उस समय का गृहस्थ आश्रम आजकल की तरह कामवासना पूर्ण, हिंसा द्वेष संकीर्णता स्वार्थपरता का अड्डा नहीं था। गृहस्थाश्रम में स्त्री पुरुष सभी के जीवन में संयम नियम पवित्रता, भावनिष्ठा, जीवों पर प्रेम दया इत्यादि थे।

मनुष्य के वर्तमान जीवन तथा समाज में हीनता, स्वार्थपरता हिंसा द्वेष इत्यादि के कारण अपराध की मात्रा बढ़ रही है और पृथ्वी को रसातल के पथ पर ले जाकर प्रलय को बुलाया जा रहा है। किन्तु परमकरुणामय भगवान ने ध्वंस करने के लिए इस जगत की सृष्टि नहीं की। भगवान से प्रदत्त शक्ति के अपव्यवहार से ही मनुष्य आज निम्नतम स्तर में पहुंच गया है।

वैष्णव महाजन कवि चण्डिदास ने कहा है:—

सुनह मानुष भाई—सबार ऊपर मानुष सत्य
ताहार ऊपरे नाई।

अर्थात् "हे मनुष्य सुनो—मनुष्य ही सर्वोत्तम सृष्टि है इससे उत्तम कुछ नहीं है। बाइबिल में लिखा है—"God made man

after his own image" श्री चैतन्यचरितामृत में है–
"कृष्णेर जतक खेला–सर्वोत्तम नरलीला।

नरवपु ताहार स्वरूप–अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं में सर्वोत्तम नरलीला है–नर शरीर उन्हीं का (भगवान् के) स्वरूप है। मनुष्य श्रीहरि की तटस्थ शक्ति है।

मनुष्य आपातत: मधुर के आस्वादन करने में इतना तत्पर है कि परिणाम मधुर को वह भूल गया है और अपने को अन्याय के पथ पर ले जा रहा है। मनुष्य की सत्यपथ पर परिचालना करने के लिए श्री भगवान् स्वयं आविर्भूत होकर अपने श्री मुख से निसृत वाणी द्वारा, सत्यदर्शी व्यक्ति की शास्त्ररचना द्वारा और अपने प्रिय अन्तरंग भक्त रूप गरु और साधुओं द्वारा जीव को शिक्षा देने की बारम्बार चेष्टा करते हैं।

प्रभु जगद्बन्धु स्वयं ब्रह्मचर्य, सत्य, प्रेम तथा पवित्रता के मूर्त आदर्श हैं। वह अपने जीवन में सत्य धर्म के पूर्ण प्रतिपालन द्वारा जीव को पूर्ण मनुष्यत्व विकाश करने का उपदेश दे चुके और अपने उपदेशों को आदर्श भक्तों के द्वारा आचरण कराकर शिक्षास्वरूप जीव के सामने उपस्थित कर चुके हैं। प्रभुजी की वाणी–"ब्रह्मचर्य आप पालन करो और दूसरों से भी पालन कराओ। रात पांच दण्ड रहते ही शय्या त्याग करो। फिर शौच कर्मादि और दन्तधावन से निवृत्त होकर ब्राह्ममुहूर्त्त में स्नान करो।"

शिश्न ऊर्ध्व करके कौपीन परिधान करना, कौपीन धारण करने से निद्रा विकार से बच सकोगे।"

"बिस्तरा, तकिया, जूता, मोजा आसनादि किसी के व्यवहार में लाई कोई भी वस्तु कदापि व्यवहार न करना।"

सदा सर्वदा सर्वरूप से शरीर रक्षा करना। इससे कल्याण होगा कभी आमिषाहार नहीं करना। खाद्याखाद्य विचार करना कर्त्तव्य है। भोजन ही व्याधि का मूल है। अन्याय का आहार बिहार ही व्याधि का कारण है। अपरिमित या स्वास्थ्य के प्रतिकूल भोजन न करना और भोजन समाप्त होने पर ऐसा जान पड़े कि पेट सम्पूर्ण नहीं भरा है। किसी के साथ एक पात्र में भोजन न करना। किसी जीव या मनुष्य का स्पर्श न करना। स्पर्श करना महापाप है। स्पर्श दोष और पंक्ति भोजन यह दो दोष पृथ्वी पर छा गये हैं। एकत्र शयन भोजन, उपवेशन गमन तथा सम्भाषण से एक शरीर का दोष दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। चलते समय धरती पर दृष्टि रखना। प्रतिपग पर सावधान रहना। वाक्संयम करो-मौन बनो। क्रोध, मान, अभिमान, घृणा, लज्जा भय, अनिष्ट आदि का सर्वदा के लिए परित्याग करो।"

"मन स्वभावत: ही चंचल है। इसलिये उसे कभी प्रश्रय न देना। आलस्य को त्यागो। वृथा वाक्य व्यय न करना। वृथा वाक्य व्यय दुर्भाग्य का लक्षण है। स्त्री पुरुष का अबाध संमिश्रण महापाप है।"

भोग विलास त्यागो। आसनों का अभ्यास करना, स्वस्तिकासन लगाकर मेरुदण्ड (Spinal cord) को सीधा करके बैठो। दोनों घुटनों पर हथेलियों को उत्तान रक्खें।"

"परचर्चा, परनिन्दा को न तो हृदय में स्थान देना और न सुनना। सर्वदा कीर्तन मंगल की चेष्टा करना।"

लक्षण से मनुष्य पहचान लेना—'तद' रूप का व्यवहार करना और सब को वही व्यवहार करने को कहना।"

"मिथ्या कभी न बोलना। मान, अभिमान, क्रोध, लज्जा, संकोच, अहंकार, हिंसा इत्यादि को सदा सर्वदा के लिये त्याग दो।

प्राइवेट कानशेन्स ही धर्म है। कोई भी वृथा समय नष्ट न करें।"

प्रभु जी मूर्त्तिमान हरिनाम हैं—और हरिनाम को ही सर्व-श्रेष्ठ साधन बताया गया हैं। धर्म, अर्थ मोक्ष, काम आदि का सार हरिनाम ही है। 'नियति केन वाध्यते' शास्त्र वाक्य है किन्तु हरिनाम के प्रभाव से उस नियति का भी खण्डन किया जा सकता है। प्रभुजी की वाणी है—"आओ भाई हरिनाम से नियति को भगा दें।" वर्तमान प्रलय युग में उन्होंने रक्षा पाने के एकमात्र उपाय के लिए हरिनाम करने का निर्देश दिया है। इस नाम में श्री भगवान् के सर्वशक्ति निहित है। नामाश्रय से सर्वसिद्धि नाम होता है। मनुष्यत्व लाभ करने के लिए श्री हरिनाम आश्रय ग्रहण एकान्त आवश्यक है। हरि-नाम के सम्बन्ध में महाप्रलय और हरिनाम" नामक अध्याय में विस्तृत आलोचना की जायगी।

---

(४६)

जीवों पर दया और प्रीति

मनः प्राणे जीवे करो कारुण्य कल्याण
क्षमा, दया, धर्मदान उद्धार विधान
(उद्धारण धरो रे)(सबे हरिनामदान)
(एई कल्याण विधान")—बन्धुवाणी

अर्थात्—"मन प्राण से जीवों का कल्याण कामना करोगे और सर्व जीव के उद्धार के लिए क्षमा दया और धर्म दान प्रयोजन है। सब को हरिनाम ग्रहण करना चाहिए—दान करना चाहिये इसी में कल्याण है—उद्धार है।"

एकबार प्रभुजी से भगवान् की श्रेष्ठ लीला के सम्बन्ध में पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया था—"जिस लीला में जीवों के दुख देखकर लीलामय अधिक अधीर हो जाते हैं वही सर्व-श्रेष्ठ लीला है। उसी प्रकार जिस मनुष्य में जीवों का दुख देख कर अधीरता जितनी अधिक होती है वह उतना ही श्रेष्ठ मनुष्य है।"

यही भाव प्रभुजी ने जीव शिक्षा के हेतु अपने जीवन में आचरण करके दिखाए हैं।

हरिनाम विरोधी कुछ मनुष्यों ने एकबार प्रभुजी पर प्रहार कर मृतप्राय कर दिया था किन्तु प्रभुजी उन्हें दण्ड देने

की किसी भी व्यवस्था में सहमत नहीं हुए और उन्होंने यह भी कहा था—"मैं दण्डदाता नहीं हूँ— उद्धार कर्ता हूँ ।"

उनका उपदेश है—

"मार खाना किन्तु मारना नहीं ।"

"मृत्तिका के तरह विनयी और नम्र होना ।"

"जीव देह में नित्यानन्द का आवास है जीव पर आघात करने से उन्हीं पर आघात पहुँचता है ।"

हिन्दू समाज की कुछ जातियाँ, जो अस्पृश्यों के लिये भी अस्पृश्य थीं, उनका उद्धार करके उन्होंने जीव दया और प्रीति का आदर्श स्थापन किया है । जो मनुष्य मनुष्यों से प्रेम नहीं करता है, दूसरों का दुख जिसके हृदय में करुणा उत्पन्न नहीं करता है, शक्ति रहते पर भी जो किसी के दुख का प्रतिकार नहीं करता अपितु मनुष्य के दुख तथा दारिद्र के अवसर पाकर उनको निष्पेषित करता है—वह मनुष्य देहधारी होने पर भी मनुष्य नाम के लिये अयोग्य है ।

श्री श्री गौरांग महाप्रभु ने श्री सनातन गोस्वामी जी से कहा था—

"जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णव सेवन
इहार अधिक आर नाहि सनातन"

अर्थात्—सनातन, जीवों पर दया, हरिनाम से प्रेम और भक्तों की सेवा—इससे अधिक और कुछ नहीं है ।

स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है—"जीवे दया करे जेई जन, सोई जन सेविछे ईश्वर" अर्थात् जो जीव सेवा करता वह प्रत्यक्ष ईश्वर की ही सेवा करता है ।

श्री चैतन्य चरितामृत के एक श्लोक का भावार्थ यह है कि जिस मनुष्य का जन्म भारत भूमि (पृथ्वी) में हुआ है उसका जन्म परोपकार से होगा । मनुष्य जन्म की सार्थकता यह है कि मनुष्यों में विचार बुद्धि है—और जीवों में नहीं है । उस विचार बुद्धि के परिचालना द्वारा अपना और जन साधारण के मंगल करने में ही उस विचार बुद्धि तथा विचार बुद्धि संवलित मनुष्य जन्म की सार्थकता है । नहीं तो मनुष्य जन्म और पशु जन्म में अन्तर ही क्या है ? विशेषत: भारत में जिस मनुष्य का जन्म हुआ है, उसकी जिम्मेदारी दूसरे देश में जन्मे मनुष्य से अधिक है, इसका कारण यह है कि दूसरे देशवासियों को सर्व प्रथम वेद पुराणों को पाठ करने का तथा जीवों के परम मंगलाकांक्षी महापुरुषों के चरणों की धूल को मस्तक पर धारण करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है । इस सौभाग्य का अधिकारी केवल भारतवासी ही है ।

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा"

(श्रीमद् भागवत १०।२२।३५)

श्रीकृष्णजी ने व्रज के बालकों से कहा था—"प्राण अर्थ, बुद्धि और वाक्य जीवों के उपकारार्थ नियोजित करना ही

जन्म सार्थक करने का उपाय है। जो ऐसा नहीं करते हैं उसका जीवन व्यर्थ है।

कवि का कहना है कि जिस सरोवर में सुन्दर कमल प्रस्फुटित नहीं होते हैं वह सरोवर सरोवर ही नहीं है और जिस कमल में भ्रमर आकृष्ट नहीं होता है वह कमल कमल ही नहीं है और जिस भ्रमर के गुञ्जन से श्रुति को सुख नहीं मिलता है वह भ्रमर भ्रमर ही नहीं है। इसी प्रकार जिस मनुष्य के हृदय में दया और प्रेम के अमृत स्रोत प्रवाहित नहीं होता है वह मनुष्य मनुष्य नाम के अयोग्य है।

महाप्रलय और रक्षामन्त्र हरिनाम

(४७)

महाप्रलय और रक्षा मन्त्र हरिनाम

प्रभुजो ने वर्तमान काल को प्रलयकाल कहा है। अपनी रचनाओं में और भक्तों के मण्डली में इस के बारे में बहुत सी बातें उन्होंने व्यक्त की हैं। जीवों के दुख से विचलित प्रभुजी मानो अपनी आँखों से प्रलय का भयंकर दृश्य प्रत्यक्ष कर जीवों के लिये भयभीत हो उठे हैं, अस्थिर हो उठे हैं। जीवों के मुक्ति के उपाय सोचते सोचते उनका कोमल हृदय कम्पित हो उठा है। अपने ग्रन्थों में प्रलय शब्द लिखते हुए भी उनका हाथ सहम गया था। इसलिये प्रलय को उन्होंने प्र-ल-य लिखा है और प्रलय का वर्णन करते समय उनके कोमल हृदय से केवल भय शब्द ही निकल सका।

१८९९ ई० में रचित प्रभुजो के ग्रन्थ 'चन्द्रपात' और 'श्री हरिकथा' में प्रलय के बारे में लिखा है :—

"पृथ्वी पाप से पूर्ण होने पर प्रलय समुद्र उद्वेलित होकर सृष्टि का लोप कर देगा।"

और जीवों के दुख से कातर होकर लिखा है—"हाय हाय जीव जन्तु सब प्रलय ग्रास में जा रहा है। इनके बचने का एक ही उपाय है—हरिनाम महानाम (प्रभुजी के द्वारा प्रवर्तित

महानाम है–हरिपुरुष जगद्बन्धु महाउद्धारण) इस महामन्त्र का कीर्तन ही रक्षा का उपाय है।

व्रजधाम या श्री वृन्दावन का पवित्र रज जहाँ मनुष्य अपने शोक तम व्यथा से मुक्त होने के लिए शान्ति पाने के लिए जाते हैं–वह रज भी मनुष्यों के पाप की ज्वाला से उत्तप्त होकर आज मरुभूमि के समान हो गया है। जान पड़ता है कि व्रज की अधिष्ठात्री देवी ने व्रज को त्याग दिया है। इसलिए प्रभुजी एक पृथ्वी ध्वंसकारी भूचाल के आने की आशंका कर रहे हैं। सृष्टि रक्षा पाने का एकमात्र उपाय श्री हरिनाम कीर्तन करना ही बता रहे हैं और कीर्तन अकेले नहीं होगा सब को मिलकर करना होगा। प्रभुजी जीवों के दुख से कातर होकर कह रहे हैं। भाई तुम सब मिलकर कीर्तन करो। देखते नहीं हो कि महाप्रलय कितना निकट है। इस कीर्तन के सिवा इस प्रलय से बचने का और कोई उपाय नहीं है।

हे जीव ! अपनी आखें खोलकर देखो प्रलय कितना निकट है। अब दोनों बाहु उठाकर नाचते हुए हरिनाम कीर्तन करो।

प्रभुजी ने भक्त बनकर महाप्रभु से प्रार्थना की है। हे महाप्रभु महाप्रलय सिन्धु मेघ की तरह गरज रहा है। आप इन माया मुग्ध जीवों को क्षमा करके उनकी रक्षा करो।

जीवों के दुख से कातर प्रभुजी कह रहे हैं–"जी–जिस अवस्था में है–हरिनाम महानाम का कीर्तन करे; पाप और अपराध से पूर्ण पृथ्वी अब महाप्रलय का गर्जन सुन रही है।

महाप्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं–"हे गौरांग महाप्रभु ! प्रलय-काल समीप है। जगत कांप रहा है। प्रलय समुद्र सबको डरा रहा है। इस प्रलय से तुम जीव की रक्षा करो।"

प्रभुजी ने अपने ग्रन्थों में कई जगह महाप्रलय का उल्लेख किया है। अपने भक्तों को भी महाप्रलय के भय बताकर समवेत कीर्तन करने का उपदेश दिया है और बार बार यही आक्षेप किया है कि अब जीवों को बचाने का कोई उपाय नहीं है। जीव न तो स्वय ही हरिनाम करते हैं न उसका प्रचार ही करते हैं।

उन्होंने हरिनाम गुण और शक्ति के बारे में भी अनेक स्थानों में कहा हैं कि—"रक्षा हरिनाम" "हरिनाम या प्रभु जगद्बन्धु" "मैं सिर्फ हरिनाम का ही हूँ इसके सिवाय किसी का नहीं।"

हरिनाम से समग्र प्रयोग और साधन के फललाभ अपने तथा परायों का उद्धार साधन इसके साथ साथ चतुर्दश भुवनों का मंगल विधान होता है। यही नाम माहात्म्य है।" नाम माहात्म्य शास्त्रातीत है केवल गुरु के मुख से ही मिल सकता है। लेखनी के लिये असाध्य है।"

"सब मिलकर हरिनाम कीर्तन करो–प्रचार करो।" "अहिंसा के साथ सिंह विक्रम से आगे बढ़ो, हरिनाम से शक्ति संचार करो। संसार की माया का इन्द्रजाल कट जायगा।"

तुम लोगों के हरिनाम कीर्तन आरम्भ करते ही महाउद्धारण व्रत समाप्त हो जायगा।" "संसारी को ही हरिनाम पर अधिक

अधिकार है।" (इस वाणी का मर्मार्थ इस प्रकार प्रतीत होता है कि प्राय: देखा जाता है कि त्यागी साधुओं का लोभ पूजा तथा प्रतिष्ठा लाभ पर आ ही जाता है। सैकड़ों आदमी प्रणाम करेंगे—१०।२० चेला भी बन जायेंगे। साथ साथ अपने पर घमंड भी हो जायगा। यही सब अनर्थ की जड़ है—जीवन को व्यर्थ कर देता है। जो संसारी अपने परिवार में रह कर भजन साधन में मग्न रहते हैं वे संसार बन्धन का अनुभव करके निरभिमान रहते हैं।)

"नित्य घर में कीर्तन करो।" समय रहते रहते हरिनाम करो शरीर की रक्षा करो—इससे मंगल होगा।"

"नित्य नगर कीर्तन—टहल दारी (कीर्तन फेरी)—निष्ठा—कारुण्य आवश्यक है। टहल दारी ही अंतिम साधन है।" "रात्रिकाल पापी तापिओं का श्राद्ध के समय है। शेष रात्रि में ऐसा कर्म करना जिससे सबके कानों में हरिनाम पहुँचे।"

"कीर्तन के सिवाय और कोई व्रत नियम करना आवश्यक नहीं।" हर घर में नाम का प्रचार करो। उसी का पालन करो—साधन करो। मेरी यह वाणी सर्वत्र प्रचार करो—घर घर में कीर्तन आरम्भ करा दो।"

'हरि' यह शब्द केवल हरि का नाम ही नहीं है। गुरु गौरांग गोपी राधा श्याम सब मिलाकर ही इस शब्द की उत्पत्ति हुई है। एक बार हरि नाम उच्चारण से सब नाम हो जाता है। हरिनाम को इतनी जोर से उच्चारण करना होगा कि हजारों हाथ दूर से सुनाई पड़े। इस महा-

मन्त्र को इस प्रकार से बोलो कि जिससे जीवजन्तु स्थावर जंगम सभी इसे सुन सकें।"

"सभी को हरिनाम सुनाना छोटा बड़ा अलग न करना।"

हरिनाम रूपी महौषधि के साथ प्रेम, भक्ति आग्रह एकाग्रता और निष्ठा रूपी अनुपान देकर—इन्द्रिय रूपी व्याधियों को नष्ट कर दो।" महाप्रभु की सहज व्यवस्था यह है—करताल मृदंग और नाम—इन तीनों के सम्मिश्रण से भक्ति प्रेम के सागर में ज्वार आ जाता है—कीर्तन से कृष्ण की उत्पत्ति हुई है।"

"हाय! हाय!!—मनुष्य हरिनाम करना नहीं चाहते हैं।" "मानव जीवन स्वल्पकाल स्थायी है।" "एक गधा भी संसारी जीव से सुखी है। कारण उसे घास खाने की फुर्सत मिल जाती है। किन्तु मनुष्य को दिन रात अपने स्त्री पुत्र परिजन के पालन पोषण के चिन्ता का बोझा पीठ पर ढोना पड़ता है। हरिनाम करने का अवसर ही कहाँ है?"

"काटेदार झाड़ियों को खाते समय ऊँट का मुँह कांटों से ज़ख्मी होकर खून से लथपथ हो जाता है—फिर भी खाना नहीं छोड़ता है—उसी प्रकार संसारी व्यक्ति संसार की माया में पड़कर भी उससे मुक्त होने के लिये हरिनाम नहीं करता है।"

नव अवतारी श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर के तारक ब्रह्महरि नाम—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम हरे राम हरे हरे॥"

अपने ग्रन्थों में कई स्थानों पर हरिनाम माहात्म्य वर्णन किया है—

'श्रेष्ठाचार परचार हरे कृष्ण माला
बन्धु बले हेन होले जावे सब ज्वाला"
"हरे कृष्ण मन्त्र मोर रसनार धन"

इत्यादि ।

किन्तु वर्तमान महाप्रलय युग में प्रभुजी ने महाशक्तिशाली यह महाउद्धारण महामन्त्र का प्रवर्तन किया है—"हरिपुरुष जगद्बन्धु महाउद्धारण" । श्री भगवान् ने भिन्न भिन्न काल में भिन्न भिन्न नाम धारण किये हैं और काल के प्रयोजन के अनुसार नाम और लोला का प्रवर्तन किए हैं इससे किसी भी नाम को छोटा नहीं किया गया है । केवल समय के उपयोगी नाम का प्रवर्तन है ।

यह महाप्रलय का युग है । सृष्टि ध्वंस की ओर बढ़ रही है । सृष्टि की रक्षा करने के लिये, जगत को महाप्रलय के ग्रास से मुक्त करने के लिए यह "हरि पुरुष जगद्बन्धु महाउद्धारण" महानाम महामन्त्र आवश्यक है—प्रभुजी की यही इच्छा है । इस महानाम में सब नामों की शक्ति संचारित है, वर्तमान है । वर्तमान जगत को इसी नाम की आवश्यकता है । इस मन्त्र में किसी के मत या विश्वास पर आघात नहीं किया गया है । जीव के अधिकार या रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न नामों का प्रचार हुआ है । जिसे जिस नाम का प्रयोजन है वह उसी नाम का कीर्तन कर सकता है ।

हरि—निताइ-गौर-गोपी राधा श्याम—के मिले हुए स्वरूप हैं । जो पाप तापहारी, सर्व चिन्ताहारी सर्वेश्वर हैं वही हरि हैं । गुरु गौरांग गोपी राधा श्याम—यह सब मिलकर एक हरिनाम है ।

पुरुष—हरि ही एक मात्र पुरुष है । शेष सब प्रकृति है । ब्रह्मादि देवगण भी प्रकृति हैं । वही लीला-पुरुषोत्तम, परमतत्व परम 'पुरुष' सर्व हृदय में जो शयन किये हुए हैं उन्हीं को पुरुष कहा जाता है ।

जगद्बन्धु—जगत के नित्य बन्धु । जगन्नाथ ही जगद्-बन्धु हैं । प्रेम के बन्धन में बाँधने के लिए ही जगद्बन्धु नाम धारण करके अवतीर्ण हुए हैं । हरिपुरुष का प्रकाश नाम जगद्बन्धु है ।

महाउद्धारण—इस जगत को सर्व प्रकार के मालिन्य से पाप कलुष से विमुक्त करके जगत का फिर से शोधन करके पवित्रता लायेंगे—वही महात्राता महाउद्धारण कर्त्ता—अणु पर-माणु को भी स्वरूप का आस्वादन करायेंगे—इसीलिए—वह 'महाउद्धारण' हैं । (प्रभुजी की वाणी है, मैं झाड़ू लगाने वाला Sweeper हूँ झाड़ू देकर साफ purify करने के लिए आया हूँ)

प्रभुजी ने श्री हरिनाम नित्य कीर्तन के लिए उपदेश दिए हैं और साथ साथ नाम रूप और भक्ति आदि के नित्य पाठ करने के प्रयोजन पर भी उपदेश दिए हैं । उनका उपदेश है—"नाम जप ही जीवन है—जप करना ही एकमात्र पार्थिव अवलम्बन है ।"

भक्ति शास्त्र भागवत—सार कर अविरत

—बन्धुवाणी

(भक्ति शास्त्र भागवत को ही सार जानकर जीवन का अवलम्बन बन:ओ)

श्री हरिनाम करते समय साधक के भाव

श्री नाम कीर्तन और जप अपने इष्टदेव या आराध्य के सामने बैठकर करना ही श्रेय है। विग्रह को साक्षात मानना पड़ेगा। नाम, नामो और विग्रह—तीनों की शक्ति समान है। सत्य पूर्ण सत्य है। रूप, गुण, लीला स्मरण करते हुए नाम कीर्तन आवश्यक है। उनके रूप गुण लीला के सम्बन्ध में अपनी धारणा के अनुसार स्मरण करके कीर्तन करना उचित है। "वह सामने उपस्थित हैं" यह समझकर नाम करना होगा और अपने मन की आकुलता प्रार्थना एवं निवेदन मन ही मन रखना होगा। "मेरे प्राण प्रियतम भगवान् मेरे सामने उपस्थित हैं उन्हें मैं अपने मन की बात अकपट बताद्ँू" यही भावना आन्तरिक होनी चाहिये। आन्तरिक भाव से अगर मैं अपनी भावना को अपने सम्मुखस्थ विग्रह को बताद्ँू तो उसका उत्तर मुझे विग्रह से मिल जायगा। साधना के पूर्ण होने पर मेरे सामने के विग्रह साक्षात भाव से मुझे दर्शन देगें। यही सिद्ध अवस्था के रूप हैं। ऐकान्तिक भाव से उनकी चिन्तन करना होगा। उस समय दूसरी चिन्ता या दूसरा रूप मन से निकाल देना होगा। उस समय केवल "तुम और मैं" यही भाव रहेगा।

प्रणाम—नाम करने के बाद प्रणाम करते समय चिन्ता करना होगा कि यही मेरे प्रभु जी के चरण युगल हैं। अहा दोनों चरण कितने सुन्दर है। वह सर्वत्र विद्यमान हैं—यही जानकर मैं अपना सिर उनके चरणों पर रख दूँ—वह अपने अभय हाथों से मेरा सिर सहला रहे हैं—मेरे मनोवांछा को पूर्ण कर रहे हैं मुझे शान्ति और भरोसा दे रहे हैं। यह अन्तर में आने से जान लो कि प्रणाम पूर्ण है।

श्री श्री महानाम प्रचारण

श्री श्री महानाम प्रचारण

श्री श्री जगद्बन्धु सुन्दर के त्रयोदश दशा अर्थात् महाभाव दशा ग्रहण करने के कुछ वर्ष पूर्व ही श्री अंगन के सेवारत वीरभक्त श्रीपादमहेन्द्र जी और उनके सहकारी श्रीपादकुञ्जदास ने प्रभुबन्धु के एकान्त अनुरागी त्यागी ब्रह्मचारी भक्तों को लेकर श्री श्री महानाम सम्प्रदाय का संगठन किया था। प्रभु जगद्-बन्धु सुन्दर ने—"हरि पुरुष जगद्बन्धु महा उद्धारण" 'नाम को महानाम की आख्या दी है और महाप्रलय के ग्रास में पतित जगत की रक्षा का एक मात्र उपाय कहकर अपने स्वरचित ग्रन्थ में उल्लेख किया है।

श्री पादमहेन्द्र जो और श्री पादकुञ्जदास जी के नेतृत्व में पूर्व और पश्चिम बंगाल के हर जिले के प्रत्येक गांव में इसका महाप्रचारण छे वर्ष तक लगातार हुआ। लाखों मनुष्य प्रभु के नाम प्रेम से उन्मुख हो गये। चौबीस प्रहर, छप्पन प्रहर तक किसी किसी स्थान में नाम कीर्तन महोत्सव चला चौदह मादल छप्पन मादल और एक सौ बारह मादल नगर कीर्तन अनेक बार अनुष्ठित हुआ है। फरीदपुर श्री अंगन में कलकत्ते में और मैमनसिंह जिले में सहस्र मादल नगर कीर्तन ४-५ बार अनुष्ठित हो चुका है। सहस्र मृदंग नगरकीर्तन एक

अभिनव वस्तु है। इसमें एक हजार व्यक्ति मृदंग और दो-तीन हजार व्यक्ति करताल इस प्रकार २५-३० हजार व्यक्ति एक साथ नगर कीर्तन करने निकलते हैं।

१९०२ ई० में पटना में "आल इण्डिया कीर्तन सम्मेलन के उपलक्ष पर श्री पाद कुञ्जदास जी के नेतृत्त्व में श्री महानाम सम्प्रदाय आया था। उस समय समस्त पटना काशी महानाम के महारोल से गूंज उठी थी—महानाम की महाशक्ति को बहुतों ने अनुभव किया था। काशी में श्रीमद् कुञ्जदासजी के नेतृत्त्व में मासावधि काल महानाम संकीर्तन का प्रचार हुआ। काशीधामवासी अनेक साधु संन्यासी और जन साधारण इस कीर्तन से मुग्ध हुए।

श्री पादकुञ्जदास जी एक वर्ष तक कुछ भक्तों के साथ इलाहाबाद में रहकर इलाहाबाद और काशीधाम में महानाम कीर्तन प्रचार करते रहे। इससे श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य, श्री रमणी मोहन भट्टाचार्य, श्री हरि मोहन राय वकील श्री बेनीमाधव वन्द्योपाध्याय, श्री महादेवप्रसाद, श्री अयोध्याप्रसाद श्री माधवप्रसाद, श्री फकीरचन्द घोष, श्री बेनीमाधव घोष, श्री सुबोधचन्द्र वन्द्योपाध्याय, श्री प्रबोध वन्द्योपाध्याय, श्री परेश-वन्द्योपाध्याय प्रमुख अनेक व्यक्ति प्रभु जगद्बन्धु के परम भक्त हुए हैं और अद्यावधि इनके गृहों में श्री श्री प्रभु बन्धु की सेवा पूजा और नाम पूजा होती चली आ रही है।

प्रयाग में त्रिवेणी क्षेत्र के श्रीमद् प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के उद्योग से जो आल इण्डिया कीर्तन सम्मेलन हुआ था उसमें

भी श्री महानाम सम्प्रदाय निर्मंत्रित हुआ था और उसने श्री महानाम हरिनाम का प्रचार किया था। भारत के विभिन्न सम्प्रदायों की कीर्तनमण्डलियाँ जो प्रयाग में उपस्थित थीं, सभी इस सम्प्रदाय के कीर्तन से प्रभावित हुई थीं।

प्रयाग कुम्भ मेला, हरिद्वार कुम्भ मेला, नासिक कुम्भ मेला क्षेत्रों में यह सम्प्रदाय मासावधि काल रहकर चौदह मृदंग से नगर कीर्तन करता था और मासावधिकाल अखण्ड कीर्तन द्वारा श्री महानाम का प्रचार करता था।

श्री महानाम सम्प्रदाय के सेवक डा० महानाम व्रत ब्रह्मचारी M.A. Ph. D. ने १९३३ ई० में अमेरिका जाकर चिकागो शहर में अनुष्ठित विश्वधर्म सम्मेलन में (The Worlds Fellowship of Faith) योगदान पूर्वक वहाँ नव अवतारी बन्धु हरि की वार्त्ता की घोषणा की। उन्हें उक्त सम्मेलन का आन्तर्जातिक मन्त्री का पद प्राप्त हुआ और उन्होंने अमेरिका के ६३ शहरों में सम्भ्रान्त श्रोता मण्डलियों के सामने ३५४ भाषण दिये। इसके अलावा निमन्त्रित होकर उन्हें २९ विश्व विद्यालयों में और अनेक स्थानों में भाषण देना पड़ा। उनके भाषण के विषय थे भारत की संस्कृति का आध्यात्मिक वैशिष्ट्य, 'श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की देन, और प्रभु जगद्बन्धु को वाणी। उनके प्रचार के कारण अमेरिका के अनेक नर नारियों ने प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर को अपने अपने जीवन का आराध्य देवता बना लिया है।

१९३७ ई० में श्रीमान् डा० महानामव्रत ब्रह्मचारी ने लन्दन के विश्व धर्म सम्मेलन (World Congress of Faiths) में योगदान किया और वहाँ भी प्रभु की वार्त्ता की घोषणा की। आज भी वह देश विदेश में श्री श्री प्रभु के श्री ग्रन्थादि के प्रकाश द्वारा और भाषणों के द्वारा श्री श्री प्रभु और भागवती लीला का प्रचार कर रहे है।

फरीदपुर गोआलचामठ श्री अंगन में जो श्री महानाम कीर्तन यज्ञ १९२१ ई० में आरम्भ हुआ था वह आज तक अखण्ड भाव से चल रहा है। श्रीमद् गोपीबन्धु ब्रह्मचारी और डा० महानाम व्रत ब्रह्मचारी जी के नेतृत्व में त्यागी ब्रह्मचारी भक्तों के द्वारा ही यह कीर्तन यज्ञ चल रहा है। ३८ वर्षों से वर्तमान पू० पाकिस्तान के फरीदपुर में श्री अंगन में अनेक वाधा विघ्न का सामना करते हुए प्रभु का श्री महानाम यज्ञ चल रहा है। यह श्री श्री प्रभु का भुवनमंगल कार्य है। प्रभु की इच्छानुसार, प्रभु की एकादश दर्शी से जागरण के संकल्प से प्रभु के भक्त वृन्द चला रहे हैं।

श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर के आविर्भाव धाम प० बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के डाहापाड़ा के श्री श्री जगद्बन्धु धाम में परम पूज्य पाद श्रीमद् कुञ्जदास जी अपने अनुगत भक्तों की सहायता से प्रभु का सेवा कार्य और सामयिक कीर्तन यज्ञादि और विभिन्न स्थानों में प्रचार कार्य चला रहे हैं।

श्री श्री प्रभु के लीला स्थान फरीदपुर के बाकचर गांव के श्री अंगन में श्रीमद घोलाश्याम दास ब्रह्मचारी प्रमुख भक्तगण प्रभु के सेवाकार्यादि और उत्सवादि द्वारा प्रभु के कार्य को चला रहे हैं।

श्री श्री प्रभु के लीलास्थान ब्राह्मणकांदा में प्रभु के आश्रम में श्रीमद् यज्ञेश्वरदास जो प्रभु के सेवाकार्य में नियुक्त हैं।

कलकत्ते में ५९ नं० माणिक तला मेइन रोड में श्री श्री प्रभु का महा उद्धारण मठ नाम का एक आश्रम है। ब्रह्मचारी वृन्दावनदास जी और ब्रह्मचारी कृष्णदास जी मठ का परिचालन कर रहे है। श्री ग्रन्थादि के प्रकाशन और नाम कीर्तन द्वारा वहाँ प्रभु का प्रचार कार्य चल रहा है।

---

(४६)

श्रीमान् श्री कुञ्जदास जी का आगमन

प्रयागधाम में प्रभु बन्धु का प्रचार

दिनेश भट्टाचार्य

पूर्वी बंगाल के श्री हट्ट के निवासी दिनेश बाबू रोजगार धन्धे के लिए कुछ दिन बम्बई रहकर प्रयागधाम आये और शिक्षा बिभाग को पवित्र मानकर उन्होंने कर्नलगंज हाई स्कूल में शिक्षक का काम आरम्भ कर दिया। आपके पूर्वज शाक्त धर्मावलम्बी शक्ति के पुजारी थे। इसलिए दिनेश बाबू भी महाशक्ति माता कालिका के साधक थे। किन्तु उनका मन हरिनाम के लिये उत्सुक था। वह हरिनाम कीर्तन करने में परमानन्द लाभ करते थे। वह माता कालिका के आसन के सामने बैठकर या समय समय पर कीर्तन प्रेमियों के साथ मिलकर हरिनाम कीर्तन करते थे। खुद मृदंग बजाकर परम प्रेम से हरिनाम कीर्तन का रसास्वाद लेते थे।

उनके मन में दीक्षा मन्त्र ग्रहण करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होने पर वह गंगा जी के किनारे स्थित नाग वासुकी जा पहुँचे। वहाँ उनका साक्षात स्वनाम धन्य श्री हरेकृष्ण बाबा के साथ हुआ और उन से उन्होंने दीक्षा ग्रहण करने की

इच्छा प्रगट की। हरेकृष्ण बाबा के पास से इलाहाबाद निवासी कई विशिष्ट व्यक्ति दीक्षा ग्रहण कर चुके थे किन्तु दिनेश बाबू को दीक्षित करने से उन्होंने इन्कार कर दिया और कहा—'तुम्हारा गुरु मैं नहीं हूँ—वह शीघ्र ही आयेंगे तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी।" हरेकृष्ण बाबा की निर्लोभ और पूजाप्रतिष्ठाहीन भावनाओं से परिचत होकर दिनेश बाबू बहुत ही प्रभावित हुए और उनके उपदेश के अनुसार गुरु के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

इसके कुछ दिन बाद १९२५ ई० में श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु के त्यागी ब्रह्मचारी भक्त श्रीमद् गोपी बन्धु दास जी, श्रीमद् रसमयदास जी और ग्रन्थलेखक जय बन्धुदास प्रभु जी के कुछ कार्य से प्रयाग धाम आये और गुरु पथ प्रदेशा के रूप से वे दिनेश बाबू से परिचित हुए। दिनेश बाबू उन लोगों के साथ कीर्तन रस में डूब गये। एक दिन बन्धु कथा के प्रसंग पर जगद्बन्धुदास जी दिनेश बाबू से बोले—"दिनेश भइया अपनी आराध्यादेवी काली माता से कहिए कि हम लोग उनके लिये सुयोग्य वर ढूंढ़ लाये हैं–विवाह प्रस्तुत करें।" दिनेश बाबू का सारा शरीर कांप उठा वह बोले—"जयबन्धु भइया मुझे मालूम था कि शाक्तधर्मी वैष्णव धर्म को ग्रहण नहीं कर सकता किन्तु आप यह क्या कह रहे हैं?" जयबन्धुदास बोले—"माँ से आपको केवल वात्सल्यरस का आस्वादन हो सकता है वह भी व्रज भाव से उपासना करने पर किन्तु प्रभुबन्धु का साथ करने पर रस श्रेष्ठ मधुर रस का आस्वादन होता है।"

इसके बाद दिनेश बाबू माता जी और प्रभु जी की सेवा साथ साथ करने लगे। इसी समय एक दिन स्वप्न में दिनेश बाबू को प्रभु जी के दर्शन हुए। एक सप्तदशवर्षीय परम सुन्दर पुरुष पद्मासन लगाकर उपविष्ट है—दिनेश बाबू ने स्वप्न में देखा और उनकी कृपा का अनुभव किया।

न जाने क्यों—दिनेश बाबू और उनके भाई रमणी बाबू के साथ जयबन्धुदास का प्रेमसम्बन्ध दिनोदिन दृढ़ होता गया। श्री अंगन लौटते समय जयबन्धुदास उन दोनों को प्रभुजी के जन्मोत्सव के समय फरीदपुर के श्री अंगन जाने के लिए विशेष रूप से कह गये। दिनेश बाबू ने कहा कि अगर प्रभुजी की इच्छा होगी तो वह कोई न कोई उपाय निश्चय ही कर देंगे। इस उपाय के पाने में भी दोनों भाइयों को प्रभुजी की कृपा का विशेष अनुभव हुआ।

दिनेश बाबू परम आनन्द के साथ फरीदपुर श्री अंगन के लिये रवाना हो गये। लेकिन अपने ब्राह्मणत्व के कट्टरपन से भी मजबूर थे। रास्ता भर सोचते जाते थे कि श्री अंगन तो जा रहा हूँ किन्तु वहां तो जातिवर्ण भेद नहीं हैं—फिर वहाँ का प्रसाद खाना कैसे होगा ? ऐसा अनाचार तो ब्राह्मणधर्म का विरोधी है।

सोचते सोचते पहुंच तो गये। स्टेशन पर उतरकर श्री अंगन की तरफ रवाना हो गये। दूर से श्री अंगन में होते हुए कीर्तन की ध्वनि उनके कानों में पहुँची—जैसे जैसे पास आते गये ध्वनि सुस्पष्ट होने लगी। मृदंग करताल के साथ नामगान

उनके कानों से हृदय में पहुँच कर उन्हें पुलकित करने लगा। वह न जाने क्या हो गये। वह चल नहीं पा रहे थे, उनके पैरों ने मानों जबाब दे दिया, किसी तरह श्री अंगन पहुँचकर मन्दिर के सामने प्रणाम करके कीर्तन रज में लोट कर उठ खड़े हुए। उनके ब्राह्मणत्व का अभिमान कीर्तन ने मिटा दिया। वहां की सभी बातें उन्हें अभिनव लगीं। उनको लगा कि ऐसा कीर्तन उन्होंने कभी नहीं सुना। ऐसा आनन्द धाम भी कभी नहीं देखा। जिधर भी देखा—जिसे भी देखा सब आनन्द में मग्न हैं। श्रीमद् महेन्द्र जी और कुञ्जदास जी दिनेश बाबू की भक्ति देखकर मुग्ध हो गये। कभी कभी दिनेश बाबू कुञ्जदासजी के चरणों के निकट बैठकर प्रभुजी की लीलाओं को सुनते थे। कुञ्जदास जी के त्याग और वैराग्य के आदर्श से वह मोहित हो गये। कुञ्जदास जी से उन्होंने अनुरोध किया अगर कुञ्जदास जी कभी पश्चिम जायें तो इलाहाबाद में उनके घर एकबार निश्चय ही दर्शन दें। कुञ्जदास जी ने स्वीकार कर लिया।

दिनेश बाबू को आहार निद्रा का ध्यान ही नहीं रहा। वह पागल से हो गये और दृश्यत: वह पागल से लगने भी लगे। सर्वदा रजमण्डित देह, अपने ही आप बकते रहना-कभी भक्तों के चरणों पर प्रणाम करके प्रार्थना करना—कभी श्री अंगन के कुत्ते को सर पर उठाकर नाचने लगना। नाम प्रेम में वह मतवाले हो गये—शरीर रूखा—कपड़े मैले। प्राय: पन्द्रह दिन इस तरह बिताने के बाद वह इलाहाबाद को रवाना

हुए । रास्ते में भी वह जोर जोर से गा उठते थे–"जय जगद्बन्धु बोल–हरिबोल" । अपनी धुन में वह इतने मग्न थे कि मोटर में अपने कपड़े–प्रभुजी की श्री मूर्त्ति और करताल छोड़ गये । सुना है कि रात में जब वह घर पहुंचे तो कोई उन्हें पहिचान न सका । दिनेश बाबू ने जब अपना परिचय दिया तो उनकी अवस्था देखकर घर में रोना आरम्भ हो गया । अचानक दिनेश बाबू को ख्याल आया कि मोटर में श्री मूर्त्ति और करताल छोड़ आये हैं । उन्होंने प्रण कर लिया कि जब तक श्री मूर्त्ति और करताल नहीं मिलेंगे तब तक वह आहार नहीं करेंगे । सौभाग्य से बस स्टेशन जाने पर श्री मूर्त्ति और करताल मिल गये और तब दिनेश बाबू ने जल ग्रहण किया ।

इलाहाबाद लौटने के पश्चात् वह प्रभुजी की सेवा और नाम लेकर आनन्द से दिन बिताने लगे । किन्तु इतने अनुभव की प्राप्ति के बाद भी पूर्व संस्कार फिर जाग उठा । संस्कार और स्वभाव छोड़े भी नहीं छूटता है । लेकिन प्रेम, भक्ति और ब्रह्मा के वांछित धन प्रभुबन्धु हरि को प्राप्त करने के लिए प्रभूत मूल्य देना पड़ता है । दिनेश बाबू परम समस्या में पड़ गये–"काली माता को पूजें कि कृष्ण को पूजें" । इस तरह कुछ दिन बीत गये । एक दिन स्वप्न में दिनेश बाबू ने देखा–वह बच्चा बन गये हैं और माता कालिका उन्हें उठाकर पद्मासन से बैठे हुए प्रभु जगद्बन्धु के चरणों पर रखते हुए कह रही है–"आज से तू इनका है" । उनकी सारी अशान्ति दूर हो गयी । परम दयालु प्रभु भक्त को दुःख नहीं पाने देंगे इसलिये अप्रत्याशित रूप से उन्होंने समस्या का समाधान कर दिया और इसी समय भक्ताग्रगण्य वैष्णवचूड़ामणि कुञ्जदास जी आ उपस्थित हुए ।

दिनेश बाबू कर्नलगंज की एक गली में रहते थे । उस गली में किसी का मकान आसानी से ढूंढ निकालना असम्भव था किन्तु कुञ्जदास जी के आगमन से वह एक महातीर्थ में रूपान्तरित हो गया । इलाहाबाद के प्रसिद्ध वकील हरिमोहन-राय, एंग्लो बंगाली कालेज के वाइस प्रिंसिपल श्रीफकीर-चन्द्र घोष, वकील गोपाल गोविन्द बाब इत्यादि प्रमुख नाग-रिकों के नित्य समागम मे दिनेश बाबू का घर मुखरित हो उठा । कुञ्जदास जी के आदर्श और मधुर हरिनाम के उपदेश ने सब को मुग्ध कर दिया । देखते देखते प्रभुजी की जन्म तिथि का दिन आ पहुँचा । दिनेश बाबू की ऐकान्तिक इच्छा थी कि जन्मतिथि पर अष्ट प्रहर नामकीर्तन हो । कुञ्जदास जी की भी वही इच्छा थी । काशीधाम से भक्तों का आगमन हुआ । परमानन्द से अधिवास कीर्तन हो गया । कुञ्जदास जी के आगमन के बाद से टहल कीर्तन, नगर कीर्तन, सान्ध्य कीर्तन आरम्भ हो गया था । इससे मुहल्ले के कुछ पेंशनरों को जो कि अपने समय को व्यर्थ की बातों और कर्मों में बिताते थे, बुरा लगा । दिन रात जय जगद्बन्धु बोल हरिबोल की ध्वनि उन्हें कड़ुवी लगने लगी । वे इसे बन्द कराने का उपाय सोचने लगे ।

उत्सव के एक दिन पहले वे इसे बन्द कराने के नाना उपाय सोचने लगे। उन्हें असाध्यसाधनकारी रबिन चटर्जी याद आया। उन्होंने तय कर लिया कि उसी की सहायता से समस्या का समाधान किया जायगा। रबिन उसी मुहल्ले में ही रहता है। मुहल्ले के बड़े बूढ़ों की बात वह टाल नहीं सकेगा और उन्हें उस मुसीबत से छुटकारा दिला सकेगा। रबिन के पास खबर भेजी गई। खबर पाते ही वह चला आया।

रबिन चटर्जी का परिवर्तन

रबिन चटर्जी केवल भारत में ही नहीं सारी पृथ्वी में विख्यात था। उसकी बराबरी के तैराक उस समय कम ही थे। एक साथ ८८ घण्टे तैर कर रेकार्ड कायम करना उसी का काम था। किसी भी अन्याय को वह अन्याय नहीं समझता था। सुना जाता है कि अपने जीवन में उसने कोई भी अन्याय करना नहीं छोड़ा। मगर यह सब सुनो हुई बातें हैं। कभी कभी उन्नतसत्व के व्यक्तियों की रुचि असत् मार्ग पर जाती देखी गई है। मगर बाद में वे ही जगत प्रसिद्ध हो गये हैं।

कर्नलगंज के वयोवृद्धों ने रबिन बाबू से कहा—"बेटा रबिन हम लोग बड़ी मुसीबत में फंस गये हैं। इस दिनेश भट्टाचार्य ने बड़ा ही अत्याचार आरम्भ कर दिया है। इलाहाबाद में हम लोग बराबर शान्तिपूर्वक रहते आए हैं मगर आज एक महा विपद आ पड़ी है। तुम इसका कोई प्रतीकार करो। बेटा बोलो करोगे न ?"

रबिन बोला—"आप लोग पहले मुझे यह तो बताइए कि विपद कैसी है। मुझसे अगर सम्भव होगा तो मैं जरूर ही उससे आप लोगों मुक्त कर दूंगा।" बुड्ढों को कुछ भरोसा मिला तो कहने लगे—"इस दिनेश भट्टाचार्य के घर न जाने कहाँ से एक बाबा जो आया है दिन रात सुबह शाम मृदंग और करताल पीट पीट कर और जय जगद्बन्धु बोल हरिबोल हरिबोल चिल्लाते चिल्लाते उसने हम लोगों को तो बहरा कर ही दिया है। साथ साथ बच्चों का लिखना पढ़ना भी बन्द ही समझो। हम लोग शान्ति से न खा ही सकते हैं न सो ही सकते हैं। सुनते हैं कि कल दिन रात यही चिल्ला चिल्ली चलेगी। हिन्दुओं के तेतीस करोड़ देवता तो थे ही। अब सुनते हैं कि एक नये देवता का आविर्भाव हुआ है। उसका नाम जगद्बन्धु है। अब बेटा तुम हम लोगों को इस मुसीबत से छुड़ाओ।"

महा उत्साह से रबिन बोला—"यह कौन कठिन काम है। मैं क। अपनी पार्टी लेकर आऊंगा और उनक मृदंग करताल तोड़ फोड़ दूंगा। बाबा जी और कीर्तन करने वालों को मार मार कर ठीक रास्ते पर ला दूंगा। आप लोग घबड़ायें नहीं यह सब मैं हमेशा के लिये बन्द करा दूंगा" बुढ़ों ने आराम की स्वास ली। रबिन ही एक आदमी है जो कि यह काम कर सकता है और कौन कर सकता है ? अभी तो कुछ दिन पहले रबिन ने दिनेश बाबू को जूते से मारा था।

शाम को रबिन अपनी पार्टी लेकर दिनेश बाबू के घर के पास आ गये—उनके पास एक सीटी थी। सरदार जो

ठहरे। अपने साथियों को गली के द्वार पर रखकर वह भीतर गया। जाते समय कह गया कि सीटी बजते ही वे सब पहुँच जायँ और मृदंग करताल तोड़ फोड़ कर बाबाजी और कीर्तन करने वालों को मार पीट कर उत्तम शिक्षा दें।

रबिन तो भीतर पहुँचा। जिन्होंने देखा वे सब सिहर उठे कि न जाने आज दिनेश बाबू पर कौन सी बिपद का पहाड़ टूट पड़े। रबिन का चरित्र किसी को अज्ञात न था। उन्हें यह अच्छी तरह से मालूम था कि रबिन कीर्तन करने के लिए नहीं गया था। मगर न जाने क्या हो गया? रबिन का तेज घट गया। नाम कीर्तन सुनते ही और श्री श्री जगद्बन्धु सुन्दर के श्री मूर्ति के दर्शन मात्र से वह बदल गया। वह अपने आने का उद्देश्य भूल गया। दिनेश बाबू कीर्तन कर रहे थे। रबिन ने उनसे पूछा—"बाबाजी कहाँ हैं?" दिनेश बाबू चिन्तित हो उठे—"न जाने इस पापी के दिल में क्या है? आज न जाने क्या अनर्थ हो जाय।" जो भी हो दिनेश बाबू ने इशारे से कुञ्जदास जी जिस कमरे में थे वह कमरा दिखा दिया।

रबिन कमरे में गया और कुञ्जदास जी को देखते ही कांपते कांपते गिर कर बेहोश हो गया। उसके मुँह से फेन निकलने लगा। उसकी सारी शक्ति महशक्तिधर भक्त के दर्शन मात्र से ही समाप्त हो गयी। पास ही सोते हुए रमणी बाबू के सर पर हाथ फेर कर कुञ्जदास जी ने उन्हें जगाया। रमणी बाबू रबिन की अवस्था देखकर आश्चर्यान्वित हो गये। वह कुछ भी समझ न सके। सर पर पानी का छींटा देते देते

रबिन का होश लौटा। उसे उठाकर बैठा दिया गया। रबिन अपने जीवन के सब कुकर्मों का वर्णन करने लगा पर कुञ्जदास जी ने उसे रोक दिया और दीवार पर लिखे हुए महानाम महामन्त्र को पढ़ने के लिए कहा। रबिन पढ़ न सका। तब कुञ्जदास जी ने एक एक कर नाम मन्त्र उससे उच्चारण कराये और उसे महाप्रसाद और श्री चरणामृत दिलाया। रबिन धीरे से स्थिर बैठा रहा। हिंसा भावना उसके हृदय से लुप्त हो गई थी। स्पर्शमणि के स्पर्श से रबिन सोना बन गया।

कुञ्जदास जी ने रबिन को एक श्रीमूर्ति भी दी। शाम को जब कुञ्जदास जी कीर्तन करने गये तो वह भी पीछे पीछे गया। उस समय दिनेश बाबू एक बड़ा पंखा लेकर कीर्तन करने वालों को हवा दे रहे थे। कमरे के भीतर घटी हुई घटना का उन्हें ज्ञान न था। रबिन दिनेश बाबू के हाथ से पंखा लेने गया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। उन्हें डर था कि कहीं रबिन पंखे से मारपीट न आरम्भ कर दे। कुञ्जदास जी ने दिनेश बाबू से रबिन के हाथ में पंखा देने का इशारा किया तो दिनेश बाबू ने पंखा दे दिया। रबिन ने अपनी शक्ति को सेवा कार्य में लगाया। रबिन को भक्त कृपा से सेवा का आश्चर्यमय भाग्य मिला। रबिन के इस परिवर्तन से उपस्थित मण्डली के प्रायः सभी आश्चर्यान्वित हुए। जिन प्रभु ने अपनी गौरांग लीला में जगाई मधाई जैसे पापियों का उद्धार किया उनके लिए रबिन का उद्धार कौन से आश्चर्य की बात है? रबिन का जीवन धन्य हो गया।

उधर गली के द्वार पर इन्तजार करते हुए रबिन के साथियों के धीरज का बांध टूटने लगा, इन्तजार की भो हद होती है। दूसरों के साथ वे भो मकान में घुस पड़े। भीतर जाकर उन्होंने जो कुछ देखा उन्हें अपनो दृष्टि पर विश्वास न रहा। कहाँ वे इस इन्तजार में थे कि रबिन का इशारा पाते ही भीतर आकर मृदंग आदि को तोड़ फोड़ कर उपस्थित व्यक्तियों को मार पीट कर नरमेध यज्ञ बना देंगे और यहाँ रबिन पंखा लेकर कीर्तन करने वालों को हवा कर रहा है। वे मन ही मन क्षुब्ध हुए अपमानित सा अनुभव करने लगे। ऐसा होना स्वाभाविक ही है—क्योंकि उन लोगों का धर्म पालन नहीं हुआ।

सन्ध्या आरती कीर्तन समाप्त होते होते रात अधिक हो गयी। सब घर लौटने लगे। रबिन की पार्टी भी लौट चलो। रबिन के मित्रों ने रबिन से पूछा—"अच्छा, तू ने सीटी न बजायी तो कोई बात नहीं। हम लोग खड़े रहे। वह भी मान लिया। लेकिन तू हवा क्योंकर रहा था?" रबिन बोला—"भाई जो होना था सो हो गया। अब मुझ से यह सब न पूछो।"

सुना है कि रबिन बाबू (अब तो वह स्वर्ग में हैं) प्रभुजी को अपना इष्ट मानते थे और कुञ्जदास जी को गुरु मानते थे। कभी कभी श्री धाम डाहापाडा और कुञ्जदास जी की खबर भी लेते थे।

श्रीपाद कुञ्जदास जी दिनेश बाबू के घर ही रहने लगे। भजन कीर्तन भो समान भाव से चल रहा था। स्थानीय अधिवासी भी अब विरोध नहीं कर रहे थे। इसके कुछ दिन बाद कुञ्जदास जी के स्नेह पात्र जयबन्धुदास साथ में विजयबन्धुदास और आनन्ददास नाम के दो ब्रह्मचारी भक्त कुञ्जदास जी से आ मिले। प्रबल उत्साह से कीर्तन प्रचार आरम्भ हो गया घर घर में कीर्तन आरम्भ हुआ। कर्नलगंज, लरेन्सगंज और कटरे के बहुत से मकानों में कोर्तन होने लगा और प्रभु बन्धु की सेवा प्रतिष्ठित हुई।

कुञ्जदास जी सोचने लगे कि अगर इलाहाबाद शहर के मध्य में कहीं रहने का स्थान होता तो प्रचार की बड़ी ही सुविधा होती। प्रभुजी की इच्छा से हिवेट रोड पर वसु कैंसिल में उनको रहने का स्थान मिला। वहाँ फिर प्रेम का सागर बना दिया गया कीर्तनानन्द चलने लगा, टहल कीर्तन, और लोगों के घर घर में कीर्तन शुरू हो गया।

श्री भगवान के अधिकारी चिन्तित भक्त साधु महाजनों के प्रचार के लिए विज्ञापन की आवश्यकता नहीं होती है। प्रभुजी के नाम शक्तिधारी कुञ्जदास जी की भक्ति महिमा चारों ओर फैल गयी। नित्य प्रतिदिन नये नये लोगों का समावेश होने लगा। बहुतों ने प्रभु जी के सम्बन्ध में जानने का आग्रह भी प्रगट किया।

एक दिन वहाँ अचानक उत्तर प्रदेश के तत्कालीन प्रसिद्ध वकील हरिमोहन राय उपस्थित हुए और न जाने क्यों वह रोज ही आने लगे। एक दिन उनके पूजा मण्डप में कीर्तन होने का निश्चय किया गया। उन्होंने श्रीपाद कुञ्जदास जी

को लाने के लिए अपनी मोटर गाड़ी भेजो और दूसरों के लिये इक्का गाड़ी का बन्दोवस्त कर दिया । मगर त्याग वैराग्य के आदर्श कुञ्जदास जी ने मोटर पर सवार होने से इन्कार कर दिया और दूसरों के साथ इक्का गाड़ो से गये और महा आनन्द के साथ वकील साहब के घर में कीर्तन हुआ ।

एक दिन हरिमोहन बाबू के गुरु सुविख्यात माधवदास जी के आश्रम में कीर्तन की व्यवस्था की गई । उस दिन आनन्द की सीमा न रही और सीमा रहेगी कैसे ? सिद्ध वैष्णव के साधन पीठ पर हरिनाम का आस्वादन और आनन्द को तुलना कहाँ है ? हरिमोहन बाबू ने कहा—"इस स्थान पर स्वामी विजय कृष्ण, स्वामी विवेकानन्द आये थे आज आपके आगमन से मैं अपने को धन्य मान रहा हूँ ।

देखते देखते श्री राधा कृष्ण का झूला उत्सव आ गया । कुञ्जदास जी के मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि श्री प्रभु जी का भी झूला उत्सव मनाया जाय । चौबीस प्रहर कीर्तन का प्रोग्राम मनाया गया । काशीधाम से भक्तों को निमन्त्रण दिया गया । इस चौबीस प्रहर कीर्तन और प्रभुजी की सेवा का भार हरिमोहन बाबू ने लिया ।

उत्सव के आरम्भ में ही प्रभुजी ने एक नया तमाशा दिखाया । प्रबोधचन्द वन्द्योपाध्याय वसु केसिल में रहते थे । वह इन कीर्तनों में न तो कभी योगदान ही करते थे और न इसकी कोई खबर ही रखते थे । उनको यह सब अच्छा नहीं लगता था । कितने व्यक्ति आते जाते मगर

प्रबोध बाबू यह सब पागलों का कारबार समझते थे । प्रबोध बाबू के बड़े भाई सुबोध बाबू कर्नलगंज में रहते थे । उनके घर में प्रभुजी की सेवा पूजा होती थी । सहज सरल भक्ति और विश्वास था उनका । प्रबोध बाबू अपने बड़े भाई के घर जाते थे । प्रभुजी की श्री मूर्ति पर कभी कभी दृष्टि पड़ ही जाती थी कभी कभी प्रभुजी के सम्बन्ध में दो चार बातें भी होती थी ।

एक दिन प्रबोध बाबू ने सुना कि प्रभुजी ने स्वप्न में कहा है—"मुझे लाल हलुवे में लाल चीनी क्यों डाली । जैसे कि सफेद चीनी से हलुवा बनने से उनको ज्यादा आनन्द देता है इस स्वप्न का विवरण सुनते ही प्रबोध का हृदय परिवर्तित हो गया । उनके मन के ऊपर का आवरण हट गया । प्रभुजी और उनके भक्तों को उपेक्षा की दृष्टि से देखना उचित न होगा । प्रबोध के घर के बगल का घर राधानाथ बाबू का था । वहीं पर कीर्तन होता था । आनन्द से उद्वेलित प्रबोध बाबू कीर्तन में नाचने लगे । फिर कुञ्जदास जी के चरण प्रान्त में बैठकर उन्होंने नाम उपदेश श्रवण किया । वह सर्वदा के लिए प्रभुजी के अपने हो गये । केवल वह अकेले नहीं उनके और भाइयों ने भी निरोद वन्द्योपाध्याय और परेश वन्द्योपाध्याय ने प्रभुजी की शरण लेली ।

झूला उत्सव में प्रबोध बाबू ही प्रधान कर्मी होकर अपने सांसारिक कामों को भूल गये । मन प्राण से वह उत्सव के काम में लग गये ।

चौबीस पहर महानाम कीर्तन उत्सव हुआ। उत्सव प्रांगण ने विचित्र शोभा धारण की। एक मनोरम सिंहासन पर बन्धु हरि की परमसुन्दर सर्वसुलक्षणयुक्त श्री मूर्ति को स्थापित किया गया। मंगल घट की स्थापना हुई। मंगल शंख नाद से चारों दिशाएँ गूंज उठीं। भक्तवर कुञ्जदास जी ने मंगल आरती कर कीर्तन आरम्भ किया। प्रेमी भक्त आनन्ददास जी ने विचित्र भंगिमा के साथ आरती आरम्भ की। प्रसिद्ध मृदंग वादक विजय बन्धु दास जो संगत करने लगे। जय-बन्धुदास श्री करताल लेकर कुञ्जदास जी के पश्चात् खड़े हो गये। बन्धु हरि के प्रेमाकृष्ट इलाहाबाद निवासी दिनेश बाबू रमणी बाबू, सतीश मुखर्जी, हरिमोहन राय, सुबोध बैनर्जी, गोविन्द गोपालराय, मोहिनी राय, तरनी राय, फकीर चन्द्र घोष, बेनोमाधव घोष, मास्टर महादेव प्रसाद, प्रमुख अनेक भक्त और हरिनाम रस के रसिक भक्तों के योगदान करने पर विशाल अंगन में सुई रखने तक की जगह न बची। कुञ्जदास जी के मतानुसार कीर्तन चलने लगा।

यथासमय सन्ध्या आरती कीर्तन आरम्भ हुआ। आनन्ददास जी के अपूर्व आरति दर्शन कर और विजय बन्धु दास जी के मधुर मृदंग बादन और कुञ्जदास जी के अमृतवर्षी कीर्तन श्रवण कर असंख्य भक्त मण्डली आनन्द से आत्महारा हो उठी।

कीर्तन कल्लोल धीरे धीरे बढ़ने लगा, कीर्तनानन्द भी सीमा पार करने की चेष्टा करने लगा। काशी धाम से आये हुए श्री मोहिनी राय, नवकुमारदास प्रमुख कुछ भक्त

जब मृदंग करताल लेकर कीर्तन में योग देने के लिए आये तो कीर्तन प्लावन से मानो सारा इलाहाबाद प्लावित होने लगा।

दूसरे दिन दोपहर को कीर्तन के मूल गायक हुए श्री मोहिनी राय। उनका कंठ सप्तम सुर में सुधा वर्षण कर रहा था तो श्री राधानाथ राय जी अश्रु गद् गद् होकर कुञ्जदास जी से बोले—भइया मेरा घर तो श्री वृन्दावन हो गया" कीर्तनानन्द भाषा में प्रगट नहीं किया जा सकता है। वह तो केवल अनुभूति का विषय है।

इस तरह तीन दिन तीन रात लगातार कीर्तन होने के बाद नगर संकीर्तन आरम्भ हुआ। दोनों हाथ उठाकर रास्ता दिखाकर सब से पहले रहे प्रबोध बैनर्जी। नाम की ध्वनि आकाश पाताल को मुखरित कर चली कितना सुन्दर कीर्तन कितना सुन्दर मृदंग बादन। जिसने भी देखा, आकर कीर्तन में योगदान करने लगा। नाम प्रेम का प्रबल स्रोत सबको बहा ले चला। अचानक सबकी दृष्टि सफेद और चमकीले राज हंसों के एक दल पर पड़ो वे धीरे धीरे कीर्तन के आगे आगे उड़े चले जा रहे थे। इस मधुर दृश्य को देखकर अभक्त जय बन्धु दास का कठिन हृदय भी द्रवित हो गया।

इस कीर्तनोत्सव के बाद हर मुहल्ले के घर घर में नित्य कीर्तन होने लगा।

वाइस प्रिन्सिपल फकीर बाबू के घर अपूर्व कीर्तन कोई नहीं भूल सकता। वहाँ कीर्तन मानो मूर्तिमान हो उठा।

नाम ने मूर्त्ति को प्रगट कर दिया। अधिकारी भक्त ने अनुभव किया दर्शन किया, बन्धु हरि के मोहन रूप को अपने चित्त पर अंकित कर लिया। बहुतों ने कीर्तन आंगन के रज को संग्रह करके रख लिया। प्रत्यक्ष द्रष्टा जयबन्धुदास केवल अवाक् हो कर देख देख अपने जीवन को सफल कर रहे थे, और अपने जीवन को सार्थक मान रहे थे। इलाहाबाद वासियों को यह एक नवीन दृश्य था। इस तरह इलाहाबाद नगर को कीर्तनानन्द में प्रवाहित करके श्रीपाद कुञ्जदास जी अपने दल-बल के साथ काशीधाम के लिए रवाना हो गये।

काशी धाम

बंगालियों के जीवन में दुर्गोत्सव एक परमानन्द का साधन है। इसी समय बंगाल से बहुत धनवान व्यक्ति दुर्गोत्सव के आनन्द पाने के लिए चले आते हैं और पुण्य सलिला श्री गंगा जी में अवगाहन स्नान करके पुण्य भी संचय करते हैं। दशाश्वमेध पार्क में बड़े धूमधाम के साथ बार बाड़ी दुर्गा पूजा होती है। ऐसे शुभ अवसर पर श्रीपाद कुञ्जदास जी अपने सम्प्रदाय के साथ काशीधाम आ पहुंचे। साथ में इलाहाबाद के भी कुछ गृही भक्त थे। दशाश्वमेध पार्क में परमानन्द से कीर्तन हुआ कीर्तन के अन्त में मास्टर साहब महादेव प्रसाद जी ने सुमधुर हिन्दी भाषा में एक दीर्घ भाषण दिया और जनता को प्रभु जगद्बन्धु के विषय में बहुत कुछ सुना दिया।

वाराणसी के गोधुलिया श्री पूर्ण कुण्डु महाशय के घर में कुछ दिन रहना पड़ा था। उस समय कुण्डु महाशय ने प्रभुजी

के सम्बन्ध में बताया था—"मैं और प्रभुजी के भक्त बकुलाल विश्वास कलकत्ते में एक ही 'मेस' में रहे थे। बकुलाल प्रभुजी के एक निष्ठ भक्त थे। शायद भक्त के आकर्षण से प्रभु कभी कभी मेस में आते थे। प्रभुजी के रहने के लिए स्वतन्त्र व्यवस्था थी। साधारण साधु महापुरुषों में और प्रभुजी में भेद था। अगर प्रभुजी से रुपये के लिए कहा जाता तो वह बिस्तरे के नीचे से १००) रुपये का नोट निकाल देते। बकुलाल के साथ वह एकान्त में न जाने क्या बातें करते थे। वह बातें केवल बकुलाल और प्रभु ही जानते थे। मेरा बिचार है कि अगर प्रभुजी चाहते तो असंख्य मठ मन्दिर आश्रम बनवा सकते थे। मगर जो जीव के हृदय सिंहासन पर बैठकर उनके शान्ति विधान करने के लिए आये हैं उनको स्वतन्त्र मठ मन्दिर आश्रम की क्या आवश्यकता है? बकुलाल ने उन्हें जान लिया था किन्तु मैं न जान सका।"

कृपाश्रित रमणी भट्टाचार्य

कुञ्जदास जी मुंगेर में भक्तवर डा० मणिमोहन चक्रवर्त्ती के घर में ठहर कर वहाँ प्रभु का प्रचार कार्य सम्पन्न करके इलाहाबाद में दिनेश बाबू के घर आये। दिनेश बाबू को बड़ा ही आनन्द हुआ। कुञ्जदास जी की तरह भक्त को अपने घर में पाकर उन्हें मानो आकाश का चाँद मिल गया। केवल 'हरि-कथा' 'बन्धुकथा' के आनन्द में डूबे हुए हैं। मगर वह थे स्कूल मास्टर—आमदनी बहुत ही कम थी। उनका चचेरा छोटा भाई रमणी मोहन भट्टाचार्य उनके साथ ही रहता था।

रमणी बाबू ए० जी० आफिस में काम करते थे। गोपेशचन्द्र-दास इन्हीं लोगों के देश के रहने वाले थे। नौकरी की खोज में आकर इन्हीं के साथ में रहते थे। रमणी बाबू की उम्र के होने के कारण दोनों परम मित्र थे। मगर इन दोनों को यह बात पसन्द न थी कि दिनेश बाबू कुजदास जी को भी अपने साथ रक्खें। "न जाने कहाँ का कैसा आदमी है? हमारे साथ क्यों रहेगा?" यही दोनों का मनोभाव था। बाबा जी को लेकर भाई साहब की इतनी उछल कूद भी इन्हें पसन्द न थी। दिनेश बाबू जब कुञ्जदास जी के साथ कीर्तन करते तो अगर वे दोनों न रहें तो बुरा मालूम होता है और भाई साहब भी बुरा मान सकते हैं। यही सोचकर पीछे सटककर दोनों कुछ देर बैठते थे। परम अनिच्छा के साथ एक आध बार नाम कीर्तन भी कर लेते थे। कुञ्जदास जी अपने स्वभाव के अनुसार रमणी बाबू पर भी उतनी ही स्नेह–प्रीति रखते थे जितनी दिनेश बाबू पर। मगर अपने मित्र गोपेश बाबू के साथ रमणी बाबू दिनेश बाबू की आड़ में उनकी इस नासमझी की आलोचना करते थे। उन दोनों के लिए कुञ्जदास जी का वहाँ रहना पसन्द न था। रमणी बाबू ने कीर्तन में जाना कम कर दिया। केवल दो मित्र मिलकर यही सोचते थे कि किस तरह कुञ्जदास जी को निकाल बाहर करें। दोनों ने मिलकर तय कर लिया कोई छोटा बहाना कर बाबाजी को निकाल बाहर करेंगे। भाई साहब तो कुछ कर ही न सकेंगे। बाबाजी का तो केवल लोटा कम्बल ही है। डराने से भाग जायेंगे। सिर्फ बड़े भाई की खातिर दो चार दिन

बरदाश्त कर लिया। गोपेश बाबू स्वभावतः कुछ कठोर प्रकृति के थे। रमणी बाबू भी कुछ कुछ उसी प्रकार के थे।

एक दिन सुबह दिनेश बाबू टियूशन पर गये थे। गोपेश बाब बैठक में तम्बाकू पी रहे थे। रमणी बाबू पाखाना जाने की तैयारी कर रहे थे। कुञ्जदास जी बम्बा के पास ही दंतधावन कर रहे थे। रमणी बाबू चप्पल पहन कर पाखाना जा रहे हैं यह देखकर कुञ्जदास जी आपत्ति प्रगट करते हुए बोले—"मणि भाई जूता पहनकर पाखाना नहीं जाना चाहिये।" बस फिर क्या था! बारूद में आग लग गयी। रमणी बाबू आग बबूला होकर हाथ का लोटा उठाकर कुञ्जदास जी पर हमला करने को तैयार हो गये—गोलमाल सुनकर गोपेश बाबू दौड़ आये और "क्या कर रहे हो" कहते हुए उन्हें रोकने लगे। कुञ्जदास जी आश्चर्यान्वित होकर केवल "जय जगद्बन्धु जय जगद्बन्धु" कह रहे हैं। श्री नाम ने मन्त्रौषधि सा काम किया। नाम कानों में पहुँचते ही रमणी बाबू के मन से क्रोध और हिंसा दूर हो गये। वह कुञ्जदास जी के पांवों पर गिर पड़े। उसी दिन नामोपदेश ग्रहण करके वह सर्वदा के लिए प्रभुजी के सेवकों में हो गये।

एक बार रमणी बाबू अपने जन्मस्थान श्रीहट्ट जाते समय फरीदपुर श्री अंगन को जा रहे थे। फरीदपुर स्टेशन पर उतर कर वह सोच ही रहे थे कि अनजान स्थान पर अकेले श्री अंगन कैसे जाया जाय, कि उनकी दृष्टि श्री अंगन के कौपीन धारी एक त्यागी भक्त पर पड़ी। 'जय जगद्बन्धु'

कहते ही भक्त रमणी बाबू के पास आये और उन्हें श्री अंगन में ले गये। श्री अंगन की अखण्डकीर्तनध्वनिसुधा कानों में पड़ते ही वह आनन्द से आत्म विस्मृत होकर वेशभूषा लेकर ही श्री अंगन के रज में लोटने लगे और श्री मन्दिर को परिक्रमा करने के बाद श्री श्री प्रभु के महानाम सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता और सर्व श्रेष्ठ भक्त सेवक श्री श्रीपाद महेन्द्र जी को प्रणाम करके उनके चरण धुला कर उनके पास उपविष्ट हुए। महेन्द्र जी की बन्धुकथा से उनको अपार्थिव आनन्द मिला। रमणी बाबू दूर देश से आ रहे हैं और अभुक्त जान कर महेन्द्रजी ने वहीं पर उनके लिए महाप्रसाद मंगवाया और रमणी बाबू को ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। महेन्द्र जी के लिए भी वहीं पर प्रसाद लाया गया। रमणी बाबू ने देखा कि प्रसाद का परिमाण इतना है कि चार पाँच के लिये पर्याप्त है और चावल बहुत ही मोटा है। वह मन ही मन सोचने लगे "हाय हाय इतना मोटा चावल का अन्न प्रभुजी के सेवक किस तरह ग्रहण करते होंगे ?" महेन्द्र जी के आदेशानुसार उन्होंने प्रसाद ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। अचानक उन्होंने देखा कि मोटे चावल का अन्न अदृश्य हो गया है उसके स्थान पर पतला सुगन्धित चावल का अन्न रक्खा हुआ है। रमणी बाबू इस लीला को नहीं समझ सके। महेन्द्र जी बोले—"यह क्या हो गया ?" रमणी बाबू ने सोचा—"मैं सोच रहा था कि इतना मोटा चावल कैसे ग्रहण किया जाय और प्रभुजी के सेवक वृन्द भी इसे कैसे ग्रहण करते होंगे।" रमणी समझ गये कि स्थूल दृष्टि से तो चावल मोटा है मगर भक्तों

का भिक्षालब्ध चावल "महा आतप" है और प्रभुजी को निवेदन करने के बाद तो उसका स्वाद अमृतोपम हो जाता है। परमानन्द मग्न होकर वह प्रसाद ग्रहण करने लगे और अपने को धन्य मानने लगे।

एकबार रमणी बाबू प्रभुजी के जन्मोत्सव के उपलक्ष में प्रभुजी के जन्मस्थान मुर्शिदाबाद जिले में डाहापाड़ा जा रहे थे। रात काफी हो चुकी थी साथ में औरतें थी। जन्मस्थान जाने के लिए, गंगाजी पार करनी पड़ती हैं। इस पार एक भी नाव नहीं थी। बहुत बुलाने पर एक १०-१२ साल का लड़का उस पार से नाव लेकर आया। नाव पर सवार हो गये—नाव चलने लगी बीच गंगाजी में जब नाव पहुँची तो चारों ओर से बादल घिर आया और ज़ोर से आंधी पानी आरम्भ हो गया।

किसी तरह माझी बालक ने नाव किनारे पर भिड़ा ही दी। उस बालक माझी के मुँह पर न तो कोई भाव रेखायें थी न कोई बात। आधी रात में इस भयंकर आँधी पानी में पार ले आया है। रमणी बाबू ने सोचा कि कम से कम दो रुपये तो देना ही होंगे। उन्होंने माझी से पूछा—"कितना लोगे ?" माझी ने उत्तर दिया—"चौदह पैसे।" रमणी बाबू उसे और पैसे देना चाहते थे मगर उस बालक ने चौदह पैसे के ऊपर एक पैसा नहीं लिया। कौन कह सकता है कि यही बालक भवनदी का पार कराने वाला माझी था या नहीं।

रात अन्धेरी–इस भयंकर दुर्योग में रास्ता नहीं दीख रहा था। रमणी बाबू सोच रहे थे कि रास्ते का पता कैसे लगे। ऐसे समय दीर्घ काय–सारा अंग कपड़ों से ढ़का हुआ एक पुरुष वहाँ उपस्थित हुआ। उसने 'टार्च' से रास्ता दिखाकर उन लोगों को काफी दूर तक पहुंचा दिया और कहा–"इस रास्ते से जाओ।" काफी दूर तक टार्च की रोशनी पहुँचा कर उन लोगों को रास्ता दिखा दिया। वह रास्ता दिखाने वाला पुरुष कौन? प्रत्येक ने एक एक रूप में देखा। किसी ने देखा सफेद वस्त्रधारी, किसी ने भगवा वस्त्रधारी इत्यादि। श्री धाम में पहुँचकर रास्ते की सारी बात भूलकर के लोग आनन्द सागर में निमग्न हो गये। दूसरे दिन प्रभात-काल में भक्तशिरोमणि कुञ्जदास जी से साक्षात होते ही वह बोले–"मणि भाई कल रात दयालु प्रभुजी ने ही तुम लोगों को रास्ता दिखाया है।"

भाग्यवान रमणी बाबू आजकल लखनऊ में प्रभुजी की सेवा और नाम के आश्रय में परमानन्द से रहते हैं।

भक्त मास्टर साहेब महादेवप्रसाद

१९२७ ई० उस समय श्रीमत कुञ्जदास जी भक्तों के साथ इलाहाबाद में थे। शहर के उत्तरांश प्रभुजी के नाम प्रचार कार्य साध करके वह शहर के बीच हिवेट रोड के 'बोसेज कैसिल' नाम के मकान में रह रहे थे। नित्य प्रतिदिन बहुत से व्यक्तियों का आना जाना होता था। कुछ वहाँ से प्रभुबन्धु की कृपा का लाभ भी लेने लगे। दिनेश बाबू, रमणी बाबू,

सतीश मुखोपाध्याय इत्यादि का वहाँ सर्वदा आना जाना रहता था।

एक दिन लाला महादेव प्रसाद जी ने कुञ्जदास जी के सामने आकर उन्हें दण्डवत कर प्रणाम किया। हाथ में प्रभुजी की सेवा के लिए कुछ मिठाइयाँ थीं। कुञ्जदास जी हिन्दी नहीं समझते थे। इसलिए बेनीमाधव बैनर्जी को बुलाकर लालाजी ने अपना परिचय उनके माध्यम से दिया। मौतसीय गंज के रहने वाले, म्युनिसीपैल्टी के हेड क्लर्क। लालाजी कुञ्जदास जी से अपरिचित थे किन्तु उनके व्यवहार से प्रतीत होने लगा कि वह कुञ्जदास जी के सुपरिचित हैं। वह बंगला नहीं जानते थे किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि वह सब कुछ समझते थे। एक दिन उनसे पूछा गया–"मास्टर साहब आप तो बंगला नहीं जानते हैं और हमारे कीर्तन बंगला भाषा में है। आपके लिए समझना तो मुश्किल होता होगा? उन्होंने उत्तर दिया–Sound is sufficient for me" भाषा न समझते हुए भी कीर्तन की ध्वनि का शब्द ही उनके लिए पर्याप्त है। मास्टर साहब आनन्दमग्न थे। न जाने क्यों लेखक के साथ उनका मेलजोल ज्यादा था। लेखक से वह बहुत ही प्रेम करते थे। लेखक की टूटीफूटी हिन्दी वह आसानी से समझ जाते थे। उन्होंने अपने घर में प्रभुजी के श्री विग्रह की सेवा आरम्भ कर दी। उनकी एक कन्या सन्तान की मृत्यु हो गई थी। मगर मास्टर साहब के मन में कोई रेखापात नहीं हुआ। वह जैसे आनन्द मग्न थे वैसे ही रहे। एक दिन लेखक से वे

बोले—"कल रात प्रभु जी ने मुझे स्वप्न में कहा है कि बारह आना दक्षिणा दो। इसका क्या मतलब हुआ? लेखक सोच रहा था कि क्या उत्तर दे इसी समय प्रभुजी ने मुझ में बुद्धि योग प्रेरण किया। ऐसा मालूम पड़ा कि प्रभुजी कह रहे हैं कि प्रभुजी के द्वादश नाम उच्चारण करो। प्रभुजी ने एक भक्त को लिख दिया था—"धर्म में और कोई विशेषता नहीं है—केवल प्रभुजी के द्वादश नाम उच्चारण करना।" इस ग्रन्थ में प्रभुजी के आत्म परिचय अध्याय में उनके द्वादश नाम दिये गये हैं। लालाजी ने द्वादश नाम लिख लिये और उस दिन से वही नाम मन्त्र उच्चारण करने लगे।

उनके घर में कुञ्जदास जी के कीर्तन से परमानन्द हो गया। जहाँ भी कीर्तन होता मास्टर साहब वहीं पहुँच जाते। पांव में पायल बाँधकर नाचते भी हैं। कभी कभी भावाविष्ट भी हो जाते हैं। रोज प्रभुजी के सम्बन्ध में एक हिन्दी भजन रचना करते हैं और कीर्तन के बाद लोगों को स्वरचित भजन सुनाकर आनन्द पाते। उनके भावपूर्ण भजन सुनकर हम सब मुग्ध हो जाते थे।

एक बार प्रभुजी के जन्मोत्सव के उपलक्ष में वह सस्त्रीक श्री धाम डाहापाडा गये। श्री मन्दिर देखकर उन्होंने लेखक से पूछा—"किस मिस्त्री ने मन्दिर बनाया है? मैं उससे मिलूँगा।" अचानक एक दिन मिस्त्री से रास्ते में साक्षात्कार हो गया। मिस्त्री मुसलमान था; नाम था अकबर मिस्त्री। लेखक ने मास्टर साहब से कहा—"इसी मिस्त्री ने प्रभुजी के मन्दिर

बताया है।" मास्टर साहब ने मिस्त्री को आलिंगन में बांध लिया और बोले—"मिस्त्री साहब आप भाग्यवान है। प्रभुजी के मन्दिर बनाने का सौभाग्य आप ही को हुआ। स्वयं विश्वकर्मा को भी यह भाग्य नहीं होता हैं। आप महा भाग्यवान हैं।" एक सामान्य मिस्त्री मजदूर—उससे कितना सम्भ्रम और मर्यादा के साथ बोलने लगे। इसी से समझा जा सकता है कि वे प्रभुजी को ठीक समझे थे नहीं तो एक मामूली मिस्त्री को इतनी मर्यादा कौन देता है?

मास्टर साहब दफ्तर जाते थे क्योंकि जाना पड़ता था। एक बार लेखक ने इलाहाबाद आकर देखा कि मास्टर साहब ने दफ्तर जाना बन्द कर दिया है—पूछने पर बोले—"आपके आने की खुशी में मैंने पन्द्रह दिन की छुट्टी लेली है।" उनके साथ लेखक का जो भावना का आदान प्रदान होता था उसे वर्णन करने की भाषा लेखक में नहीं है। एक दिन भक्त अयोध्या नाथ जी के घर में हम लोग कीर्तन कर रहे थे—अचानक मास्टर साहब बड़े जोर से हंस पड़े। हंसते हंसते लोट पोट होने लगे। उन्हें सम्हालना मुश्किल हो गया। लेखक ने सोचा कि हो सकता है मास्टर साहब को लीलारसमय के हास्य रस का कुछ दिखाई पड़ा होगा। जैसे उनका हंसना आरम्भ हुआ उसी तरह अचानक हास बन्द भी हो गया और वह पत्थर की मूर्ति से बैठे रहे।

एक दिन लेखक से लाला जी बोले—"जगद्बन्धु जी को एक दिन दफ्तर से लौटकर देखा कि बालक रूपी जगद्बन्धु नंगे

पांव, नंगे शरीर, नंगे सर सारे आंगन दौड़ते फिर रहे हैं। देखकर मैंने कहा कि जगद्बन्धु तुम नंगे क्यों हो? तो देखा कि सब अदृश्य हो गया। दूसरे दिन दफ्तर से लौटकर देखा कि जगद्बन्धु जूता, मोजा, टोपी, कमीज, धोती पहनकर आंगन में घूम रहे है। देखकर मैं खुश होकर बोला—वाह जगद्बन्धु वाह। बस फिर सब अदृश्य।"

और एक दिन लेखक से बोले कि जाड़े के समय एक दिन वह सुबह लिहाफ ओढ़ कर विस्तरे पर बैठे थे और प्रभुजी को स्मरण कर रहे थे इसी समय जैसे छोटा बच्चा माँ बाप को पीछे से जकड़ लेता है उसी तरह उन्हें जकड़ कर सर पर गरदन पर हाथ फेरने लगा। मास्टर साहब ने आवाज दी—'कौन है—कौन है रे पांव में धुला लेकर विस्तरे पर उठा है?" गरदन घुमाकर देखा कि शिशु जगद्बन्धु खड़े है—बस कुछ मुहूर्त के लिए—फिर सब अदृश्य। मास्टर साहब के घर में उस समय कोई नहीं था—एकमात्र बेटी का भी विवाह हो गया था।

मास्टर साहब ने बन्धु गीतांजली नाम की भजनों की एक ग्रन्थ रचना की है। उसके सभी भजन परम अनुभूति-पूर्ण है।

मास्टर साहब के घर वाले मास्टर साहब के इन कर्मों से सहमत नहीं थे। कहते थे—"बंगाली के देवता क्यों पूजते हो? इन्हें पूजकर क्या होगा?" उस समय इलाहाबाद में हरेकृष्ण या हरिनाम नहीं सुनाई पड़ता था यहाँ के लोग

कर्मयोग तथा ज्ञान की चर्चा करते थे और अब उसी इलाहाबाद में सैकड़ों कीर्तन की टोलियां हैं—औरतें भी ढोलक बजा बजाकर अहोरात्र—उदयास्त नाम कीर्तन में तल्लीन रहती हैं। एक परमानन्द का संवाद यह है कि इलाहाबाद के न्यू कटरा की महिलाओं ने मिलकर एक कीर्तन भवन की स्थापना की है।

मास्टर साहब ने देहत्याग करने के दो महीना पहले लेखक से अनुरोध किया—"जयबन्धु जी आप दो महीना और ठहर जाइए। मैं आपके सामने इस शरीर को त्यागना चाहता हूँ।" परम दुःख इस बात का है कि लेखक को विशेष काम के लिए श्रीधाम जाना पड़ा। अतः मास्टर साहब का अनुरोध न रख सका। श्री धाम डाहापाड़ा से खबर मिली कि लेखक के चले आने के दो महीने के भीतर ही मास्टर साहब का देहान्त हो गया है।

मरने के दो रोज पहले उनकी अवस्था देखकर घरवालों ने सोचा कि उसी दिन देहान्त होगा। मगर मास्टर साहब ने कहा था—"परसों…आज नहीं।" दो दिन बाद ही वह अमर-धाम चले गये।

बेनीमाधव बन्दोपाध्याय का भाग्य

श्री पाद कुञ्जदास जी अपने साथियों के साथ "बोसेज-कैसिल" में अवस्थान कर रहे थे। नित्य कीर्तन हो रहा था। प्रभूत लोक समागम होता था एक दिन मास्टर साहब महादेव प्रसाद जी के साथ बेनी बाबू आये। बेनी बाबू स्कूल के मास्टर थे। अवसर पर संगीत बाद्य की चर्चा करते थे। तबला अच्छा

बजा लेते थे। छोटा बड़ा ताल बजाते थे। राग रागिनी के आलाप करते थे। यद्यपि बंगाली थे मगर कभी बंगाल गये भी न थे।

उस समय इलाहाबाद में कीर्तन का चलन नहीं था। बेनी बाबू ने अपने जीवन में प्रथम कीर्तन बोसेज कैंसिल जाकर सुना। मगर कीर्तन उन्हें अच्छा नहीं लगा। मृदंग करताल बजाकर एक शब्द सौ बार दोहराना और साथ साथ नृत्य !! यह कैसा कीर्तन है ? हारमोनियम तानपूरा इस्राज कुछ नहीं है। रागिनी आलाप नहीं है। यह कौन गाना है।

बेनी बाबू की माँ बोसेज कैंसिल जाकर कुञ्जदास जी को देख आईं। कीर्तन उन्हें बड़ा अच्छा लगा। घर लौटकर कीर्तन के माधुर्य का उन्होंने प्रकाश किया और बेनी बाबू गाना बजाना पसन्द करते हैं यह उन्हें मालूम था इसलिए बेनी बाबू को बुलाकर बोली—"बेनी, बोसेज कैंसिल में एक साधु आये हैं—प्रभु जगद्बन्धु के भक्त हैं। कितना सुन्दर कीर्तन हो रहा है। जा न, सुन आ।" बेनी बाबू बोले—"मैं गया था। यह कोई गाना है ? सिर्फ मृदंग और करताल बजा बजाकर जय जगद्बन्धु बोल हरिबोल। मैंने सोचा था कि कोई अच्छी चीज सुनने में आयेगी। मगर कुछ नहीं। यह सब बंगाल में ही ठीक है।"

मगर बेनी बाबू की माँ को कीर्तन बड़ा सुन्दर लगा था साथ साथ कुञ्जदास जी का हरिकथाउपदेश भी, इसलिए बेटे से बोलीं—"कम से कम साधु बाबा के पास बैठकर दो चार बातें तो सुन आओ, गाना अच्छा न लगे तो न सुनो" बेनी बाबू बड़े मातृभक्त थे। सोचा कि ठीक है—बाबा जी के पास बैठ कर दो चार उपदेश सुनने में क्या दोष है। कम से कम देखें तो क्या कहते हैं। बेनी बाबू ने साधु देखे हैं रामकृष्ण मिशन के जटाधारी भस्माच्छादित साधु भी देखे हैं। मगर कौपीन-धारी गले में तुलसीमाला पहने ऐसा साधु उन्होंने सोचा भी न था।

मातृ आज्ञा से वह श्रीपाद कुञ्जदास जी के पास जाकर बैठ गये। प्रभु जगद्बन्धु-लीला-हरिनाम माहात्म्य सब सुना—अच्छा भी लगा अब वह प्रायः ही जाने लगे। कुञ्जदास जी के साथ परिचय भी हो गया। कुञ्जदास जी ने बेनी बाबू का नाम धाम घर द्वार सब कुछ पूछ लिया। कुञ्जदास जी को भी बेनी बाबू खूब पसन्द आये। बेनी बाबू को श्री प्रभु जी की एक श्री मूर्ति देकर बोले—'प्रभु जी का नाम जपना, नित्य तुलसी चन्दन चढ़ाना—मंगल होगा।" जौहरी ही जवाहरात ठीक ठीक पहचानता है—बेनी बाबू में कुञ्जदास जी ने क्या देखा—वही जानते हैं। बेनी बाबू श्री मूर्ति को घर ले आये और रख दिया। एक दिन कुञ्जदास जी ने पूछा—"बेनी प्रभु जी की श्री मूर्ति तुम ने शीशे में जड़वा ली कि नहीं ? सेवा पूजा करते हो न ?"

बेनी बाबू सहज सरल प्रकृति के आदमी थे। भोग विला-सिता उन्हें छू तक तक नहीं गया था। तड़क भड़क से भूलने वाले न थे। साधु के उपदेश से उनका प्राण सरस हो उठा था। वह प्रभुजी की श्री मूर्ति जड़ा लाये। प्रभुजी की सेवा

पूजा भी आरम्भ हुई—कुञ्जदास जी के साथ नामकीर्तन में भी योगदान करने लगे।

एक दिन अचानक कुञ्जदास जी अपने साथियों के साथ मृदंग करताल लेकर बेनी बाबू के घर पहुंचे। घर वाले आश्चर्यान्वित हो गये—साथ साथ यह भी प्रगट हो गया कि यही साधुओं का स्वभाव है। उनके अपने प्रयोजन से नहीं, जीवकल्याण के प्रयोजन से वे बिना बुलाये ही आ उपस्थित होते है और गृहस्थ का मंगलविधान करते हैं।

धीरे धीरे बेनी बाबू के परिवार के सभी व्यक्तियों ने प्रभु को मान लिया। वे प्रभु से प्रेम करने लगे। प्रभु के लीलाप्रसंग से वे आनन्दित होने लगे—प्रभुभक्त को भाई समझने लगे।

बेनी बाबू के घर में कभी कभी अष्ट प्रहर—उदयास्त प्रभु जी का नामकीर्तन होने लगा। महोत्सव भी होने लगा। अब बैठकी गीत वाद्य में बेनी बाबू की रुचि न रही। एकबार बैठकर नामकीर्तन शुरू करने पर उठना भूल जाते है। आप ही प्रभुजी की लीलाकीर्तनरचना करके परमानन्द के साथ कीर्तन करते हैं।

उनके घर में अब प्रभु के प्रभुत्व की अनुभूति होने लगी। किसी प्रकार का दुःख या दुर्दैव आने से प्रभुजी उनकी रक्षा करेंगे यह अनुभूति उन्हें सर्वदा घेरे हुए हैं। उनके घर में सभी प्रभु के सेवक बनकर गर्वित और सुखी हैं।

बेनी बाबू के चाचा हेमन्त बाबू तरल विश्वासी हैं। वह शास्त्रयुक्ति की परवाह नहीं करते हैं जो शास्त्रातीत है—ज्ञानातीत है उसे शास्त्र से या ज्ञान से किस तरह पहँचाना जा सकता है? प्रभुजी की कृपा से दृढ़ विश्वास भक्ति मिली है—कृपा करके अपने को आप ही प्रकाशित किया है—यह भी हो सकता है वह प्रभु की अपनी है इसलिए और किसी चीज की आवश्यकता भी नहीं है। श्री नाम का आश्रय लिया है—नामी को समझने के लिए नामाश्रय ही पर्याप्त हैं। नाम और नामी अभिन्न हैं। जय जगद्बन्धु—जय जगद्बन्धु भक्त।

मुझे याद है कि एक बार दुर्गोत्सव की पूर्णिमा तिथि में ग्रहण के उपलक्ष पर हम लोगों ने नगरकीर्तन निकाला है। दशाश्वमेध के पास भीड़ हटा हटाकर हम लोग आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं मगर बढ़ न पा रहे हैं। अचानक कहीं से हुक्का चिलम लेकर एक पागल दौड़ आया। पागल बड़े विक्रम के साथ हम लोगों के सामने नृत्य करते करते रास्ता बनाकर आगे बढ़ा कोई नहीं बता सका कि पागल कौन था। विचार है कि शायद कैलाश से काशीधाम में हरि के परम भक्त शिव जी ने आप ही प्रच्छन्नवेष में आकर प्रभु जी के भुवनमंगल कार्य का आनुकूल्य विधान इसी तरह किया। लोगों का कहना था कि इतना बड़ा नगरसंकीर्तन काशीधाम में इसके पहले कभी नहीं देखा गया था।

इस तरह कुछ दिन काशीधाम में कीर्तनानन्द के बाद कुञ्जदासजी के मन में श्री प्रभुजी के आविर्भाव की भूमि श्रीधाम डाहापाड़ा की स्मृति का उदय हुआ। कुञ्जदास जी एक बार इलाहाबाद होकर फिर डाहापाड़ा के लिए रवाना हो

गये। इलाहाबाद के भक्तों के दुःख की सीमा न रही।

कुञ्जदास जी बंगाल लौट गये मगर उनका प्रवाहित किया हुआ कीर्तनप्रवाह आज तक इलाहाबादवासियों को स्निग्ध कर रहा है। प्रभुजी के भक्तों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। प्रभुजी का सेवा पूजन और नामकीर्तन उत्तर-प्रदेश के विभिन्न स्थानों में हो रहा है।

इलाहाबाद के बन्धु हरि के भक्तों का निमन्त्रण नाना स्थान में होता है और वे श्री हरिनाम महानाम कीर्तन सुना आते हैं केवल बंगाली ही नहीं उत्तरप्रदेशीय भी आज बंगालियों के साथ योगदान करके कीर्तनानन्द का रसास्वादन करते हैं।

ओराइ कीर्तन उत्सव

एकबार जब मैं इलाहाबाद में था उस समय ओराई में एक महाशय बंगाली कीर्तन मण्डली की खोज में आये। उस समय मैं हेमन्त वन्द्योपाध्याय महाशय के घर में रह रहा था। उक्त महाशय हम लोगों को ले जाना चाहते थे। मेरा शरीर कुछ अस्वस्थ सा था। स्थानीय दिनेश बाबू, वेनी बाबू आदियों ने कह दिया कि अगर मैं जाऊँगा तो वे जायेंगे। मैंने सोचा कि एक तो ओराइ बहुत दूर है—वहाँ से यहं आये है बंगाली कीर्तन मण्डली को ले जाने—इस आग्रह को कौन ठुकरा सकता है—मैं राजी हो गया ओराइ पहुँचकर हम लोगों ने नगरकीर्तन में योग दिया। उस आनन्दप्रकाश की भाषा मुझ में नहीं है। वहाँ के म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन के घर में हम लोगों के

ठहरने का स्थान हुआ। मुझे आज तक चेयरमैन की दीनता भरा भक्ति भाव स्मरण है—वह खुद हम लोगों के पैर धोने आये थे।

वहाँ के विख्यात हनुमान जी के मन्दिर में हम लोग कीर्तन करने गये थे। वहाँ के कीर्तन को कभी नहीं भूलेंगे। कीर्तनानन्द के समय आकाश से शंख ध्वनि होने लगी—साधारण शंख-ध्वनि नहीं। उस ध्वनि को सुनकर अनेक भक्त आनन्द से आत्म-विस्मृत हो गये। प्रभुजी का नामकीर्तन सुनकर स्थानीय अधिवासियों को विशेष आनन्द मिला।

कानपुर रामकृष्ण मिशन में कीर्तन

ओराइ कीर्तन उत्सव में जाते समय एक विचित्र घटना घट गई। जाते समय मृदंग एक ही लिया गया था मगर दो मृदंग के बिना कीर्तन का आनन्द कम हो जाता है। सुना कि कानपुर रामकृष्ण मिशन में अच्छा मृदंग है। अगर चेष्टा की जाय तो शायद मिल जाय। कानपुर में ३-४ घंटा इन्तजार करना पड़ेगा ओराइ की गाड़ी के लिये हम में से दो जने रामकृष्ण मिशन के लिये रवाना हो गये। मिशन के स्वामी जी महाराज से मृदंग के लिए कहा गया। उदारचरित्र स्वामी जी एक शर्त पर मृदंग देने के लिये राजी हो गये कि लौटते समय श्री राम कृष्ण मिशन में कीर्तन सुनाना होगा। हम लोग आनन्द के साथ उनकी शर्त पर राजी हो गये और मृदंग लेकर चले आये। इस दुष्प्राप्य वाद्य को उदारचरित्र स्वामी जी को छोड़ और कौन देता ?

ओराइ से लौटते समय हम लोग मिशन पहुँचे। अब समस्या यह हुई कि कैसा कीर्तन किया जाय? मैं सोचने लगा कि-प्रभुजी का लीलाकीर्तन और प्रभु जगद्बन्धु सुन्दर का नाम-कीर्तन सम्भव है कि उन लोगों को अच्छा न लगे। ऐसा सोच रहे थे और इधर उधर देख रहे थे इतने में दीवार पर लिखी हुई परमहंसदेव की एक उदार वाणी पर दृष्टि पड़ी—"सर्व मत और सर्व पथ एक ही भगवान के पास पहुँचाते हैं।" मेरी सब चिन्ताओं का अवसान हो गया। निश्चिन्त निर्भय होकर हम लोगों ने प्रभुजी का नामकीर्तन आरम्भ कर दिया। हाल ही में मठ बनाया गया है। सामने बहुत बड़ा 'हाल' कमरा। मृदंग करताल की ध्वनि और कीर्तन के रोल सुनकर असंख्य व्यक्ति आ पहुंचे। आश्रम के सब स्वामी लोग भी आगये और कीर्तन गाने और महानन्द से नाचने लगे। परमानन्द से कोई कोई कीर्तन की रज पर लोटने लगे। जोरों के साथ कीर्तन होने लगा अपरिसीम आनन्द का स्रोत बहने लगा। अन्त में कीर्तन का प्रसाद सब को मिला। स्वामी जी महाराज बोले—"इस मठ में इतना आनन्दमय कीर्तन इसके पहले कभी नहीं हुआ है।" महानाम का जयघोषण किया गया। जय जगद्बन्धु हरि।

हरिद्वार स्वर्गाश्रम में और गोरखपुर गीता प्रेस में श्री महानामप्रचार

गोरखपुर गीता प्रेस के मालिक जयदयाल गोयन्दका एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। वह परम भक्त हैं और उन पर लक्ष्मी जी की विशेष कृपादृष्टि है। हर साल होली के बाद वे हरिद्वार स्वर्गाश्रम में एक महोत्सव करते हैं उसमें भारत के प्रायः सब जगहों से बड़े बड़े साधु सन्यासियों का आगमन होता है। गीता शास्त्र और धर्मशास्त्र का प्रचार हो यह उनके जीवन का व्रत है।

रतनगढ़ के उत्सव में बंगाली कीर्तन से उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ था। परम भक्त भोलाराम झुनझुन वाला के द्वारा उन्होंने प्रयाग के प्रभुबन्धु की भक्त बंगाली कीर्तन मण्डली को निमन्त्रित किया।

१९४३ ई० में यह उत्सव हुआ। दिनेश बाबू अपने प्रिय भक्तों को लेकर यथा समय स्वर्गाश्रम उपस्थित हुए। वहाँ के काली कमली वाले की धर्मशाला में इन लोगों का रहने का स्थान हुआ। बंगाली कीर्तन मण्डली के आने पर भोलारामजी डोंगरमल जी प्रभृति भक्तों को बड़ा आनन्द हुआ। हरिद्वार में एक मास कीर्तन उत्सव के बाद जयदयाल गोयन्दका जी गोरखपुर गीता प्रेस भवन में इन लोगों को ले गये। वहाँ कीर्तनानन्द के बाद भक्तों ने इलाहाबाद प्रत्यावर्तन किया।

अलोपी बाग में २४ प्रहर महानाम उत्सव

दिनेश बाबू अलोपी बाग में आ गये थे। बहुत दिनों से उनके मन की यह साध थी कि उनके घर में २४ प्रहर उत्सव हो। मैं उस समय दिनेश बाबू के घर में था। १९४२ ई० पौष का महीना। हम दोनों ने मिलकर तय कर लिया कि बड़े दिन की छुट्टी के समय उत्सव होगा।

हिन्दी और बंगला दोनों भाषा में निमन्त्रण पत्र छपवाया गया दिनेश बाबू सब बन्धु भक्तों को निमन्त्रण दे आये। इलाहाबाद के कई कीर्तनसम्प्रदायों को भी निमन्त्रण दिया गया। काशीधाम के बन्धु भक्तों को भी निमन्त्रण भेजा गया। बंगाल में प्रभुजी के आविर्भाव श्री धाम में श्रीपाद कुञ्जदासजी को निवेदन किया गया और महानामसेवक मण्डली को भेजने के लिये अनुरोध किया गया। विख्यात कीर्तनगायक श्री वैष्णवदास चक्रवर्ती महाशय को उनके सम्प्रदायसहित निमन्त्रण दिया गया।

मकान के सामने के सुविस्तृत आंगन के एक तरफ प्रभु बन्धु का श्री मन्दिर निर्माण किया गया। सामने शामियाने के नीचे कीर्तन का स्थान। सब तरह की सुव्यवस्था की गई।

यथा समय बंगाल से भक्तबृन्द मृदंग करताल के साथ आ उपस्थित हुआ। इलाहाबाद के गृही भक्त अपने अपने परिवार के साथ आये। काशीधाम से भक्त दल भी आ गये। वैष्णवदास चक्रवर्ती अपने सम्प्रदाय के साथ आ पहुँचे।

दिनेश बाबू के घर आनन्दसागर बन गया। भीतर आंगन में भक्त गृहिणियों ने परिपाटी रूप से प्रभुजी के भोग-राग की व्यवस्था में लग गई और साथ साथ महोत्सव का भी आयोजन होने लगा। शास्त्र में लिखा है कि भक्त गृहिणी का जन्म लक्ष्मी के अंश से होता है। इस समय यह प्रत्यक्ष था। भट्टाचार्य गृहिणी भी अपने अस्वस्थ शरीर को लेकर महा आनन्द के साथ लगी हुई थीं। भीतर आंगन में उपस्थित भद्र-

मण्डली प्रसाद पा रही थी। वहाँ केवल "दीयताम् भुज्यताम" का रव सुनाई पड़ता है।

बाहर के आंगन में महानाम का महाप्लावन प्रवाहित था और उस प्लावन में बहे जा रहे थे भक्त मीन। बंगाली हों चाहे न हों मगर सब एक साथ कीर्तनरस का आस्वादन कर रहे थे। इलाहाबाद के झां महाशयों को मैं कभी भूल ही नहीं सकता। झां कम्पनी के यही लोग मालिक हैं। ये लोग रोज आते थे और कितने सुन्दर सुन्दर फूलों की माला तथा फूल लाते थे और भोग के लिये लाते थे सन्देश इत्यादि।

कीर्तन के आरम्भ होने के पहले ही दिनेश बाबू ने कह दिया था कि कीर्तन छोड़ कर वह और कोई काम में नहीं जायेंगे। इसलिए अतिथियों की देखभाल करने का भार उनके भतीजे श्रीमान् सत्यप्रिय के ऊपर आ पड़ा। अपने कर्तव्य में अटल सत्यप्रिय ने सब काम इतने सुन्दर रूप से सम्हाला कि और किसी को कुछ देखने की आवश्यकता ही न पड़ी।

तीन दिन तीन रात बराबर कीर्तन होता रहा कीर्तन ध्वनि, मृदंगवादन करताल का शब्द-सब ने मिलकर एक अपूर्व शब्दतरंग की सृष्टि की जिसने मनुष्य के हृदय को उद्वे-लित कर दिया। बहुतों के मुँह से यह भी सुना गया कि ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर नामकीर्तन इलाहाबाद में इसके पहले कभी नहीं हुआ था।

संकल्पित २४ प्रहर अतिक्रान्त हो गये। चौथे दिन सुबह कीर्तनसमाप्ति की बात थी मगर कीर्तन करने वाले

कीर्तन मग्न होकर सब भूल गये। ऐसा मालूम होने लगा कि किसी को यह मालूम भी नहीं कि संकल्पित समय पास आ गया है। जिनके घर में कीर्तन हो रहा था वे तो बेसुध हो गये थे और भक्तगण भी नामरस पी पी कर मतवाले हो गये थे।

चौथे दिन देखा गया कि गिरने वाली बृटिश साम्राज्य की पंजाबी मुसलमान पुलिस रास्ते पर पहरा दे रही है जिससे नगर कीर्तन न निकल सके क्योंकि शहर में दफा १४४ जारी थी। दिनेश बाबू एक मुसलमान पुलिस सिपाही को आलिंगन में बांध कहने लगे—"बोलो भाई प्रेम से जय जगद्बन्धु बोल, हरि बोल हरि बोल।" कीर्तनानन्द देखकर कठोर प्राण भी अभिभूत हो गया—साथ साथ कहने लगा—"जय जगद्बन्धु बोल, हरि बोल, हरि बोल।"

अब समस्या हुई कि कीर्तन में पूर्णाहुति कौन देगा? सभी कीर्तन करने में इतने मग्न हैं कि सुध बुध नहीं। किन्तु कीर्तन तो शेष करना होगा। अन्त में इस शुष्कप्राण भक्ति शून्य—हृदय ग्रन्थ लेखक को ही नाम की जय ध्वनि देकर कीर्तन शेष करना पड़ा।

चारों तरफ आनन्द—महा आनन्द—इस आनन्द का प्रकाश करने का भाव कहाँ पाऊँ? यह केवल अनुभव की सामग्री है। हृदयमन्थन करके जो आनन्द अमृत प्रकट हुआ उसे कैसे किस भाषा में प्रकाश किया जाय। भाव राज्य में प्रवेश के साथ साथ बाहर की इन्द्रियों की शक्ति घटने लगती है। अनुभूति की

प्राथमिक अवस्था में कुछ कहा जा सकता है मगर जब पूर्ण अनुभूति आ जाती है तब बाह्य इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं।

कीर्तन समाप्ति के बाद भक्त गृहिणी गए कलसों में पानी में हल्दी और दही मिलाकर कीर्तन आंगन में उड़ेलने लगा। भक्तों ने उसी स्थान पर लोटना आरम्भ कर दिया। पुरुषों के बाद स्त्रियां भी लाज शरम छोड़कर कीर्तन भूमि पर लोट-लोट कर अपने शरीरों को पवित्र करने लगीं।

नदीया में रासलीला के बाद गंगा रास होता है शान्तीपुर में। यहाँ पर वह भी हो गया भट्टाचार्य के छोटे भाई रमणी बाबू के घर भंगा कैसिल वाले घर में। उसमें भी महा आनन्द हुआ। महा प्रसाद का अकुण्ठ परिवेशन हुआ।

जय जगद्बन्धु हरि हरि बोल।

दो भाई

रमेश चन्द्र बहुत ही मेधावी और चरित्रवान विद्यार्थी थे। ढाका माणिकगंज के खलो गांव के प्रसिद्ध भट्टाचार्य वंश में इनका जन्म हुआ था। वंश मर्यादा और विद्यालोचना के लिए ढाका जिले में वह गांव सुपरिचित है। यह आज की बात नहीं है। कम से कम ४० साल पुरानी बात है। उस समय ब्राह्मण भट्टाचार्यों के हाथ में समाज था। वह उठा भी सकते थे उतार भी सकते थे। पंच तीर्थ, सप्त तीर्थ, काव्य तीर्थ, व्याकरण तीर्थ प्रभृतियों का वास भूमि था यहाँ तक कि काशी तीर्थ भी उस गांव को कहा जा सकता था।

ब्रजेन्द्र नियोगी पास के गांव में रहते थे। स्कूल मास्टर थे। परम धार्मिक थे। प्रभु जगद्बन्धु के परम भक्त थे। उनके आदेश उपदेश और वाणी का पालन करना ही अपना धर्म समझते थे। वह प्रभु जी के कृपाप्राप्तों में से एक थे। अगर कोई लड़का सुशील मिल जाता तो उपयुक्त आधार मिलने पर वह उसे प्रभु जी के वर्णित ब्रह्मचर्य और हरिनाम सम्बन्धी उपदेश देते थे। रमेश उनके स्कूल का विद्यार्थी था। रमेश का स्वभाव नियोग बाबू को अच्छा लगा।

एक दिन मास्टर जी ने रमेश और दो एक लड़कों को एकान्त में बुलाकर प्रभुजी के बारे में बहुत कुछ सुनाया और सब को एक एक श्रीमूर्ति दी।

मास्टर साहब के ऊपर रमेश की विशेष श्रद्धा रहने के कारण मास्टर साहब ने जो कुछ कहा रमेश के हृदय ने उसे अभ्रान्त सत्य मान लिया।

मास्टर साहब के घर जाकर भी रमेश ने वहाँ प्रभुजी की सेवा होते देखी—भोगराग भी लगता—कभी कभी वह प्रसाद भी पाता रमेश ने भी प्रभुजी को अपने जीवन का ध्रुव लक्ष्य बना लिया। अपने साथियों के साथ प्रभुजी का नामकीर्तन करता था और मास्टर साहब से ग्रन्थादि लेकर पाठ भी करता था। उनके कार्य से उसके अभिभावक बिगड़े उनका कहना था कि वर्णाश्रम के ऊपर और कोई धर्म नहीं है। हम लोगों में पूजा पाठ सभी है ब्रजेन्द्र नियोगी कायस्थ है—स्कूल का मास्टर—वह शास्त्र या धर्म को क्या जानता है।

मझले भाई बसन्त भट्टाचार्य आग बबूला हो उठे। वह रमेश को एक कायस्थ की बात मानकर वर्णाश्रम धर्म का विसर्जन कर देना कभी बरदास्त नहीं करेगा।

किन्तु रमेश को अपने प्राणों का प्यारा मिल गया। उसे अब किसी चीज का डर नहीं था। सत्य को भय कैसा! वह प्रभु जगद्बन्धु को पूजा करते थे अपने संगियों को लेकर प्रातःकाल टहल कीर्तन भी करते थे।

एक अनहोनी बात से विरोधियों का मत बदल गया। गांव में क्लेश शुरू हो हो गया। गांव में रुलाई आरम्भ हो गयी। रमेश ने अपने साथियों के साथ महा उद्धरण महानाम का टहल कीर्तन आरम्भ कर दिया। डाक्टर या वैद्य जहाँ लाचार थे वहाँ केवल दो दिन महानाम की टहलदारी ने सब बीमारी को दूर कर दिया। सब का विश्वास जगद्बन्धु नाम के ऊपर हो गया और विरुद्धवादियों का भी विरुद्धाचरण दूर हो गया। बसन्त बाबू चुप हो गये और प्रभु की शरण में आ गये। ब्रजेन्द्र बाबू गांव गांव में अष्ट प्रहर-चौबीस घड़ी महानाम कीर्तन यज्ञ करने लगे।

बसन्त बाबू ने महानाम प्रचार करने का व्रत ले लिया। श्री अंगन जाकर प्रभुजो का दर्शन करके प्रभुजी के अभयचरण में आश्रय ले लिया और त्यागी भक्तों में एक हो गये। मगर भगवद् इच्छा और कर्तव्य के लिए उन्हें फिर संसार में लौटना पड़ा।

दोनों भाई Accountant General के दफ्तर में नौकरी लेकर वर्मा में रहने लगे। दोनों भाइयों का महानाम पर

विश्वास और महानाम की शक्ति का परिचय एक घटना से प्रकाशित हुआ।

बसन्त बाबू की बड़ी लड़की बीमार पड़ी और बचने की कोई आशा न रही। रमेश बाबू डाक्टर बुलाने दौड़े—रास्ते में उन्हें मनमोहक कीर्तन के शब्द सुनाई पड़े। आगे बढ़कर देखा कि प्रभुजी का महानाम सम्प्रदाय बड़े प्रेम से कीर्तन कर रहा है—रमेश बाबू कीर्तन में लग गये। प्राणाराम प्राणबन्धु का नाम लेकर दोनों हाथ उठाकर नाचने लगे। डाक्टर बुलाने की बात वह भूल गये—नाम कीर्तन में मतवारे हो गये।

उधर बसन्त बाबू चिन्तित बैठे हैं—भाई या डाक्टर कोई भी नहीं आ रहा है। वह घर से दौड़ पड़े—भाई को ढूंढने गये। मगर उनकी भी वही अवस्था हुई—वह भी कीर्तन में जुट गये। दोनों भाई अपनी अपनो सुधबुध खोकर कीर्तन में लगे रहे। रात बारह बजे कीर्तन समाप्त हुआ तब डाक्टर को बुलाने की बात याद आई। उधर लड़की पड़ी पड़ी दम तोड़ रही है—किन्तु रात के बारह बजे डाक्टर कहां मिलेंगे! उधर शायद भक्त के भगवान प्रभुजी ने जाकर लड़की की बीमारी का इलाज आरंभ कर दिया होगा।

इधर दोनों भाई स्थिर जानते थे कि लड़की की मृत्यु हो गई होगी। घर लौटकर रुलाई सुनेगे इसी डर से धीरे धीरे घर की तरफ बढ़े—दबे पांव ऊपर गये— कहीं से कोई शब्द नहीं मिला—घर के लोग सब सो रहे हैं। लड़की को कुछ आराम मिला था वह भी सो रही है। दोनों भाई तब एक

जगह बैठकर प्रभुजी की करुणा को सोचने लगे और उनकी आंखों से टप टप आंसू गिरने लगे। "हे प्रभु तुम्हें भूलकर हम लोग डाक्टर को बुलाने जारहे थे और महानाम महौषधि को छोड़कर डाक्टर की दवाई मरीज को पिलाते हैं। "जय जगद्बन्धु—जय जगद्बन्धु हरि", परिवार के सभी कोई प्रभुजी के नाम की शक्ति देखकर स्तम्भित थे।

बर्मा में इन्होंने अपने पसन्द के मुताबिक घर बनवाये थे—सोच रहे थे कि आराम से बर्मा में रहेंगे मगर सब पलट गया—द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। जापान के बम बर्मा में गिरने लगे—लोग भागने लगे। वहाँ के रहने वाले बंगाली भी वहाँ से भागने लगे। वहाँ रहना असम्भव देखकर ये दोनों भाई भी वहाँ से रवाना हो गये। पैदल का रास्ता—रास्ते में नाना प्रकार की विपद किन्तु प्रभुजी की कृपा से उन दोनों पर कोई विपद नहीं आई। उल्टा जहाँ विपद का भय था वहीं पर इन्हें सहायता मिली। भारत में प्रत्यावर्तन करने पर उत्तरप्रदेश में Accountant General के Office में दोनों को फिर से नौकरी मिली। इलाहाबाद आते ही वे प्रभु भक्तों को खोज निकाल कर फिर से महानाम महामन्त्र के कीर्तनानन्द में डूबे हुये हैं। वर्तमान समय में वे इलाहाबाद ही में अवस्थान कर रहे हैं।

जय जगद्बन्धु हरि।

❀ भजन संग्रह ❀

(१)

प्रेम अवतार पियारे बन्धु मेरी ओर निहारो ।
मैं दासन यकदास तिहारो प्रेम नजरिया डारो ।।
अति मलीन मन पौरुष-हीन तन कोटिन अघ जेहि घेरे ।
ऐसो अधम भरोस कृपा निज आयो शरण तिहारो ।।
बहुत भुलाने उम्र सिराने अन्तकाल नकचायो ।
दास जान अपनाओ हे प्रभु दास की चूक विसारो ।।
काम क्रोध और लोभ मोहतम सबै विषै बिच लपट्यो ।
आन उपाय नहीं उबरण की तेरो नाम सहारो ।।
राज पियारे नन्द दुलारे निमाई गौरंगा ।
जगत महा-उद्धारण कारण बन्धु होय अवतारो ।।

(२)

प्राणी बन्धू सेवा कीजै ।
तन मन धन बन्धु अर्पण कर, दोइ कर जोड़ के विनती कीजै ।
बन्धु मूरत हर की मूरत, प्रेम सहित प्रभु दर्शन कीजै ।।
उठत बैठत सोवत जागत, हरि पुरुष का ध्यान धरीजै ।
प्रेम पदारथ बन्धु बाँटे, पाय सुफल मानुष तन कीजै ।।
बन्धु पाहीं सकल पदारथ, जो इच्छा हो सोई लीजै ।
अंगीनापुरी बन्धु बिराजै, जहाँ कोटिन भानु छबि छाजै ।।
ताल मृदंग रैन दिन बाजै, जाय वहाँ परमानन्द लीजै ।।

(३)

हरी पुरुष हूँ मैं तुम्हारा दास ।
तुम्हीं बन्धु तुम्हीं सखा हो, तुम्हीं दास निवास ।।
तुम्हीं मेरे प्राण के रक्षक, राखो मुझे निज पास ।।
जासों जग में नेह लगायो, सो सो भयो गल फाँस ।।
स्वार्थ देखि जतावें प्रीती, जब तक फूल में बास ।।
ताते झूठा जान सबै जग, जग से होय उदास ।।
सच्चा एक तुम्हारा ही नाता तुम्हरा ही विश्वास ।
हरी पुरुष हूँ मैं तुम्हारा दास ।।

(४)

जगत पति हे भक्तन रखवार, हरी प्रभु जन दुख भंजन हार ।
जब २ गाढ़ परयो भक्तन पर, तब तब लियो अवतार ।।जगत०
पाप से बोझल डूबत नैया, खेओ लगाओ पार ।
कलियुग काल कराल के भय से, भयो जगत पुकार ।।जगत०
महा प्रलय प्रभु रोक के राख्यो, लीन्यो शरण संसार ।
दास पुकार लगावत स्वामी, ठाढ़े तिहारो द्वार ।।जगत०
अपनी कृपा और अपार दया से, तारो कुल परिवार ।
दास सदा निज चरणन सेवा, राखिये हे सरकार ।।जगत०

(५)

दरश दिखाय गयो । जियरा लुभाय गयो रे ।।
हरी पियरवा

गौर तनै ओढ़े स्वेत दुपट्टा ।
अनोखी धज दिखलाय गयो रे ॥हरी पि०॥
मैं अबूझ प्रभु निपट अनारी ।
नहिं बूझयों बुझाय गयो रे ॥हरी पि०॥
कृपा करो प्रभु संशय निवारो ।
दास के दोष मिटाओ दयानिधि ॥
जासो प्रभु नित संशय रहित ह्वै ।
देखूं छवि जो दिखाय गयो रे ॥हरी पि०॥

---

(६)

हरी तुम साँचे मन के मीत ।
जगद्बन्धु है नाम तिहारो, प्रगटे उद्धारण हेत ॥हरी०
जो २ तुम्हरी शरणन आयो, लीन्हों यम को जीत ॥हरी०
जप तप योग पाठ पूजा सब, वृथा जब लों न प्रीत ॥हरी०
तन मन धन भक्तन अर्पण कर, प्रेम पदारथ लेत ॥हरी०
दासहु चरणन सेवा राखो, हरी पुरुष अद्वैत ॥हरी०

---

(७)

हरी तुम मोहि प्राणनन ते प्यारे ।
एक क्षण पलभर कल न पड़त मोहें, बिन तेरो रूप निहारे ॥
तुम जीवन धन सर्वस्व मोरे, तुम नैनन के तारे ॥
प्रेम रूप आनन्दक तुमहीं, ज्ञान रूप उजियारे ॥
तुम्हरो निन्दक अति दुखदाई, हृदय कठिन घन मारे ॥
दास मया नहि छाँडहु स्वामी, जीवत तुम्हरे सहारे ॥

---

(८)

तप को सार जपो हरि नाम ।
नाम जपत दुख दर्द मिटै सब, मन पावे विश्राम ॥ जपो०
नाम जपत आनन्द चहुँ दिशि, दुख भंजन सुखधाम । जपो०
नाम को महिमा वेद न जाने कौन लगावे दाम ॥ जपो०
आवागवन जो छूटा चाहो, नाम जपो निष्काम । जपो०
जगद्बन्धु प्रिया नाम जपो भाई, परम मनोहर नाम ॥ जपो०
दास प्रभु अति कृपा कीन्हीं, ठाम दियो निज धाम ॥ जपो०

---

(९)

मन ऐसे प्रभु के शरण आवरे ।
चूक न चितवे दोष न देखे, कर्म के फन्द छुड़ावे रे ॥
चार वर्ग उपवर्ग के दाता, केवल भाव रिझावे रे ।
मूरख को पंडित कर देवे, लम्पट ज्ञानी बनावे रे ॥
निर्धन धनी करत एक क्षण में, अगुणी गुणी बनावे रे ।
त्यागी यागी सन्त भक्त जन, प्रेम से हृदय लगावे रे ॥
दास पै कृपा विशेष प्रभु की, संग रहे जहँ जावे रे ।

---

(१०)

भजोरे मन बन्धुचरण सुखदाई ।
या चरणन की अपार महिमा, ब्रह्मा पार न पाई ।
शेष महेश गणेश धनेशहिं, शारद मर्म न पाई ॥
इन्द्र मुनीन्द्र उपेन्द्र न जान्यो, कोटिन कोटि उपाई ।
जैमुनि व्यास कपिल मुनि गौतम, पातञ्जल गुण गाई ॥

नारद, मनु, वशिष्ठ, पराशर, याज्ञवल्क मुनि ध्याई ।
भारद्वाज, पुलस्त्य, पुलह भृगु उत्रा अन्त न पाई ॥
वाल्मीक और शंकराचार्य, रामानन्द गुण गाई ।
नानक गुरु कबीर त्रयलोचन, नामदेव चित लाई ॥
योगी यती तपी पचिहारे, पंडित महिमा गाई ।
अगम अगोचर चरणन महिमा, सन्तन के मन भाई ॥
सुख दायक हरिभक्त सहायक, दास चरण लव लाई ।

---

(११)

तुम्हारी याद में बन्धु अजब हालत हमारी है ।
कभी है आहोज़ारी और कभी अख्तर शुमारी है ॥
तुम्हारी याद हो दिल में तुम्हारा नाम हो लब पर ।
यही है दीनदारी और यही परहेज़गारी है ॥
मदद का वक्त है बन्धु मदद मेरी करो आकर ।
तुम्हारे फज्लो रहमत से हमारी रुस्तगारी है ॥
बसे हो दिल में ऐसे आँख में ऐसा समाये हो ।
जिधर मैं देखता हूँ उस तरफ़ सूरत तुम्हारी है ॥
ग़मे फुरकत में घुल २ कर हुआ हूँ सूखकर काँटा ।
दिखादो सूरते ज़ेबा जो मेरी जान प्यारी है ॥
खिजल करते हैं क्यों एजा गवाही दे के महशर में ।
कि खुद ही अपने ऐमालों से मुझको शर्मसारी है ॥
परेशाँ हालो सरगर्दां है तेरा दास दुनिया में ।
खबर लो उसकी आकर क्योंकि वह दर का भिखारी है ॥

---

(१२)

हे जगद्बन्धु महा उद्धारण, अब कब लैहो खबरिया ।
नैनन बान हिया बिच मारो, अब काहे फेरी नजरिया ॥
सुन्दर गौर आनन्द स्वरूपा, मन में बसी मुरतिया ।
मन मोहन मनहरण मनोहर, प्यारी सलोनी सुरतिया ॥
बिरह अग्नि तन मन सुलगावे, सगरी रैन मोह नींद न आवे ।
हूक कलेजे उठे रह २ के, जब सुध आवे सुरतिया ॥
प्रेम पियासी दरश अभिलाषी, दास की सुनलो अरजिया ।
एक बार प्रभु दरश दिखा के, मन की मिटाओ दरदिया ॥

---

(१३)

प्रभो मुझको चरणों की शरणों में रखना ।
मगन हर घड़ी अपने भजनों में रखना ॥
हज़ारों हों दुख इसकी परवा नहीं है ।
न हो पर तुम्हारे विरह में कलपना ॥
रहे प्रेम भक्तों के चरणों का दिल में ।
बने उनकी सेवा यह सामर्थ देना ॥
कजा कूच का जब सुनाये सन्देशा ।
तो उस वक्त मेरी निगाहों में बसना ॥
वह मरना हो जीना सुफल जिन्दगी हो ।
जो हो दास का तेरे कदमों पे मरना ॥
बड़ा धन है तेरा बड़ी तेरी महिमा ।
कि मुझ ऐसे पापी भी पावें ठिकाना ॥

यही दिल की ख्वाहिश यही आरजू है ।
कि मुझको भी यक दास अपना समझना ॥

---

(१४)

आवो जी आवो बन्धु जिया के लुभाने वाले ।
ऋषि और मुनियों के ध्यान में न आने वाले ॥
बड़े २ ध्यानियों के ध्यान से उड़ जाने वाले ।
ओ बन्धु अंगीनावाले-आवो जी आवो बन्धु० ॥
आँखों में छौना छालो-पलकों की ओट बिराजो ।
हृदय में धाम बनालो-वास करो निशिवासर याही ॥
ओ बन्धु अंगीनावाले-आवो जी आवो बन्धु० ।
मधुर लीला दिखलाके-स्वप्ने में हाथ मिलाके ॥
अँगुली की पोर दबाके पुरानी प्रीति जतानेवाले ।
ओ बन्धु अंगीनावाले आवो जी आवो बन्धु० ॥
सत्चित् आनन्दरूप दिखाके रागद्वेष क्लेश मिटाके ।
दासहिं प्रेम प्याला पिलाके परमानन्द बखानेवाले ॥
ओ बन्धु अंगीनावाले आवो जी आवो बन्धु ।

---

(१५)

गाव हरी के गुण गाव हरी के ।
जिन तोहिं साज संवारि सिंगारयो,
गर्भ अग्नि से जिन तोहिं काढ्यो ।
जिन तोहिं कठिन दुखन से उबारयो,
ऐसे प्रभु को मन काहे बिसारयो ।

गाव हरी के गुण गाव हरी के ।
जिन तोहिं मनुष जीवन धन दीन्ह्यो,
जिन तोहिं यौवन खान बसन दीन्ह्यो ।
जिन तोहि मान मकान ठेकान दीन्ह्यो,
जिन तोहिं सुखन के सगरो सामान दीन्ह्यो ।
ऐसे प्रभु को मन भजन न नीके,
गाव हरी के गुण गाव हरी के ।
दास के जीवन प्राणन प्राण प्रभु,
दास के तुम बिन और न आन प्रभु ।
नाम का सुमिरण ध्यान तुम्हारे,
वेदों का निर्मल तत्त्व ज्ञान प्रभु ।
प्रेम सहित विश्वासपूर्वक,
गाव हरी के गुण गाव हरी के ।

---

(१६)

श्री जगद्बन्धु निमाई, सोइ कान्हाँ सोइ रघुराई ।
को ऐसो परमातम द्रष्टा, जो तुमको पहिचाने ।
ऋषी मुनी और शिवब्रह्मादिक, तुम्हरी गति नहिं जाने ।
सत्युग त्रेता द्वापर कलियुग, नित नये रूप बनाये ।
लीला धारी कृष्ण मुरारी, जगद्बन्धु ह्वै आये ।
अवध कुँवर भये ब्रज के लाला, ब्रजलाला नीमाई ।
नीमाई नदियापुर चन्दा, प्रेम प्रकाश दिखाई ।
सो चन्दा डाहापाड़ा प्रकट्यो, पूरण कला सें जाई ।
हरिपुरुष श्री जगद्बन्धु, महा उद्धारण कहलाई ।

अबकी बार अनोखी लीला देहैं प्रभु दिखाई ।
यह लीला प्रेमी जन परखें, दास सकैं नहिं गाई ।

(१७)

हम कब से पुकार लगाय रहे ।
तुम कौन भवन में लुकाय रहे, श्रीजगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ।
मेरी कैसी कठोर ये छाती है, जो बिरह बाण सह जाती है ।
क्यों दर्शन को तरसाय रहे, श्रीजगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ॥
जब बाल खेल सुध आती है, मानो बिजली गिर जाती है ।
जलधार नैन बरसाय रहे, श्रीजगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ॥
यक झलक दरश की आशा है, आशा है जब लग स्वांसा है ।
स्वामी क्यों देर लगाय रहे, श्रीजगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ॥
दर्शन को नैन लुभाय रहे, मन ध्यान समाधि समाय रहे ।
रसना यह रटन लगाय रहे, श्रीजगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ॥
कोई काशी मथुरा जाता है, कोई तन में भस्म रमाता है ।
हम तुम्हरे हाथ बिकाय रहे, श्रीजगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ॥
हे पतितन प्रभु हे कृपासिन्धु, हे प्राणपती हे जगद्बन्धु ।
क्यों दास की सुध बिसराय रहे, हे जगद्बन्धु श्रीजगद्बन्धु ॥

(१८)

बताऊँ क्या तुम्हें देखा है क्या हरि नाम के अन्दर ।
न देखा या सुना था देखा जो। हरि नाम के अन्दर ॥
ग़शी में होश देखा होश में यक देखी बेहोशी ।
खुशी देखी है रोने में हरी के नाम के अन्दर ॥

बिना बिजली चमक देखी चमक में महलका देखा ।
हरी होशेरुबा देखा हरी के नाम के अन्दर ॥
बिना सूरत के मूरत थी वह सूरत थी बिना सूरत ।
हरी को नाचते देखा हरी के नाम के अन्दर ।
यहाँ की सी ज़मी देखी न ऐसा आस्माँ देखा ॥
वहाँ यक वुसअते ला इन्तहाँ थी नाम के अन्दर ॥
न वाँ क़ैदे जमाना था न मौसम का तग़य्युर था ।
न था कुछ खौफ मलकुल मौत का हरि नाम के अन्दर ॥
बताऊँ क्या वहाँ क्या दास पर किरपा की वर्षा थी ।
ज़बाँ क्या कह सके आनन्द था क्या नाम के अन्दर ॥

(१९)

हमैं नाथ दर्शन दिखाना पड़ेगा ।
वह वादा कभी का निभाना पड़ेगा ॥
बहुत दिन से हम लौ लगाये हुये हैं ।
नक़ाब आखिर यक दिन उठाना पड़ेगा ।
कशिश दिल में होगी अगर कुछ भी मेरे ।
तो खींचेगी और तुमको आना पड़ेगा ॥
अदा करने होंगे हक़्क़े मोहब्बत ।
दमें नज़ा बालीं पे आना पड़ेगा ॥
जहाँ जानता है मुझे दास तेरा ।
मेरी मान स्वामी रखाना पड़ेगा ॥

(२०)

स्वामी अंगीनाधाम बुलाना मुझे ।
कभी भूले से भूल न जाना मुझे ॥
मैं तो दर्शन आस में जीवित हूँ ।
देके दरश सुधा अपताना मुझे ॥
जब धाम में भक्तों का जमघट हो ।
उनकी सेवा का भागी बनाना मुझे ॥
अपने जन्म उत्सव के अवसर में ।
प्रेम आनन्द मद में नचाना मुझे ॥
अपने चरणों का दास बनाके मुझे ।
देना धाम में कोई ठिकाना मुझे ॥

---

(२१)

दोहा—सुमिरन कर हरिपुरुष का लेकर प्रभु का नाम ।
महाउधारन चरित का भजन करो सुखधाम ॥
ये लीला महा अवतारी की, गोवर्द्धन गिरिवरधारी की ।
गोकुल के कुञ्जबिहारी की, राधावर गौर मुरारी की ॥
त्रेता में राम अवतारी थे, द्वापर में कृष्ण मुरारी थे ।
कलियुग में गौररूप धर कर, भक्तों के वे सुखकारी थे ॥
कुछ प्रेम का था संचार हुआ, भक्ति का नव्य प्रचार हुआ ।
फिर जगत बन्धु हरि पुरुष का, डाहापाड़ा में अवतार हुआ ॥
फिर महानाम के कीर्तन का, घर घर में सरस प्रचार हुआ ।
लाखों को भक्त बनाते हैं, लाखों को पार लगाते हैं ॥

लाखों के घर घर में जाके, भक्तों को राह दिखाते हैं ।
पापी तापी से घृणा नहीं, सब को हरि नाम सुनाते हैं ॥
बस महा प्रलय से बचने का, सीधा रास्ता बतलाते हैं ।
बस हरी नाम के कीर्तन का, पूरा संचार कराते हैं ॥
दोहा—करते जब प्रभु जीव पर, करुणादृष्टि अपार ।
होता है तब भक्त में भक्ती का संचार ॥
मैं पापी अति अधम हूं नहीं ज्ञान नहि ध्यान ।
दीन जानि कर कृपा कर करूं सदा गुण गान ॥

---

(२२)

हरि पुरुष नाम सुखधाम जगत में जीवन दो दिन का ।
पाप कपट कर माया जोड़ी, गर्व करे धन का ।
सभी छोड़कर चले जायंगे, जैसे बनवास होय बन का ।
यौवन में प्यारी है नारी, मौज करे मन का ।
बूढ़े में तन रोग सतावे, आस मिटे मन का ।
काल बली का लगे तमाशा, भूल जाय ठन का ॥

---

(२३)

हरि पुरुष नाम मस्ताना है—हो दीवाना है ।
बड़े भाग्य से नर तन पाया, क्यों माया में लिपटाना है ।
हरि पुरुष नाम मस्ताना है ।
ये छल भरिया सुन्दर परियां, काहे देखि लोभाना है ।
कुच कंचन दोऊ फांसि लेत हैं, भरमि भरमि मरि जाना है ।

हरि पुरुष नाम मस्ताना है-हो दीवाना है ।
जीवन मोक्ष बताता है जो, सत्य राह को पाता है ।
हरि कीर्तन में, रमि जाता है ।
हरि पुरुष नाम मस्ताना है, हो दीवाना है ।
भाई प्रलय बतास चढ़ा सर ऊपर और न कहीं ठिकाना है ।
राम प्रसाद कहे हरि के बिन, अंत बेर पछिताना है ।
हरि पुरुष नाम मस्ताना है ।

---

(२४)

भैया मेरे हरी पुरुष गुण गाना आया है नाजुक जमाना २
वादा गर्भ बास में कीन्हो बन्धन काटि हरी ने दीन्हो ।
वाही हरी रस पीना पिलाना भैया मेरे हरीपुरुष गुण गाना ।
प्रलय घड़ी सर ऊपर ठाढ़ी, माया मोह अति है बाढ़ी ।
भाई जीवन का नहीं ठिकाना २ भैया मेरे हरीपुरुष गुण गाना ।
जो चाहो भव सिन्धु उतरना, महानाम का कीर्तन करना ।
नहीं फिर लख चौरासी में है पड़ जाना, हो जाना ।
कहे रामप्रसाद चेत मन मूर्ख भैया मेरे प्रेम से हरी गुण गाना ।
दूसर न कोई ठिकाना २ भैया मेरे प्रेम से हरी गुण गाना ।

---

① C:My Documents/Premavatar Jagatbandhu
② Jagatbandhu-2